# रामायण कथा

✤

लेखक

रघुनाथ सिंह

✤

उपोद्‌घात

राष्ट्रपति सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्

✤

भूमिका

सत्यनारायण सिंह

मंत्री, ससदीय कार्य

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी–१

मूल्य : ४.५०

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पी. बॉक्स न० ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१

संस्करण : द्वितीय
जनवरी : १९६६

मुद्रक
विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा०) लि०
डी. १५/२४, मानमन्दिर
वाराणसी-१

'सूर समर करनी करहि कहि न जनावहि आपु

तुलसी की यह चौपाई और भारत पर चीनियों के इस अप्रत्याशित आक्रमण के परिप्रेक्ष्य मे जब मै रामायण की कथाओ को इस पुस्तक के रूप मे एक नयी दिशा-दृष्टि दे रहा था, मेरे लिए स्वाभाविक हो गया कि यह पुस्तक उस मर्यादा पुरुषोत्तम राम की गर्व एवं गौरवपूर्ण गाथा को आदर्श रूप मे मानकर भारतीय ससदीय काग्रेस दल की कार्यकारिणी के उन सभी सहयोगी सदस्यो की उस भावना को ही भेट करूँ, जिन्होने इस परिस्थिति मे अपने कर्तव्य-बोध, दृढ़ता, निर्भीकता एवं निस्पृहता का अद्भुत परिचय दिया है।

# भारतीय संसदीय कांग्रेस दलकी कार्यकारिणीके सदस्य: '६२-'६३

| | | |
|---|---|---|
| श्री जवाहरलाल नेहरू | नेता | (उ० प्र०) |
| श्री हरेकृष्ण महताब | उप-नेता | (भुवनेश्वर, उड़ीसा) |
| श्री सुरेन्द्र मोहन घोष | उप-नेता | (कलकत्ता, प० बगाल) |
| श्री सत्यनारायण सिंह | प्रधान सचेतक | (दरभगा, बिहार) |
| श्री रघुनाथ सिंह | मत्री | (वाराणसी, उ० प्र०) |
| श्री चिक्कनायकनहल्लि रेवन्न सिद्दप्पा बासप्पा | मंत्री | (तुमकुर, मैसूर) |
| श्री रघुबीर सिंह पंचहजारी | " | (पटियाला, पजाब) |
| श्री शिवराम रग राणे | उप-प्र० सचेतक | (जलगाँव, महाराष्ट्र) |
| श्री रामेश्वर साहु | " " | (दरभगा, बिहार) |
| श्री राजपत सिंह डूगर | " " | (कलकत्ता, प० बंगाल) |
| श्री कमलनयन बजाज | कोषाध्यक्ष | (वर्धा, महाराष्ट्र) |

## सदस्य

### लोकसभा

श्री रामसुभग सिंह (आरा, बिहार)
श्री हरिश्चन्द्र माथुर (जोधपुर, राजस्थान)
श्री भक्त दर्शन (गढ़वाल, उ० प्र०)
श्री भागवत झा आजाद (भागलपुर, बिहार)
श्री केंगल हनुमन्तैया (बगलोर, मैसूर)
श्री सदावा कान्नोजी पाटिल (बम्बई, महाराष्ट्र)
श्री चक्रवर्ती (जलोवल, नयी दिल्ली)
श्री शंकर राव मोरे (पूना, महाराष्ट्र)
श्री बसुमतारी (गौहाटी, आसाम)
श्रीमती गंगा देवी (सहारनपुर, उ प्र)
श्री गुरुमुख सिंह मुसाफिर (अमृतसर, पजाब)
श्री सतीशचन्द्र सामत (मिदिनापुर, प० बगाल)
श्री रवीन्द्र वर्मा (मवेलिक्करा, केरल)
श्री कृष्णचन्द्र पन्त (नैनीताल, उ प्र)
श्रीमती रेणुका राय (कलकत्ता, प बगाल)
श्री वख्शी अब्दुलरशीद (श्रीनगर, कश्मीर)

### राज्यसभा

श्रीमती सीता युद्धवीर (हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश)
श्री सोनूसिंह ध्यानसिंह पाटिल (चालीसगाँव, महाराष्ट्र)
श्री सत्याचरण शास्त्री (गोरखपुर, उ. प्र.)
कुमारी शान्ता वशिष्ठ (दिल्ली)
श्री रामसहाय (भिलसा, मध्य प्रदेश)
श्री श्यामसुन्दर नारायण तन्खा (लखनऊ, उ० प्र०)
श्री नीलकंठपुर श्रीराम रेड्डी (बगलोर, मैसूर)
श्री लिंगम (उटकमड, मद्रास)

**पदेन सदस्य**

श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहीम (उ. प्र.) नेता, राज्य-सभा
१ श्री जगन्नाथराव चन्द्रकी (गुलबर्गा, मैसूर)
२. श्री कोदरदास कालीदास शाह (बम्बई, महाराष्ट्र)
मत्री अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

**विशेष आमन्त्रित**

श्री महावीर त्यागी (देहरादून, उ प्र)

# अनुक्रमणिका

०

# उपोद्घात

यह पुस्तक भारतीय संसद् के सदस्य श्री रघुनाथ सिंह ने 'राम कथा' के सम्बन्ध मे लिखी है। इससे हमारे नवयुवक अपनी संस्कृति की मुख्य-मुख्य बाते समझ सकेगे। ऐसे समय मे जब कि स्कूलो और कॉलेजों मे विशुद्ध और प्रयुक्त विज्ञानों के अध्ययन पर उचित रूप से जोर दिया जा रहा, हम लोगों को अपने प्राचीन महाकाव्यों के अध्ययन के महत्त्व की उपेक्षा नही करनी चाहिए।

सभी बड़े-बड़े विचारशील हमसे कहते हैं कि तुम अपने-आप को जानो—'आत्मान विद्धि'। हमारे महाकाव्य ही ऐसे मुख्य साधन हैं कि जिनसे मनुष्य अनेक सम्बन्ध की बाते जान और सीख सकता है और यह समझ सकता है कि हम क्या कर सकते है और क्या नही कर सकते, हममें कितनी शक्तियाँ है और हम कहाँ तक बन्धनो से बँधे है।

भारतीय प्रकृति से ही उदाराशय होते हैं। वे केवल धार्मिक विषयों मे उदार नही हैं, बल्कि दूसरों के विचारो और मतों के प्रति भी वे बहुत कुछ उदारता दिखलाते हैं। उनका विश्वास है कि परमात्मा का स्वरूप जानना ही मुख्य धर्म है और इस धारणा का अपने व्यक्तित्व के बल पर ही दूसरो मे प्रचार तथा प्रसार किया जा सकता है, उन्हे तरह-तरह की बाते बतलाने से नही। हमे सदा सत्य पर दृष्टि रखनी चाहिए; क्योंकि जिस पर हम दृष्टि रखते हैं हम भी वही हो जाते हैं। यद्यपि इधर अनेक शताब्दियों से हम इसी प्रकार के धर्मो का पालन करते आये हैं, फिर भी हम अभी तक भयानक दु:स्वप्नों के संसार मे पड़े हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम पूरी तरह से यह नही समझ रहे हैं कि धर्म का आशय यही है कि हम फिर से अपने आत्म की सृष्टि करे और अपनी प्रकृति का स्वरूप बदलें। केवल स्तुतियों का पाठ करने और धार्मिक संस्कारों का पालन करने से ही धर्म का उद्देश्य सिद्ध नही होता। वर्तमान युग मे आवश्यकता इस बात की है कि हम पूरी तरह से विनयशील रहे और अनुशासनहीन न हो; क्योंकि इसी से हमारी प्रकृति मे एकात्मता आती है।

जो शक्तियाँ मनुष्य को संघर्षो मे प्रवृत्त करती है, उनकी जड़े बहुत गहरी और मानव-जाति के सारे इतिहास मे हर जगह स्पष्ट दिखायी देती नही है। हमे ऐसी शक्तियो पर नियत्रण करना है और उन्हे विनय के नियमो के अधीन लाना है। भावनाएँ और मनोविकार तो मनुष्य की प्रकृति मे रहते ही है; इसीलिए उसके मन मे सौन्दर्य और नैतिक उच्चाकांक्षाओं की वासना रहती है और साथ ही उस तत्त्व के प्रति श्रद्धा का भाव भी रहता है, जो उस विश्व की सभी बातों से बहुत बड़ा है। ऐसी सृजनात्मक अन्त:प्रेरणाओं से हमारे जीवन-तन्तुओ में

गरमाहट भी आती है और उन पर ठंडक भी चढ़ती है। इसी से उसे सम्पन्नता, पूर्णता और विविधता प्राप्त होती है। परन्तु अचानक कोई अन्त प्रेरणा हमे आकर दबा लेती है, जिसके सामने उच्च वर्ग की अन्त प्रेरणाएँ दब जाती है और अधिक अत प्रेरणाएँ सामने आ जाती है। बड़े-बड़े धर्म-प्रचारकों का काम सत्य के प्रतिपादन करने से ही पूरा नही हो जाता। यह तो साधारण मनुष्यो का काम है कि वे सत्य को देखें और अपने सामूहिक आचरण से उसका पालन करे। यही एक ऐसा मार्ग है जिससे हम अपनी जनता, निर्णय और आचरण के गुणो का विकास कर सकते है। रामायण-कथा से तो हमे उस स्थायी सघर्ष की याद हो आती है जो मानव प्रकृति में निहित है। यही देवासुर-सग्राम है। ईश्वर और मनुष्य एक-दूसरे से अलग नही। दोनो एक ही तत्त्व से बने है पर दो रूपो में बने हैं—'सत्वम् एकम् द्विधा कृतम्।'

इस पुस्तक की लेखन-शैली बहुत प्राजल है और इसमे रामायण के उपदेश इस रूप मे प्रस्तुत किये गये है, जो सामान्य पाठक के लिए चित्ताकर्षक है। इसमें रामायण के अतिम पात्रों का प्रस्तुतिकरण अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक तथा अनेक कथाओ का वर्णन भी अत्यन्त हृदयग्राही रूप मे हुआ है। रामायण ऐसा साहित्य है, जो मैत्री और सद्भावना उत्पन्न करता है। यह हमे मनुष्य जाति के प्रति उदारतापूर्वक और समझदारी से व्यवहार करने में समर्थ बनाता है। यह हमारे राष्ट्र के विवेक का स्वरूप हमारे सामने रखता है। इसकी शिक्षाएँ स्थायी महत्त्व की है।

राष्ट्रपति भवन
नयी दिल्ली
१५ फरवरी '६३

—स. राधाकृष्णन

# प्रस्तावना

भारतीय साहित्य मे राम-कथा की व्यापकता हमारे सास्कृतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। आदिकवि वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक न जाने कितने छोटे-बड़े कवियों और आख्यानकारों ने इस अनुपम कथा को संवारने में अपना योगदान दिया है। इस प्रकार मूल कथा के परिवर्धित विन्यास मे अनेक ऐसे उपाख्यान भी जुड़ गये है जो स्वयं अपने मे कम रोचक और महत्वपूर्ण नही हैं। इस पुस्तक के विद्वान् लेखक श्री रघुनाथ सिहजी ने इस प्रकार के पचास उपाख्यानों को जिस सुन्दर ढंग और सददयता से यहाँ प्रस्तुत किया है, उसके लिए वे हमारी बधाई के पात्र हैं।

एक सजग और अध्ययनशील ससद्-सदस्य के रूप मे श्री रघुनाथ सिहजी से मेरा परिचय काफी पुराना है, लेकिन वे संस्कृत साहित्य के इतने अच्छे मर्मज्ञ हैं तथा हिन्दी भाषा पर उनका इतना अच्छा अधिकार है, इसका ज्ञान मुझे उनकी वर्तमान कृति से ही हुआ। संकलित उपाख्यानों के प्रमुख स्रोत के रूप मे उन्होंने वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा पुराणादि सस्कृत रचनाओं मे उपलब्ध सामग्री का ही प्रयोग किया है। इससे जहाँ एक ओर कुछ स्थानों पर उनकी भाषा साधारण हिन्दी-पाठक के लिए थोड़ी क्लिष्ट हो गयी है, वही अनेक ऐसे स्थल भी बने पडे हैं, जहाँ पाठक को गद्य-काव्य का आनन्द आने लगता है। विशेषकर जहाँ कही भी लेखक ने प्रकृति का वर्णन किया है, वहाँ वन-प्रान्तों, निर्झरों, गिरि-सर-तटों से मण्डित तपोभूमि के अनन्य सहचर महर्षि वाल्मीकि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण-पूर्ण उदात्त वर्णनोंकी-सी छटा लग गयी है।

यों तो लेखक द्वारा चुने गये सभी उपाख्यान अपने मे पूर्ण और शिक्षाप्रद हैं, फिर भी मेरे विचार में 'भगीरथ', 'अम्बरीष', 'परशुराम', 'श्रवण', 'अनसूया', 'शूर्पणखा', 'बाली' तथा 'राम का शरीर-विसर्जन' विशेष सुन्दर बन पड़े हैं। जहाँ तक 'सीतानिर्वासन' का सम्बन्ध है, वह तो यों भी हृदय को हिला देनेवाला प्रसंग है, परन्तु, इस संकलन को सम्भवतः वही सबसे प्रभावशाली रचना है।

आज के हमारे नवयुवको में अपनी प्राचीन सास्कृतिक कथा-कहानियो के प्रति एक अजीब उदासीनता दृष्टिगोचर होती है। सभवत: इसका एक कारण यह है कि इनमे से अनेक कहानियाँ हमारे प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में भी उपलब्ध हैं, और आज के गद्य-युग मे साधारण पाठक की रुचि उधर कम होती है। भाषा, शैली और विषय-रोचकता की दृष्टि से श्री रघुनाथ सिंहजी की यह 'रामायण-कथा' एक साहित्यिक उपन्यास का-सा आनन्द प्रदान करने की क्षमता रखती है। आशा है, राम-कथा के प्रेमियों के साथ-साथ हमारी नयी पीढी के पाठक भी इस सराहनीय प्रयत्न का समुचित उपयोग करेंगे।

१६, अकबर रोड
नयी दिल्ली
१८ २.६३

सत्यनारायण सिंह

गृह पुस्तक

## ( प्रथम संस्करण )

वाल्मीकि रामायण आदि मौलिक काव्य है। रामायण की कथाओं का मूल स्रोत है। उसी के आधार पर विविध भाषाओं तथा देशों मे रामायण की रचनाएँ की गयी हैं। राम की गाथा को भारतीय जीवन से अलग करना आत्मा और काया को एक-दूसरे से भिन्न करना होगा। काशी मे जन्म-भूमि होने के कारण रामायण और उसकी गाथा के प्रति अभिरुचि होना मेरे लिए स्वाभाविक है। काशी के भिन्न-भिन्न स्थानों मे रामलीला एक मास तक होती है। रामलीला के वातावरण से आश्विन मास भर उठता है। मैं बाल्य-काल मे किसी-न-किसी पात्र का रूप बनता था, कभी वानर बनता था, तो कभी राक्षस। बड़े होने पर रामलीला के आयोजन में भाग लेने लगा।

रामलीला मे तुलसीकृत रामायण, बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक, मृदंग तथा झाँझ पर रामायणी लोग गाते हैं। बीच मे प्रसंग विशेष आने पर रामायण बन्द हो जाती है। 'चुप रहो' की आवाज लगती है। संवाद होता है। पात्र कार्य करते हैं। इस प्रकार राम-लीला मे आध्यात्मिकता के साथ भौतिक रोचकता आ जाती है। भक्त, साहित्यिक, नाटक-लीला-मेला-प्रेमी, पढ़े-अनपढ़े सभी का मनोरंजन होता है। चौपाइयाँ, दोहे तथा छन्द लोगों को अनायास सुनते-सुनते याद भी हो जाते हैं।

रामायण केवल काव्य नही है। वाल्मीकीय, तुलसीदाकृत अथवा किसी भी भाषा में वह प्रत्येक भारतीय गृहस्थ की पूज्य सामग्री हैं। उत्तर भारत मे घर की महिलाएँ तुलसीकृत रामायण पढ़ती हैं। उनके लिए वह बोधगम्य है। वे अपने आँगन के चौरा पर तुलसी की पूजा करती हैं, दिये जलाती हैं। नारायण के चरणों मे आत्म-समर्पण करती हैं। भगवान् भास्कर को प्रणाम करती हैं। स्त्रियाँ तुलसी-चौरा, अथवा भगवान् अथवा हनुमानजी की मूर्ति, चित्रादि के सम्मुख बैठ कर रामायण पढ़ती हैं। नैवेद्य सम्मुख रखा रहता है। शिशु तथा बालक-बालिकाएँ चुपचाप प्रसाद पाने की आशा मे कोमल नारी-हृदय की पवित्र वाणी सुनती रहती हैं। पुरुष प्रायः उत्सव, सत्संग अथवा मन्दिर मे, वृद्ध रामायण, ढोल,

झाँझ पर गाते है अथवा पुरुष बैठका अथवा दालान मे ऊँचे स्वर में रामायण लय से पढते है । कभी-कभी 'बानी' के साथ दुहराते है । विशेषत रात्रि में दीपक के सम्मुख पढते समय घर के बालक एकत्र हो कर चुपचाप सुनते है । उस समय की पवित्रता तथा श्रद्धा वर्णनातीत है । इस प्रकार बाल्यकाल से ही मेरा रामायण से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है ।

राजनीतिक बन्दियो को जेल में दो पुस्तकें एक साथ रखने का अधिकार तत्कालीन सयुक्त (उत्तर) प्रदेशीय कारागार के नियमानुसार था । राजनीतिक बन्दियो को प्राय एक जेल से दूसरी जेल में भेज दिया जाता था । यह बदली दूर स्थान को हो जाया करती थी । इस परिस्थिति मे घरवालो के लिए पुस्तक आदि भेजना कठिन हो जाता था ।

धार्मिक पुस्तको के अतिरिक्त अन्य पुस्तको की प्राप्ति, जेल के सेन्सर-विभाग के कारण कठिन हो जाती थी । सन् १९४० के पूर्व मैं चार बार जेल-यात्रा कर चुका था । जेल के नियमो तथा वहाँ की परिस्थितियो मे किस प्रकार काम निकाला जाता है, इसका पूर्ण अनुभव था । मैं सर्वदा इसके पूर्व 'सी' क्लास अर्थात् साधारण श्रेणी मे रखा जाता था । काशी मे व्यक्तिगत सत्याग्रहियों को छ मास का दण्ड दिया जाने लगा था, अतएव मैंने छ मास की योजना कारागार काटने की बनायी । इस आधार पर बनायी कि सम्भव है तबादला दूसरी जेल में कर दिया जाय ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए सत्याग्रह की तिथि और सत्याग्रह करने का स्थान निश्चित कर पूर्व-सूचना स्थानीय जिलाधीश को देना अनिवार्य कर दिया गया था । निश्चित समय तथा स्थान पर पुलिस आ जाती थी । सत्याग्रही कहता था—"इस सरकार को किसी प्रकार की युद्ध-सहायता देना अनुचित है ।" सत्याग्रही फल-मालाओ से लदा गिरफ्तार हो जाता था। अदालत में उपस्थित होता था। अपराध स्वीकार करता था । अविलम्ब सजा दी जाती थी । जेल भेज दिया जाता था । अतएव, जेल जाना बन्धन नही, स्वेच्छा-कार्य था ।

वाल्मीकि रामायण के सम्पूर्ण काण्डो को पुस्तकाकार एक जिल्द में बनवाया । रामायण मूल सस्कृत तथा हिन्दी भाषा में टीका सहित, सीताराम प्रेस, काशी

द्वारा प्रकाशित हुई थी। चूंकि सब काण्ड सिल कर एक ही जिल्द मे बन गये, अतः पुस्तक का आकार स्वत. बहुत मोटा हो गया। जेल नियम के अनुसार यह एक पुस्तक की श्रेणी में आता था। यह रामायण मेरे पास सन् १९५४ तक दिल्ली मे रही। एक ससद् सदस्य उसे पढ़ने के लिए ले गये। उन्होंने किसी और को दे दी। उनसे किसी और ने ले ली और इस तरह यह पुस्तक मेरे लिए अप्राप्य ही नही, दुर्लभ हो गयी।

मुझे पहली बार व्यक्तिगत सत्याग्रह के कारण 'बी' क्लास मे रखने का आदेश दिया गया। इससे कुछ सुविधा मिल गयी। मै एकांत 'सेल' अर्थात् तनहाई की कोठरी में रखा गया। अतएव, पठन-पाठन मे सुविधा मिल गयी। मेरे ५ उपन्यास, एक कहानी-संग्रह तथा ३ राजनीतिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे। तनहाई का समय कटता नही था। कुछ लिखने की इच्छा थी। द्वितीय महायुद्ध का काल था। 'बी' श्रेणी मे लिखने की सुविधा थी नही। फिर भी समय व्यतीत करने के लिए मैंने लिखने का निश्चय किया। सोचा, रामायण के उपाख्यानों को हिन्दी मे कहानी की शैली पर लिख डालूँ। जेल मे किंचित् प्रयास से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। लिखने के लिए कागज तथा पेंसिल मिल गयी। प्रत्येक काण्ड की कहानी का प्रारूप बना कर जेल से बाहर घर भिजवाने लगा। इसमे एक मुसलमान वार्डर सहायक हुआ। कुछ रुपये लेकर यह कार्य बड़े अच्छे ढंग से उसने किया; अन्यथा जेल से छूटते समय फाटक पर तलाशी ली जाती। सब कुछ जब्त हो जाता। दण्ड-स्वरूप मुझ पर मुकद्दमा भी चल सकता था। कारागार की अवधि बढ़ायी जा सकती थी। जेल के वार्डर ने ईमानदारी से काम किया था। पाण्डुलिपियाँ घर पर पहुँच गयी थी। घरवालों ने उसे अन्यत्र रखवा दिया। कुछ पन्ने जेल के छपे फार्मो पर लिखे हुए थे। तलाशी इत्यादि की सम्भावना के कारण मुझ पर, वार्डर पर तथा घर पर विपत्ति भी आ सकती थी।

मैंने प्रस्तुत कहानियो को बनारस सेण्ट्रल जेल के तृतीय चक्कर सेल के द्वितीय बैरेक की निचली मजिल मे लिखा था। इस दुमजिले सेल के चक्कर को वर्मा के विद्रोही सैनिको ने बनाया था। उसमे बन्दी-स्वरूप स्वयं उन्होंने निवास भी किया था। यहीं उन्होंने अपने जीवन की लीला भी समाप्त की थी। सेल का रूप बाहर से

देखने पर भयावह लगता था। कोठरी मे नेत्राकार जँगले लगे थे, किन्तु कोठरी मे काफी प्रकाश तथा हवा का प्रवेश हो जाता था।

जेल से छूटने पर शान्ति नही मिली। 'भारत छोडो' आन्दोलन आरम्भ हो गया। पुन जेल-यात्रा अनिश्चित काल के लिए करनी पडी। जेल मे व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय प्राप्त हुई पूर्व सुविधाएँ अप्राप्य हो गयी। पाण्डुलिपि का शोधन करना चाहा, परन्तु बात जहाँ की तहाँ रह गयी। राजनीतिक मुकद्दमो मे नि शुल्क काम करना पडा। अनेक झझटो के कारण पाण्डुलिपि को सँवार न सका। कालान्तर मे, स्वाधीनता के पश्चात् पाण्डुलिपियो को सँवार-सुधार लिया। पुरानी पाण्डुलिपि रद्द कर दी। प्रकाशन की समस्या उत्पन्न हुई। हिन्दी प्रकाशको मे प्राय प्रकाशक ऐसे मिले, जो ऐसी पुस्तके चाहते थे जो या तो पाठ्य-पुस्तको मे लग जायँ अथवा सरकार पर मै अपने प्रभाव का प्रयोग कर उसे सरकार द्वारा पुस्तकालयों आदि के लिए खरीदवा सकूँ। दोनो ही बाते कुछ मेरी प्रकृति के विपरीत थी। अतएव, इस दिशा मे प्रगति नही हो सकी।

अचानक एक दिन मेरी, श्री कृष्णचन्द्र बेरी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, से भेंट हुई। उन्होंने मेरे पुराने उपन्यासों की चर्चा उठायी। नवीन सस्करण निकालने की बात आयी। मैने उपन्यास शोध कर उन्हे दे भी दिये। साथ ही इस पुस्तक के प्रकाशन का भी प्रश्न उठाया। वह ५० कहानियों का सग्रह है। उन्होने इसे प्रकाशित करना स्वीकार भी कर लिया। पुरानी सशोधित पाण्डुलिपि की भाषा-शैली २० वर्ष पुरानी थी। उसे सँवारना-सुधारना आरम्भ किया। गत २० वर्षो में विचारो तथा शैली में यथेष्ट अन्तर पड गया था। सुधार कुछ अधिक हो गया था। पाण्डुलिपि को हिन्दी मे टाइप कराया गया और पाण्डुलिपि पुस्तकाकार हो गयी। इसकी परिणति के लिए प्रकाशक, प्रूफ-रीडर तथा टाइ-पिस्ट श्री चन्द्रदेव, ग्राम नगवा, जिला बलिया और मित्रवर श्री त्रिवेणी सहाय, टघरौली, पो० आमघाट, जिला बलिया, मत्री भोजपुरी समाज सामयिक सहयोग एव सुझावों के लिए धन्यवाद के पात्र है।

पुस्तक मैने ससदीय काग्रेस दल की कार्यकारिणी समिति को भेंट की है, जिसका मंत्री होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मन्त्रित्व-काल के प्रारम्भ से ही समिति के

सदस्यों, उसके नेता पं० जवाहरलाल नेहरू, उपनेता श्री हरेकृष्ण मेहताव तथा सुरेन्द्र मोहन घोष का सहज स्नेह प्राप्त होता रहा। जिनकी भावना और विचारो का आदर कर कांग्रेस की पुरानी परम्परा का समिति ने निर्वाह किया है। सरकारी नीति को, मुख्यतः चीनी आक्रमण-काल मे, प्रभावित किया है। यह एक ऐतिहासिक घटना है। भारतीय राजनीति नवीन प्रेरणा तथा उत्साह के साथ मोह पैदा करनेवाली रही है। अतएव, कार्यकारिणी के सदस्यों को, जिनके कधो पर भारतीय राष्ट्र-नीति, लोकतत्रीय आलोचना तथा सजग-सतर्कता का भार है, रामायण की यह गौरव-गाथा भेंट करने मे गर्व का अनुभव करता हूँ और विश्वास है कि इस लोकतंत्रीय स्वस्थ, निर्भीक, गौरवपूर्ण परम्परा की जो आधार-शिला इस समिति ने रखी हैं, उसे आनेवाली समिति तथा सदस्य प्रगति-पथ की ओर वढाते रहेगे।

राष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् जी का स्नेह अपने विद्यार्थियों पर अक्षुण्ण बना रहता है। उनके विद्यार्थी अनेक राजनीतिक दलों मे हैं। उनके सम्मुख आने पर श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। उनका गुरुवत् तथा पितृवत् वात्सल्य भाव प्रदर्शन के समय सव कुछ भूल जाया करता है। प्रारम्भ से ही मैं काशी विश्वविद्यालय का विद्यार्थी रहा। वहाँ उन्होने अपने जीवन के ६ वर्ष सरस्वती तथा विश्वनाथ की आराधना मे व्यतीत किये हैं। संसद् में आने पर राष्ट्रपति होने पर भी उनके स्नेह तथा व्यवहार में किंचित् मात्र अन्तर नही हुआ है। इस प्रकार वे स्वयं राष्ट्र के साथ-ही-साथ भारतीय परम्परा के प्रतीक बन गये हैं। उनसे सर्वदा प्रेरणा मिलती है। उन्होंने समय निकाल उपोद्घात लिखा है। उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

श्री सत्यनारायण सिंहजी से मेरा ३० वर्षों का परिचय है। वे भारतीय मंत्रिमंडल में संसदीय कार्य मंत्री हैं। रामायण के अध्ययन मे वे रम-से गये हैं। रामायण का प्रसंग उठते ही वे उसमें जैसे डूव जाते हैं। इससे भी वड़ी वात उनमे है—उनकी निश्छलता। राजनीति और निश्छलता परस्पर विरोधी कहे गये है। परन्तु, श्री सत्यनारायण सिंह मे निश्छलता की झाँकी लेकर वे ही इसका आनन्द उठा सकते है, जिन्हे उनके समीप रहने का अवसर मिला है। उनका एक सवसे वडा गुण है कि वे किसी का अनभल नही कर सकते। अपकार करना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। यदि वे चाहे भी कि किसी को कष्ट दें, तंग करें, किन्तु उनका मौलिक स्वभाव ऐसा है कि वे उसे करने में अनायास असमर्थ हो जाते है। उनसे लड़ने में,

उनके साथ विवाद करने में, उनके साथ रोष-प्रदर्शन करने में भी आनन्द आता है। कारण, कुछ समय पश्चात् वे सब भूल जाते हैं। जैसे कुछ हुआ ही नही। निश्छलता तथा अहित न करने की नैसर्गिक भावना का उदय मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की महान् कृपा से ही हुआ है। भगवान् की रामायण कथा की भूमिका यदि श्री सत्यनारायण सिंह से न लिखाता, तो और कौन सुपात्र मिलता। अपने अग्रजरूप मित्र, उनका अनुयायी, उनका साथी, उनके गुणो पर रीझा होने के कारण भी उनके अनुग्रह के लिए आभारी हूँ।

यह कार्य पूर्ण हुआ। इसकी पूर्णता बिना भगवान् की कृपा के होना सम्भव नहीं था। यह उन्ही की गाथा है। रामायण गायी जाती रही है और गायी जाती रहेगी। महासरिता की अविच्छिन्न धारा तुल्य वह मन को पवित्र, शीतल, अनुप्राणित करती रहे, यही कामना है।

१५, कैनिग लेन
नयी दिल्ली

—रघुनाथ सिंह

# रामायण-कथा

# रामायण-कथा

'इस लोक में, इस स्थान में, कौन गुणवान् है ? कौन वीर्यवान् है ? कौन धर्मज्ञ है ? कौन कृतज्ञ है ? कौन सत्यवक्ता है ? कौन दृढ़व्रत है ? अपने चरित्र में कौन युक्त है ? भूतों के हित में कौन रत है ? कौन विद्वान् है ? कौन समर्थ है ? एकमात्र कौन प्रियदर्शन है ?

'कौन आत्मवान् है ? कौन जितक्रोध है ? कौन द्युतिमान् है ? कौन अनसूयक है ? और किसके रोष से देवतागण युद्ध मे भयभीत हो जाते है ?

'मैं उस पुरुष श्रेष्ठ को जानना चाहता हूँ । यही मेरा परम कौतूहल है । महर्षे ! आप समर्थ हैं । आपको उस नर का ज्ञान है । क्या मेरी श्रवणेन्द्रियाँ उस पवित्र पुरुष की सुन्दर गाथा सुनकर कृतार्थ होंगी ?'

तप और स्वाध्याय निरत, श्रेष्ठ वाग्विद् भगवान् नारद से मुनि पुंगव वाल्मीकि ने नम्रतापूर्वक पूछा ।

महर्षि वाल्मीकि की जिज्ञासु वाणी त्रिकालज्ञ देवर्षि नारद ने सुनी । वे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'मुने ! आपने दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है । मैं इन गुणों से युक्त नर की बात कहता हूँ । आप कृपया सुनिए ।'

पुलकित देवर्षि नारद के मुख-मण्डल पर पवित्र कान्ति प्रस्फुटित हो उठी । वे निमीलित नेत्र हृदयस्थ देव के चरणों में लीन होने लगे । मुद्रा गम्भीर हो गई । किंचित् सस्मित वाणी मुखरित हुई ।

'लोक में वे राम नाम से विख्यात हैं । वे इक्ष्वाकु वंश की शोभा हैं । वे नियतात्मा, महावीर्यवान् द्युतिमान्, धृतिमान् और जितेन्द्रिय हैं ।

'वे बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी, शोभायमान, शत्रुमर्दन, महाबाहु, कम्बुग्रीव और महाहनु है ।

महर्षि वाल्मीकि के शान्त जिज्ञासु लोचन देवर्षि नारद के कांतिमय मुखमण्डल पर स्थिर होने लगे । देवर्षि नारद की गम्भीर वाणी पुनः मुखरित हुई :

'उनका वक्ष स्थल विशाल है। उनका धनुष ऊँचा है। कण्ठ की अधोभागीय अस्थियाँ मासल हैं। वे आजानुबाहु और सुशिरा हैं। वे सुललाट और सुविक्रम हैं।

'उनका अंग-विन्यास सम है। वर्ण स्निग्ध है। वे प्रतापवान् हैं। वे पीनवक्षा हैं। विशालाक्ष हैं। शोभामय हैं। शुभ लक्षणयुक्त हैं। सत्यसन्ध हैं। यशस्वी हैं। ज्ञानसम्पन्न हैं। शुचि हैं। वशी हैं। समाधिमान् हैं। रिपुसूदन हैं। धर्म-रक्षक हैं। वे स्वधर्म और स्वजनों के रक्षक हैं। वे प्रजापति के समान प्रजारक्षक और प्रजाहित-रत एवं धर्मज्ञ हैं।'

किंचित् ठहरकर भगवान् नारद पुनः बोले—

'वेद-वेदांग के तत्त्वों के वे ज्ञाता हैं। धनुर्वेद में उनकी निष्ठा है। वे सर्वशास्त्रों के तत्त्वज्ञ हैं। स्मृतिमान् और प्रतिभावान् हैं। वे लोकप्रिय और साधु हैं। वे दीनात्मा नहीं हैं। विलक्षण हैं। सर्वदा सज्जनों से उसी प्रकार मिला करते हैं, जैसे समुद्र नदी से मिलता है। वे आर्य हैं। सबको सम भाव से देखते हैं। सदैव प्रियदर्शन हैं। कौशल्या के आनन्दवर्धन हैं। सर्व गुणों से युक्त हैं। समुद्र-तुल्य गम्भीर हैं। हिमवान् तुल्य धैर्यवान् और विष्णु सदृश वीर्यवान् हैं। चन्द्र सदृश प्रियदर्शन हैं। वे क्रोध की अवस्था में कालानल सदृश भयंकर हो जाते हैं। पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं। वे कुबेर के समान त्यागी और पृथ्वी पर दूसरे धर्म हैं।

'ऋषिवर, वे गुण-सम्पन्न हैं। सत्य पराक्रमी हैं। वे भ्राताओं में ज्येष्ठ, दशरथ के प्रिय पुत्र राम हैं।'

देवर्षि नारद ने सम्पूर्ण राम-कथा सुनाई। वाक्यविशारद धर्मात्मा महामुनि वाल्मीकि ने शिष्यों सहित यथावत् भगवान् नारद का पूजन किया।

नारद मुनि वाल्मीकि द्वारा यथावत् पूजा प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक बोले—'महर्षे! आज्ञा दीजिए तो प्रस्थान करूँ?'

महर्षि वाल्मीकि ने शिष्यों सहित गमनेच्छु, देवर्षि नारद को प्रणाम किया। नारद आकाश-मार्ग से देवलोक के लिए गमनशील हुए।

:o: :o: :o

एक मुहूर्त्त पश्चात् पवित्र गंगा से जो नदी दूर नहीं है, उस तमसा के मनोरम उपकूल में महर्षि वाल्मीकि का शिष्यों सहित आगमन हुआ। वे अकर्दम तीर्थ देखकर पार्श्व-स्थित अपने शिष्य से बोले—

'भारद्वाज! यह स्थल कितना रमणीय है! सन्मनुष्यों के मन तुल्य जलाम्बु प्रसन्न है? तात!! कलश रखो। मुझे वल्कल दो। मै इस उत्तम तमसा तीर्थ में स्नान करूँगा।'

नियतेन्द्रिय वाल्मीकि ने अपने शिष्य भारद्वाज से वल्कल ले लिया। उपकूलस्थ विपुल वन में अनायास विचरण करने लगे। प्रकृति की सुषमा में मुसकराती वनस्थली अनजाने मुनि के मानस से मिलने लगी।

क्रौंच एवं क्रौंची के उमंगमय मधुर रव द्वारा वनस्थली गूँज उठी थी। हरित नवपल्लव झूम-झूम कर क्रौंच को अंकों में ले लेते थे। क्रौंच कामोल्लास मे भूल गया था दुनियाँ। वह तन्मय था क्रौंची के साथ जीवन एकाकार करने में।

आह! करुण क्रन्दन!! भयंकर दृश्य!!! पृथ्वी पर छटपटा उठी सुन्दर क्रौंच की काया। निष्ठुर बाण उसे ढकेल रहा था मृत्युमुख में। मुहूर्त्त पूर्व उत्साहमय धमनियों के रक्तविन्दु, उसके शरीर मे मिट्टी लिपटाते, समझाने लगे भौतिक जीवन की निस्सारता।

और दूर पर—हँस उठा व्याध। और—! रो उठी अपने रक्त-सिन्दूर को भूमि मे सनते देखकर क्रौंची। वेदना व्याकुल हो उठी मूर्त्तिमती होकर। दौड़ पड़ी करुणा। चली देखने जीवन-लीला का यवनिका-पतन। सुनने अन्तिम जीवन-स्वर और समझने जीवन-कथा का बन्द होता अध्याय।

करुण करुणा चली मिलने दण्डायमान महर्षि वाल्मीकि से। उसकी व्यग्रता चाहती थी मानवीय सवेदना।

करुणा की करुण कहानी देखते ही करुणार्द्र-हृदय महर्षि की करुण वाणी मुखरित हुई:

मा निषाद प्रतिष्ठांस्त्वमगम. शाश्वती: समा:।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्॥

पक्षी की करुणा से आहत-हृदय महाप्रज्ञ मतिमान् महर्षि गम्भीर हो उठे। पादवद्ध अक्षरयुक्त समस्त तंत्रीलय-समन्वित श्लोक-स्वरूप वाणी

शोकार्त्त अवस्था में सहसा कैसे मुखरित हो गई ! स्मरण आते ही मुनि की मुद्रा हो गई विचारशील ।

मुनि की किंचित् आश्चर्य-चकित दृष्टि अपने शिष्य भारद्वाज की ओर उठी । भारद्वाज सहसा मुखरित वाणी सुनकर प्रसन्न हो गए । शिष्य के मुख-मण्डल पर प्रस्फुटित प्रसन्नता देखकर महर्षि किंचित् चकित हुए । भारद्वाज ने कहा—'आपका वाक्य श्लोक-स्वरूप होना चाहिए ।'

भारद्वाज का उत्तर सुनकर महर्षि वाल्मीकि को संतोष हुआ ।

:o: :o: :o:

पवित्र तमसा तीर्थ मे ऋषि ने विधिवत् स्नान किया । आश्रम की ओर प्रत्यावर्तित हुए । विनीत श्रुतिमान् शिष्य भारद्वाज जलपूर्ण कलश सहित महर्षि का अनुगमन करने लगे । महर्षि अतिक्रमण कर रहे थे विस्तृत पथ का । किन्तु उनका मन क्रौंच-वध की करुण घटना का विस्मरण न कर सका । घटना अनेक कल्पनाओं, अनेक रूपो के साथ उनके सामने मूर्त्तरूप मे आने लगी । उसी मे भूले-जैसे वे चले जा रहे थे । नाना प्रकार की भावनाओ का उदय-अस्त होने लगा । मन कही स्तब्ध, शान्त, शून्य प्रदेश में घूमने लगता था ।

:o: :o: :o:

महर्षि वाल्मीकि आश्रम में पहुँचे और तरु की शीतल छाया में बैठ गए । प्रात:कालीन उस करुण घटना में वे आत्म-विस्मृत-से हो जाते थे । उनके कर्ण-कुहरों में शकुनि का करुण क्रन्दन भर उठता था । शिष्यो ने मुनि की अवस्था देखी । पवित्र मुख-मण्डल पर भाव-लहरियों में विलसती विविध मुद्राओं को देखा । किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ ।

आश्रम को आँखों ने देखा । आश्रम आगन्तुक परम पिता ब्रह्मा की पवित्र उज्ज्वल भव्य कान्ति द्वारा जाज्वल्यमान हो उठा । आश्रम-निवासियों की आँखें बिछ गईं आश्रम-पथ पर । विस्मयपूर्ण मुनि की काया आसन्न से उठी । शिष्य-वृन्द चले—पाद्य, अर्घ और आसन लिए ।

मुनि ने पाद्य, अर्घ, आसन द्वारा शिष्यों सहित, पितामह ब्रह्मा की पूजा की । वन्दना के पुष्पों से आश्रम सुरभित हो गया । मधुर स्वर में लता-

पुष्प एवं पादप भी नमस्कार करने लगे। पितामह ने पवित्र आसन ग्रहण करते हुए कहा :

'बैठो।'

महर्षि वाल्मीकि सविनय उनके समीप बैठ गए। उनके पीछे बैठ गई उनकी शिष्य-मण्डली। ऋषि प्रातःकालीन करुण घटना की स्मृति में ध्यानावस्थित होने लगे। मन विचरने लगता था करुण घटनावली में। पापात्मा बैर-ग्रहण-बुद्धि व्याध ने चारुरव में प्रसन्न, चारुरव तन्मय क्रौंच की अकारण हत्या की। उस प्रसंन्न वातावरण में, उस सुखद वायु-मण्डल में, उस रमणीय उपवन में, बाण के कारण अकस्मात् सब कुछ बदल गया। क्रौंची कितनी शोकार्त थी! करुणा कितनी वेदना लेकर उसके सरल कण्ठ से मुखरित हो रही थी! आह! पति की हत्या!! वह कितनी विह्वल थी!!! मुनि के कण्ठ से अनायास वही श्लोक निकल गया :

मा निषाद प्रतिष्ठाँस्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

शोक-परायण मुनि ध्यानावस्थित होने लगे। बाह्य ज्ञान दूर हो गया। पितामह मुनिपुंगव की मनःस्थिति देखकर सस्मित बोले : 'ब्रह्मन्! तुम्हारी मुखरित वाणी का नाम ही श्लोक है। मेरी आन्तरिक इच्छा द्वारा वाणी मुखरित हुई है।'

मुनि के कमल-लोचन धीरे-धीरे उन्मीलित हुए।

ब्रह्मा ने सस्नेह कहा—'ब्रह्मर्षे! श्री रामचन्द्र जी इस लोक में धर्मात्मा हैं। धीमान् हैं। नारद द्वारा तुमने धैर्यवान् राम की कथा सुनी है। उनके चरित्र का चित्रण श्लोकवद्ध करो। धीमान् रामचन्द्र का चरित-वृत्त अभी रहस्य है। प्रकाश में नहीं आया है। उस पवित्र मनोरम कथा को इस श्लोक की शैली में श्लोक-वद्ध करो। राम, लक्ष्मण, राक्षस, वैदेही के जो पद-वृत्त, प्रकाशित एवं गुप्त हैं, उनके वर्णन के साथ-ही-साथ जिस चरित का ज्ञान तुम्हें नहीं है, वे भी तुम्हें ज्ञात हो जाएँगे। तुम उनके चरित्र, उनकी जीवन-

घटना का क्रमानुसार सग्रह करो। तुम्हारा इन श्लोकों मे लिखा गया काव्य अभूतपूर्व होगा।'

ब्रह्मा जी कहते-कहते अन्तर्धान हो गए। महर्षि वाल्मीकि तथा उनके शिष्य विस्मित हो उठे। उनके शिष्य कहने लगे, क्रौंच के दु:ख से दु:खी होकर गुरु ने जिन चार पदो का गान किया था, वह शोकोद्‌गार होते हुए भी हो गया श्लोक-स्वरूप।

:o: :o :o

रामायण महाकाव्य पूर्ण हुआ। महर्षि वाल्मीकि ने भारद्वाज से पूछा 'भारद्वाज! इस महाकाव्य का गान कौन करेगा?'

भारद्वाज की मुद्रा गम्भीर हो उठी। महर्षि स्वयं विचार-मग्न हो गए।

अकस्मात् दो मुनि-वेशधारी युवको ने महर्षि का चरण-वन्दन किया। महर्षि की आँखे उनकी ओर उठी।

वे रामचन्द्र की प्रतिच्छाया-तुल्य थे। गन्धर्वों के समान सुन्दर थे। रूपवान् थे। सुलक्षण थे। उनके नाम थे कुश और लव।

उनकी वाणी सरस थी। वे गान विद्या मे निपुण थे। स्थान और मूर्छना का उन्हे ज्ञान था। तन्त्रीलय समन्वित, शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीररस युक्त काव्य-गान के निमित्त मुनि को सुपात्र साधन मिल गया। मुनि ने सहर्ष कहा—'वत्स! इस महाकाव्य का गान कर सकोगे?'

कुमारों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारोक्ति मे मस्तक हिला दिया। कुमारो ने देखा काव्य।

उनमे उठने लगा आलाप। मुखरित हुई वाणी। निकल चली स्वर-लहरियाँ। आह्लादित हो गए पल्लव। आकर्षित हो गए प्राणी। खिल गए पुष्प। भर आईं आँखें। चकित हो गए लोग।

महर्षि वाल्मीकि कह उठे—'वत्स ! जाओ । इस पवित्र काव्य का जनपद में, देश में, विदेश में, नगर में, पुर में, ग्राम में, आश्रम में, लोक में और विश्व में गान करो ।'

---

वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड · सर्ग १, २, ३, ४, उत्तरकाण्ड · सर्ग . ९३, ९४ ।

# शान्ता

'अवर्षण ! अवर्षण !! अवर्षण !!!'

'राजन् !'

'ब्राह्मण ! देवगण !!'—राजा लोमपाद बोले—'इस भयावह अवर्षण से किसी प्रकार त्राण मिल सकता है ?'

'राजन् !' ब्राह्मण बोले—'दारुण अवर्षण द्वारा प्रजा विनाशोन्मुख है । पृथ्वी लौह-शलाका तुल्य तप्त है । प्राणी व्याकुल है ।'

'वेद-परायण' ! राजा ने श्रद्धापूर्वक कहा—'आप लोगो को लोक-चरित्र का ज्ञान है । आप लोग मेरे कर्मो से अनभिज्ञ नही है । इस अवर्षण का कारण—?'

'अंगाधिपति !' ब्राह्मणो ने नम्रतापूर्वक कहा—'राजा के पापों की भागी प्रजा होती है । प्रजा के पाप तथा दुश्चारित्र्य का प्रभाव राजा पर पड़ता है । दोनो के दोष से, दोनो के कारण, महाकाल तुल्य घोर अनावृष्टि हुई है ।'

'वेदिन् !' दुःख समन्वित राजा बोले—'दोष का निराकरण होता है । पाप का प्रायश्चित्त होता है । देश पर भयानक विपत्ति आई है । निवारणार्थ आप महानुभाव प्रायश्चित्त निश्चित करे । प्रायश्चित्त करूँगा । देश न रहेगा तो हम कहाँ रहेंगे ?

'मै भूला था । मै मोहित था । विवेक ने साथ त्याग दिया था । विवेक के त्याग का परिणाम मिल रहा है । प्रजारजन मेरा कर्त्तव्य है । सर्वस्व-त्याग मेरा धर्म है । इस अवर्षण का अन्त होना चाहिए ।'

'साधु ! राजन् !!' ब्राह्मणो ने कहा—'राजा के योग्य वचन आपने कहे हैं । धर्मानुकूल भावना का आप मे उदय हुआ है । भगवान् ने रोग के साथ औषध, मृत्यु के साथ जन्म, दुःख के साथ सुख, शोक के साथ हर्ष का सर्जन किया है । अवर्षण समाप्त होगा । वसुन्धरा का वक्षःस्थल शीतल होगा ।

हरी-हरी दूबें उगेंगी। पक्षियों के कलरव से तरु-पल्लव गूँजेंगे। मरुस्थल जलमय होगा।'

'ब्राह्मण! बोलिए!!'

ब्राह्मण-मण्डली गम्भीर हो गई।

'कोई उपाय है?'

'राजन्! आपको विभाण्डक-पुत्र ऋष्य शृंग को आमन्त्रित करना चाहिए।'

'ऋष्य शृंग!'

'हाँ; राजन्! वही, आपकी, प्राणियों की, प्रजा की और देश की रक्षा कर सकेंगे।'

'किस प्रकार?'

'ऋष्य शृंग महान् तपस्वी है। उनके उपदेश तथा निर्देशन से अवर्षण दूर होगा। उन्हें सत्कारपूर्वक बुलवाइए।'

'यहाँ उनका आगमन कैसे होगा?

'राजन्! वनवासी, ईश्वररत, तपोरत, ज्ञानरत, विज्ञानरत, स्वाध्याय-रत, कौन व्यक्ति संसार-सागर मे प्रवेश करना चाहेगा? कुछ उपाय करना होगा।'

'सम्भव उपाय करूँगा।'

'तपस्वी को संसारी बनाना होगा।'

'संसारी बनने पर संसार का कष्ट वह दूर कर सकेंगे?'

'निश्चय'

'संसारी कैसे होंगे?'

'मानव-तुल्य—'

'तात्पर्य—'

'संसार-बन्धन में बाँधिए।'

'कौन इसका भार उठाएगा?'

'आप!'

'मैं—!'

'हाँ—'

'किस प्रकार ?'

'अपनी कन्या शान्ता के साथ उनका पाणिग्रहण—'

'ओह'—चिन्ता राजा को घेरने लगी।

.० ० :०:

'मन्त्रिन्!'

'भगवन्!!'

'सहन नही होता।'

मन्त्री नतमस्तक हो गया।

'मन्त्रिन्! मैने उत्तम ब्राह्मणो से परामर्श किया है। उनके निर्धारित मार्ग का अनुसरण करना चाहता हूँ।'

'आज्ञा ?'

'ऋष्यशृंग को सत्कारपूर्वक राज्य में ले आओ।'

'ऋष्य शृंग!' मत्री की मुद्रा मे आश्चर्य ने प्रवेश किया।

'हाँ।' राजा ने गम्भीर स्वर से कहा।

मत्री उदास हो गया।

'क्या वात है ?' राजा ने मत्री की ओर देखा।

'महाराज! कठिन है'—मत्री नतमस्तक था।

'आप—?' राजा ने पुरोहित की ओर देखा।

'राजन्! कार्यभार उठाने मे असमर्थता का अनुभव कर रहा हूँ।' पुरोहित दूसरी तरफ देखने लगा। राजा पर उदासी आने लगी।

'अमात्य!' राजा ने मन्द स्वर से सम्बोधित किया।

'क्षमा कीजिए महाराज!' अमात्य ने भूमि की तरफ देखते हुए नम्रतापूर्वक कहा।

'जव चारो ओर आग लगी हो उस समय क्षमा! मन्त्री! पुरोहित!! अमात्य!!! जिस राज्य द्वारा आप लोगों ने इतना सुख उठाया है; जिस राज्य ने आपको मान-प्रतिष्ठा दी है, उसी राज्य के लिए त्याग-निमित्त आप भयाविष्ट हो रहे है ? राज्य के नष्ट होने पर क्या आप वचे रहेंगे ? राज्य-सकट काल मे प्राणों का यह मोह!'

राजा ने पुनः कहा—'राज्य ने आपको मान दिया है । राज्य अपने मान का चाहता है मूल्य । वह मूल्य देना होगा । शान्तिकाल के भोग-सुख का मूल्य सैनिक युद्ध मे रक्त-दान द्वारा चुकाता है । राजकीय प्रतिष्ठा, सम्मान, उसकी मर्यादा, उसकी उन्नति, सुख की आकाक्षा मे प्राण-विसर्जन करने से अधिक सुख और कहाँ मिल सकता है ? आपका उदास और खिन्न रूप देखने के लिए हमने आपको यहाँ नही बुलाया है ।'

सभा स्तब्ध थी । राजा ने किंचित् आवेश मे सभा-त्याग किया ।

:o: :o: :o:

'राजन् !' पुरोहित अमात्य के साथ महाराज लोमपाद के सम्मुख उपस्थित हुआ ।

'कुछ निश्चय किया ?' राजा ने आदेश के स्वर से पूछा ।

'हाँ ।' पुरोहित ने किंचित् प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

'धन्यवाद ! धन्यवाद !!'

'राजन् ! हम लोगों ने मार्ग ढूँढ निकाला है । किन्तु आप उसे—।'

'निर्भय कहो ।'

'राजन् ! ऋष्य शृग तपस्वी हैं । स्वाध्यायी हैं । नारी-जन्य सुख से अनभिज्ञ है ।'

'हूँ—' लोमपाद ने हुँकारी भर दी ।

'इन्द्रियों का सुख किसे प्रिय नही होता ? कौन सुख नही चाहता ? किसका दुर्बल मन विचलित नही होता ? काम किसे नही डिगाता ?'

'हूँ'—लोमपाद के मुख पर गम्भीरता आने लगी ।

'महात्मन् !'—पुरोहित ने गम्भीरतापूर्वक कहा—

'राज्य-हित-निमित्त मानव-मूल्य हीन है ? राज्य-हेतु प्रलोभनो तथा नीतियों की गणना पाप मे नहीं होती । उनका आश्रय लेना उचित होगा ।'

'किन्तु उपाय ?'

'इच्छा होने पर साधन की कमी नहीं होती । इच्छा, साधन और साध्य तीनों साथ चलते हैं । अन्य पर विजय प्राप्त करने के पूर्व अपने मन को प्रथम जीत लेना चाहिए ।'

पुरोहित मुहूर्त्त मात्र ठहरकर पुनः बोला—'राजन्! सामन्त-वर्ग यहाँ उपस्थित है। शक्ति न रहने पर नीति का आश्रय श्रेयस्कर कहा गया है। नीति की विजय यात्रा मे काम सैनिक होगा। मोह होगा अस्त्र, और रणस्थल होगा ऋष्य शृंग का मन।'

'मन—!'

'राजन्! यदि मन पराजित हो गया तो किसका आश्रय लेकर मनुष्य स्थिर रहेगा।'

लोमपद पुरोहित की ओर एकटक देखने लगे। पुरोहित ने कहा—युवती, कामिनी और सुन्दरी गणिकाएँ सर्वालकृता होकर वन में जाएँगी। ऋषि को मोह मे, प्रलोभन मे, फँसाकर यहाँ लाएँगी। तेज किंवा अग्नि का शमन शीतल जल से होता है। मृदुलागी गणिकाओं के सुरभित शीतल स्पर्श द्वारा ऋषिवर का तेज स्वतः तिरोहित हो जायगा।'

राजा के अधरो पर मधुर स्मित-रेखा कौंध गई।

.o: :o: :o:

महर्षि विभाण्डक का आश्रम था जनपद से दूर घोर अरण्य मे। उस एकान्तिक आश्रम मे कभी किसी मानव ने पदार्पण नही किया था। विभाण्डक-पुत्र ऋष्य शृंग शैशवावस्था से केवल पिता को देखता आया था। वन के पशुओं के साथ खेला था। उन्हीं के साथ बढा था। पक्षियो का कलरव सुनता था। उन्ही के साथ बोलता था।

ऋषि-कुमार की दुनियाँ थी आश्रम। उसके मित्र थे वन-शावक। आश्रय थे वन-पादप। मनन सामग्री थी अध्ययन।

दर्शन मे विचरना सीखा था। वेद-घोष में झूमता था। विषय-वासना से दूर था। अपनी छोटी-सी दुनियाँ का सब कुछ था।

वह धीर था। आश्रम में निवास करता था। पिता से इतना सन्तुष्ट था कि कही जाने की इच्छा नही होती थी। अब तक उसने किसी नगर, ग्राम, जनपद का दर्शन नही किया था। जनपदीय वस्तुओ का उसे दर्शन नही हुआ था। वह मानवीय संसर्ग से दूर था।

ऋषि-कुमार विचर रहा था। पिता गए थे कही आश्रम से दूर। उसने सुना मधुर-रव। हृदय आकर्षित हुआ। आश्रम मे मानव-सगीत-

लहरियों को सुना नहीं था। लहरियों में माधुर्य था। आकर्षण था। चुम्बकीय शक्ति थी।

ऋष्य शृंग के पद अनायास उठ चले स्वर-लहरियों की ओर।

:o: :o: :o:

अरुण पल्लव-तुल्य कमनीय, कृशांगी काम-पुत्तलियाँ गान-रत थी। स्वर माधुरी प्रसन्न थी। चंचल कुण्डलों में काम झूला झूल रहा था। नितम्ब-चुम्बित कुंचित केश मेरुदण्ड पर दण्डायमान किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वेणी से किंचित् निकले चंचल कुन्तल मरुत् द्वारा भेज रहे थे सन्देश। रसों के तीर्थ अधरामृत में वासना लगा रही थी गोता। उनकी पलकों की कज्जल की क्षीण रेखा में भरा था शृंगार का सार। चंचल कनीनिका में थी माया की चपलता। तीक्ष्ण अक्षिलोम मे थी तारुण्य की उठान। नासिकाग्र मोड़ पर थी काम की मंजिल। कूर्प कंचन में मन-व्यथित था। अधर-सरोवर में थी रति की तरलता। हनु पर था विह्वलता उल्लास। कपोल पर प्रसरित थी विरल अरुण वारुणी।

उत्तुंग पयोधर उपत्यका में थी मुखरित कल्पना। वेष्ठित कुचाग्र पर स्थित था मनसिज। सीमन्त-रेखा-पथ पर था पथिक मन। वृत्त में थी अनुराग की झलक। ग्रीवा पर मृणाल-पाश में था स्मृति भ्रम। कृश श्रोणि में बल खा रही थी वासना।

ऋषि-कुमार ने देखा रूप। हो गया निश्चल। रति-रूप में हो गया स्तब्ध।

ऋषि शृंग ने नारी-रूप देखा नहीं था। आतुर नूपुर झनझनाने लगे। ऋषि हो गए चकित। किन्तु कमनीय चंचलता उसे विमोहित नहीं कर सकी। स्वर-ध्वनि उसे उमंगित नहीं कर सकी। कटाक्ष प्रभावहीन हो गए। मरुत्-प्रवाह में वस्त्रों से झाँकता यौवन आकृष्ट नहीं कर सका।

काम-पुत्तलियाँ चकित थीं देखकर उनकी स्थिरता। उनकी कला को लगा धक्का। वे चकित ठहर गईं। देखने लगीं ध्यान से। विकार-हीन, विषयहीन विशुद्ध विमल लोचन। देखने लगी उत्साह-रहित, उमंग-

रहित, काम-रहित, भाव-रहित मुखाकृति। मन पर प्रभाव नही जमा सकी। नव विकासोन्मुख यौवन लगने लगा विकार-हीन

वे वारविलासिनियाँ देशद्रोही सैनिक के समान पीछे नही हट सकी। वे लेना चाहती थी लोहा। उन्होने आह्वान किया सभी काम-कलाओ का। नेत्रो मे शर सन्धान कर, कण्ठ मे काम-रस लाकर बोली .

'ब्राह्मण ? आप—'

'मै ? ऋष्य शृंग हूँ'—स्थिर स्वर मे ऋषि-पुत्र ने उत्तर दिया

'परिचय, भगवन्!'

'महर्षि विभाण्डक-पुत्र'—शुद्ध कण्ठ द्वारा स्वर प्रस्फुटित हुआ।

'महात्मन्—नमस्कार!' वार-वधुओ ने सस्मित नमस्कार किया। उन काम-रेखाओ ने प्रफुल्लित नेत्रो से पुन. पूछा .

'आपका आश्रम ?'

'मेरा आश्रम यहाँ है'—पादपावली की ओर देखते हुए ऋषि ने कहा।

'आप जनपद से दूर इतने घनघोर वन मे अकेले रहते कैसे है ?' चचल कृत्रिम चकित चचल मुद्रा से उन्होने कहा।

कामकेलि-पटु रूपाजीवा के सुखमय सस्कृत सम्भाषण द्वारा शृंग प्रभावित होने लगे। वे कुछ कहना ही चाहते थे। अत्यन्त शिष्ट विनीत भाव से उन शालभजिकाओ ने कहा—'महात्मन्! आपका शुभ परिचय हम अकिंचन पा सकती है ?'

'मेरे पिता महर्षि विभाण्डक है। मै उन्ही का औरस पुत्र हूँ। ऋषि शृग नाम और कर्म से मेरी ख्याति है। समीप ही मेरा शुभ दर्शनीय आश्रम है। सविधि आपकी पूजा करना चाहता हूँ। आइए!' ऋषि-कुमार ने निर्विकार भाव से कहा।

'आपकी कृपा—चलिए।' गणिकाओ ने उत्साह से कहा। उन के नूपुर वज उठे। ऋषि शृंग की अनुगामिनी माया तुल्य वे चली।

आश्रम मे महर्षि विभाण्डक नही थे। ऋषि शृंग ने उन्हे आसन दिया। अर्घ, पाद्य, कन्द, मूल, फल द्वारा उनकी पूजा की। अँगनाएँ ऋषि-पुत्र की पूजा प्राप्त करती हुई भी चँचल थी, भयभीत थी। महर्षि के आने का भय था। पूजा समाप्त हुई। सतोष प्रकट करती शीघ्रतापूर्वक बोली—

'ऋषिवर! आज्ञा दीजिए।'

'विश्राम कीजिए'—उनकी आतुरता देखकर ऋषि किंचित् चकित हुए।

'विलम्ब होगा। आपके फल स्वादिष्ट थे। हमारे पास भी फल हैं। ग्रहण कर हमें कृतार्थ करेंगे?' अपने लोचनों में काममद भरकर कहा कामिनियों ने।

'क्यों न लूँगा?' ऋषि शृंग ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा।

गणिकाओं ने फल दिए। उन फलों का स्वाद वन-फल से भिन्न था। उनका स्नेह अतुलनीय प्रकट होता था। उनके सुसंस्कृत परिभाषण में प्रसन्नता थी। उनके हाव-भाव मे एकाकार होने की प्रवृत्ति थी। ऋषि की अचेतन कोमल वृत्तियाँ जाग्रत होने लगीं।

ऋषि ने फल खाए। जल ग्रहण किया। फिर गमनेच्छु अंगनाओं के समीप खड़े हो गए।

हर्ष-समन्वित अंगनाएँ ऋषि-पुत्र का आलिंगन करने लगीं। आलिंगन की प्रतिक्रिया ऋषि-पुत्र पर नही हुई। शनैः-शनैः स्पर्श-सुख का उनको अनुभव होने लगा। उनका मन मोहित होने लगा। मुख पर प्रसन्नता आई। सुख का अनुभव हुआ।

भूले-से वे उन नारियों को देखने लगे। अंगनाएँ मुस्कराईं इस रूप को देखकर। ऋषिपुत्र हो गए गम्भीर उनकी मुसकान देखकर।

'ब्राह्मण! अब हम चलीं'—बिहँसती वे बोलीं।

'क्यों?' ऋषिपुत्र के मुख पर उदासी थी।

'पुनः आएँगी—हाँ, फल लीजिए। मधुर हैं। उत्तम हैं। नवीन हैं। स्वादिष्ट हैं। इनमें वन जैसी एकरसता नहीं है। रस मिश्रण है।'

ऋषिपुत्र ने मोदक फल समझ कर ले लिए। उन्होंने कभी मोदक देखा नहीं था। उनको भी फल समझा। कामिनियों को प्रस्थान करते देखकर ऋषिपुत्र ने व्यग्रता से कहा:

'आप क्यों जा रही हैं?'

'व्रत है!'

'फिर'—कुमार के स्वर में व्याकुलता थी।

'व्रत कोई कैसे भग करेगा ?'—उनके विजयी पद उठने लगे ।

पराजित ऋषिकुमार उदासीन हो गया ।

:o: :o: :o:

ऋषि शृंग की प्रफुल्लता विलुप्त हो गई । उदासीनता ने घेरना आरम्भ कर दिया । सुहावने पवित्र आश्रम मे शान्ति नही मिल रही थी । खोए-से थे । समझ मे नही आ रहा था कहाँ और क्या खो गया है । समझ नही रहे थे, चाहते क्या है । मन से पूछते । मनोवेदना उठती । खिन्न हो गए थे । कुछ चाहते थे देखना । कुछ स्पर्श करना । कुछ खाना ।

अस्वस्थ हृदय व्यथित था । मानस-मन्दिर मे अगनाओ की मूर्तियाँ थी । उनके पद उठ चले, उस स्थान की ओर जहाँ अगनाओ के दर्शन हुए थे ।

देखा—उनकी आँखो ने सर्वा ग अलकृता, अनुपम वस्त्र-विभूषिता, कमनीय गणिकाओ को । उनकी अलसाई पलको पर मँडराती शिथिलता भाग चली । पदो में आगई स्फूर्ति । हृदय मे भर गई उमंग । मुख पर आगई प्रसन्नता ।

अगनाएँ प्रसन्न हो उठी ।

वे चली हहाकर । वज उठे पायल । झूम उठे कुण्डल । फरफरा उठीं साड़ियाँ । लहलहा उठे कुन्तल । नाच उठीं आँखें । हिल उठे उत्तुंग कुचाग्र । मुखरित हुई मधुर वाणी :

'अहा ! आप आ गए !'

ऋषिपुत्र किंचित् लज्जित हुए । तन्त्रीलय-सी बोल उठी :

'फल खाइएगा ?'

'हाँ'—कुमार में लोभ ने प्रवेश किया ।

'स्वादिष्ट थे ?' कामिनियो के उत्फुल्ल नेत्र कुमार के मुख पर स्थिर होने लगे ।

'उत्तम थे ।'—कुमार में स्वाद-भावना आ गई ।

'चलिए हमारे आश्रम मे ।'

'कहाँ है आपका आश्रम ?' स्वर में कम्पन था ।

'वहीं जहाँ फल मिलते हैं। जहाँ हमारी जैसी नारियों से नगर भरा रहता है। जो हमारे गीत से गुंजित रहते है।

'अच्छा'—उन्होने नेत्रों मे देखने का विफल प्रयास करते हुए कहा। उन भोग्याओं ने आकर्षक मुद्रा बनाते हुए कहा—'वहाँ भी सत्कार होता है। वहाँ भी अतिथि-पूजा होती है।'

ऋषिकुमार का मस्तक नत हो गया।

'आप चलिए'—सर्ववल्लभाओं ने कुमार का कर-स्पर्श किया।

'क्यों ?' कुमार का हाथ जैसे बर्फ से छू गया।

'आपके यहाँ हम आईं, आप हमारे यहाँ चलिए। पुर-वामाओं ने कुमार को घेर लिया।

'किंतु ?'—कुमार अस्थिर थे।

'ऊँह'—अंगनाओ ने ऋषि का स्पर्श किया। उन्हें पकड़े हुए बढ़ चली।

'पिताजी ?' ऋषिपुत्र में व्याकुलता आई।

'पुनः आ जाइएगा।' मंगलामुखियों ने ऋषिपुत्र को अंकों में ले लिया और बढ़ चलीं।

'कब तक ?—' कुमार के पैर बढने लगे।

'जब इच्छा होगी।' विजयोल्लास में वे बोल उठीं।

'मै न जाऊँगा'—ऋषिपुत्र के हृदय ने जोर मारा। वे ठिठक गईं।

'अरे तो हम !' वे हो गईं दुःखी। उनके नेत्रों में अश्रुकण भर आए।

ऋषिपुत्र ने व्यग्रता से कहा :

'यह क्या ?'

'आप जो नहीं चलत !'

'अच्छा चलो—'

पादपों पर बैठा आश्रम का विहँगम-समूह कोलाहल सुन उड़ने लगा।

:o: :o: :o:

'वर्षा ! वर्षा !! वाह !!! महाराज लोमपाद हर्षित मन से नाच उठे। चारों ओर हुई आनन्द-ध्वनि। खिल गए मुरझाए मन। उठ गईं

झुकती लताएँ। गाने लगे मन-मारे पक्षी। जीवनमय हो गए जीवन प्राप्त कर पल्लव।

'राजन्! आशीर्वाद।'—पुरोहित ने हाथ उठाते हुए कहा।

'पुरोहित! क्या ऋषि शृंग आ गए?'

'पृथ्वीपते! बिना उनके वृष्टि कैसे होगी?'

'मै दर्शन करूँगा।'

'अवश्य—वह आ रहे है।'

ऋषि शृग का आगमन हुआ। नागरिको के उत्साह, अगनाओं की उमंग, राज-कर्मचारियो के अभिवादन के बीच राजा ने ऋषिकुमार को देखा। भूमिष्ठ प्रणाम किया। ऋषिपुत्र ने आशीर्वाद दिया—'राजन्! चिरजीवी हो।'

राजा ने सादर मुनिपुत्र का यथोचित पाद्य, अर्घ, पुष्पादि से पूजन किया। पूजनानन्तर राजा ने विनीत स्वर मे कहा :

'ऋषिपुत्र! क्षमा-प्रार्थी हूँ।'

'क्षमा? आपने मेरा कोई अपकार नही किया है।'

राजा प्रसन्न हो गए। बोझ हट गया। भयभीत थे। छल प्रगट होने की आशंका थी। राजा ने स्नेह से कहा :

'अन्तःपुर मे चलिए।'

'क्यों?' चकित कुमार ने पूछा।

'महात्मन्! आप मेरे जामाता है।'

'मै?'—कुमार चकित हो गए।

'हाँ—'

'कैसे?'

'मैने शान्ता के निमित्त आपका वरण किया है।'

'कब?'

'बहुत दिनो पहले।'

'मै तो कुछ नही जानता!'

'आइए'—राजा अन्तःपुर की ओर चले।

'शान्ता ! तुम्हारे पति—महर्षि विभाण्डक-पुत्र ऋषि श्रृंग ।'

शान्ता का मस्तक ऋषिपुत्र के चरणों पर था । राजा प्रसन्न थे । राज्य प्रसन्न था और लोगों ने देखा, प्रसन्न थे ऋषि श्रृंग ।

राजा ने कहा—'यहीं निवास कीजिए ।'

ऋषि श्रृंग कुछ उत्तर नही दे सके । आशीर्वाद प्राप्त किया चरण-स्थित पत्नी शान्ता ने ।

आशीर्वाद की प्रतिध्वनि के साथ चरणों पर से उठी शान्ता ।

भुवनभास्कर ने देखा पति-पत्नी का पवित्र सुहावना सुन्दर रूप ।

---
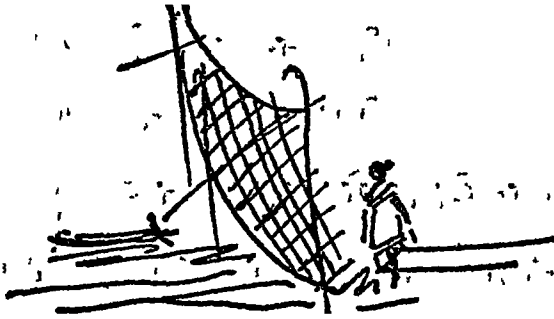
वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड सर्ग ९, १०, ११,

हरिवंशपुराण : १ : ३१ ।

भागवत : ९, २३ ७–१०,

महाभारत वन पर्व : ११० : २६; ११३ ११, २२ . २४; शान्ति पर्व : २३४ : ३४ ।

# काम

गंगा और सरयू का संगम था। दो धाराएँ एकाकार हो रही थी। संगम पर था आश्रम।

आश्रम था रुद्र का। स्थिरचित्त शिव तपस्या कर रहे थे। आश्रम में थी शिष्य-मण्डली।

रुद्र की कान्ति से आश्रम कान्तिमय था। हरित पादप, उत्फुल्ल द्रुम, विकसित पुष्पों की भीनी सुगन्ध से आश्रम की पवित्रता मे पुण्य की सुरभि उठ रही थी। हरित पादपावली से आश्रम मे शान्ति थी। लता-परिरम्भित उत्फुल्ल द्रुम पर विहगम क्रीड़ा-रत थे। कलरव में जैसे नाद-ब्रह्म की पवित्रता मुखरित थी। तरु-शाखाओ पर उठते-बैठते नीलकण्ठ के पंखों की सुन्दर छाया मेदिनी पर भगवान् नीलकण्ठ के आशीर्वाद-स्वरूप पड़ती जाती थी। तरु-शिखर से विश्रृंखलित शुक-वृन्द का उड़ना देखकर प्रतीत होता था मानो किसी ने आकाश मे किंशुक-पुष्प बिखेर दिए हों। किसलय में एकाकी स्थित कोयल की कूक से नीरव स्थान भर उठता था। शिव-वल्लभा अपनी लुभावनी सुगंध से मानो आश्रम में स्नेह-सर्जन कर रही थी।

शिव आसनस्थ थे। मूर्तिमान् कामदेव मरुद्गणों के साथ विवाह करने जा रहा था। रूप-गर्व मे देखा तपस्वी शिव को। अपनी चंचल काम-प्रवृत्ति द्वारा चाहा उत्पन्न करना विकार शिव में। तपस्वी शिव को काम की अशुभ योजना शोभन नही लगी। शिव ने हुंकार द्वारा उसे भयभीत किया। हुकार के साथ ही त्रिनेत्र उन्मीलित हुए। काम की ओर शिव ने दृष्टिपात किया। दृष्टि-ज्योति-ज्वाला मे भस्म होने लगा काम।

चिल्ला उठा। दुर्मति काम का शरीर जलने लगा। गात्रादि भस्म होने लगे। शिव के क्रोधानल में अपने गात्र को हवन कर काम हो गया अनंग। वह भागा। जहाँ जाकर रुका, वह देश प्रसिद्ध हुआ "अंग" नाम से।

---

वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड : सर्ग : २३

महाभारत : आदिपर्व . ६६; ३२-३३

वनपर्व . २१६; ०३

अनुशासन पर्व : १७; ४२

भागवत : ३-१२, २६; १०, ५५-१

# ताटका

सरयू और गगा का सगम पीछे छूट गया। गगा के दक्षिण तट से श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ चले जा रहे थे। घोर वन था।

राम ने विश्वामित्र से पूछा

'मुनिपुगव! इस दुर्गम वन का क्या नाम है? वन झिल्लिकागण-पूर्ण है। प्राणी का कही चिह्न दिखाई नही देता। यहाँ मानव-जन-शून्यता कैसी? श्वापद पशुकीर्ण, पक्षी के दारुण रव से वन गुजित है। नाना प्रकार के शकुनियो की भयानक ध्वनि द्वारा मन मे अनायास भय का संचार हो रहा है। उनका बोलना अत्यन्त अशुभ प्रतीत हो रहा है। मै देख रहा हूँ: सिह, व्याघ्र, वाराह एवं वारणो से वन भरा है। वन अश्वकर्ण, ककुभ, बिल्व, तिन्दुक, पाटल आदि जगली वृक्षो से संकीर्ण हो गया है। वन मे बदरी के पेड़ समूह-के-समूह है। इस दारुण वन का क्या नाम है? यह कैसा वन है?'

'काकुत्स्थ!' महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र बोले—'इस दारुण वन के स्थान पर पूर्व काल मे दो बडे ऐश्वर्य-सम्पन्न जनपद थे। नरोत्तम! उन जनपदों का नाम मलद और कारुष था।'

'किसके उपनिवेश थे महात्मन्?'

'देवताओ के परिश्रम द्वारा उनका निर्माण हुआ था।'

'पुनः यह अवस्था कैसे हुई?'

'इसकी एक कहानी है, राम! मनुष्य की कहानी दिनो की होती है। नगरों की वर्षों की होती है। जनपदो किवा राष्ट्रो की कहानियाँ शताब्दियो की होती है।'

'देव, वह कहानी कहिएगा?'

'कहूँगा नरोत्तम!' विश्वामित्र बोले—'बहुत दिनो की बात है। वृत्रासुर का वध इन्द्र ने किया था। हत्या का पाप लगता है। उससे इन्द्र वंचित नही रह सके। हत्या के पश्चात् इन्द्र को मलिनता एव क्षुधा ने घेर

लिया। ब्रह्म-हत्या का उनमें हो गया समावेश। इन्द्र की मलिनता देख देवता एवं तपोनिधि ऋषियों आदि ने कलश-जलों से उन्हें स्नान कराकर मल का प्रमोचन किया था।'

'भगवन्, मल का अर्थ क्या है?'

'मल का अर्थ है, पाप।'

'और करुष?'

'क्षुधा का नाम है करुष।'

'उसके पश्चात्——?'

'इन्द्र ने अपने मल और करुष का यहाँ त्याग किया था। उनके त्याग के पश्चात् इन्द्र के शरीर का पाप दूर हो गया। हर्ष की लहरियाँ देवताओं में लहरा उठीं। इन्द्र हो गए निर्मल। निष्करुष होकर हो गए शुद्ध। राम! निर्मल एवं निष्करुष बिना हुए कोई शुद्ध नहीं होता। इन्द्र ने वह वस्तु पाई थी जो मानव को साध्य हो सकती है। उस पुण्य स्मृति के रक्षणार्थ इन्द्र की इस देश पर कृपा हुई।

'इस देश पर मलद और कारुष नाम के जनपद हँसने लगे। लोक में उन्हीं नामों से ख्याति हो गई। देवताओं ने जनपद-निर्माण एवं इन्द्र के पवित्र कर्मों से हर्षित होकर उनका जय घोष किया।'

'तत्पश्चात्?'

'पुरुषोत्तम, मलद और कारुष देश धन-धान्य से मुदित हो गए थे। वेद-ध्वनियाँ उठती थी। धर्म-भावना अपूर्व थी। देवताओं की वेदियाँ थीं। आश्रम थे। गृहस्थों के उपवन थे। चारों ओर आनन्द था। पुष्प, पल्लव, पादप, धन-धान्य से देश भर गया था।'

'वह परिवर्तन कैसे हुआ?'

'राजपुत्र!' विश्वामित्र बोले—'परिवर्तन होता है। और परिवर्तन का कारण मानव स्वयं है। जिन हाथों से घर बनता है, उन्हीं हाथों से बिगड़ता भी है।'

'जनपद क्या हुए?'

'कालान्तर में कामरूपिणी यक्षिणी यहाँ आई। काम का बल अमित है। काम के समान सहस्रों हाथियों का बल यक्षिणी में था। यक्षिणी का नाम ताटका था।'

'उसका पति कौन था ?'

'कल्याण हो वत्स !" विश्वामित्र बोले—'ताटका सुन्द की पत्नी है। शक्र के तुल्य पराक्रमी मारीच राक्षस उसका पुत्र है।'

'मारीच ?'

'उसकी भुजाएँ गोल और लम्बी है। मस्तक विशाल है। मुख बड़ा है। शरीर स्थूल है। वह भैरवाकार है। प्रजा को त्रस्त करता है। कष्ट देता है। जनपदो का नित्य विनाश करता रहता है। उसकी माता ताटका इन जनपदो की शत्रु है। उनकी विनाश-लीला के कारण ये जनपद उजड़ गए है। प्राणियो के विलास, उल्लास के स्थान पर सुनाई पड रहा है, वन्य जन्तुओ का हृदय-विदारक भयकर गर्जन।'

'ताटका है कहाँ ?'

'मलद एवं कारुष का नाशकर यहाँ से आघ योजन पर पथ अवरुद्ध किए बैठी है।'।

'हम क्या करे ?'

'ताटका-वन से चलेगे। अपने बाहुबल से ताटका का वध करो।'

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने साश्चर्य विश्वामित्र की ओर देखा—विश्वामित्र ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'मेरी आज्ञा से उसका वध करो। देश को निष्कण्टक करना कर्त्तव्य है।'

विश्वामित्र ने आकाश की ओर देखते हुए पुनः कहा—'देश भयकर हो गया है। देश भयप्रद हो गया है। यक्षिणी ने इसे उजाडकर दारुण बना दिया है।'

विश्वामित्र की बातें सुनकर पुरुष-शार्दूल श्रीरामचन्द्र की शुभ वाणी मुखरित हुई—'मुनिपुंगव ! सुना है, यक्ष अल्पवीर्य होते हैं। यक्षिणी ताटका ने सहस्रो हाथियो की शक्ति कहाँ से प्राप्त कर ली ?'

विश्वामित्र बोले—'यक्षिणी का स्वाभाविक बल नही है। वरदान के कारण वीर्यशालिनी हो गई है।'

'वरदान किसने दिया ?'

'राम ! पूर्व काल मे सुकेतु नाम का महायक्ष था। वह शुभाचारी था। पुत्रहीन था। धर्मात्मा था। उसने महान् तप किया।

'पितामह ब्रह्मा तप से प्रसन्न हुए। उसे ताटका नामक कन्यारत्न दिया। कन्या को सहस्र हाथियों का वल दिया। रूप-यौवनशालिनी बालिका बड़ी हुई। यशस्विनी कन्या का विवाह सुकेतु यक्ष ने जम्बु के पुत्र सुन्द से कर दिया।'

'तदनन्तर?'

'ताटका के गर्भ से महावलवान् पुत्र मारीच उत्पन्न हुआ। वह राक्षस हो गया।'

'राक्षस क्यों हुआ, मुनिवर?'

'अगस्त्य मुनि का आश्रम इसी जनपद मे था। दुष्टाचरण के कारण सुन्द को अगस्त्य ने निहत किया। पति-हत्या से ताटका क्षुब्ध हो गई। प्रतिशोध की भावना उग्र हो गई। मारीच के साथ अगस्त्य को कष्ट देने लगी। ताटका मारीच के साथ गर्जन करती एक समय भक्ष्यार्थ अगस्त्य की ओर दौड़ी। ऋषि ने क्रोधाग्नि में धधकती हुई ताटका तथा उसके पुत्र को अपनी ओर आते देखा। मारीच को शाप दिया—राक्षस हो जाओ।'

'और ताटका का क्या हुआ?'

अगस्त्य मुनि ने ताटका को शाप दिया, 'यक्षिणी! तुम मानव-भक्षण करोगी। तुम्हारा मानव-रूप नष्ट हो जाएगा। तुमने मानवोचित आचरण त्याग दिया है। तुम दारुण रूप-धारिणी होगी। मुख विकृत हो जाएगा।'

प्रतिहिंसा की भावना से किया गया कार्य असफल होने पर मानव विक्षिप्त हो जाता है। मुनि के शाप से उत्तेजित होकर ताटका अगस्त्य के पवित्र आश्रम को उजाड़ने लगी। इस देश को जनहीन कर दिया।

सुन कर राम विचार-मग्न हो गए।

विश्वामित्र ने कहा—'राघव! इस दुष्ट, पराक्रमी, दुर्वृत्त परम दारुण यक्षिणी का संहार करो। अगस्त्य के शाप से क्रोध मूर्च्छित इस यक्षिणी का तुम्हारे अतिरिक्त त्रैलोक्य में और कोई वध नहीं कर सकता।'

'किन्तु स्त्री-वध?' राम ने विवेक का आश्रय लिया।

'रघुनन्दन ! यह स्त्री-वध नहीं है । घृणा मत करो । तुम राजपुत्र हो । समाज की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है । पवित्र-अपवित्र, दोष-निर्दोष, अकर्त्तव्य-कर्त्तव्य, नृशंस-उदार कार्य प्रजा-रक्षणार्थ राजा को निःसकोच करना चाहिए ।

'यही सनातन धर्म है । यक्षिणी मे धर्म विद्यमान नही है । इसका कोई धर्म नही है । मूढ है । जड़ है । आततायी है । क्रूरकर्मी है । इसका वध करना अधर्म नही है, काकुत्स्थ !'

श्रीराम प्रिय बन्धु लक्ष्मण की ओर देखने लगे । गम्भीर हो गए । कुछ उत्तर नही दे सके । बात मन मे बैठी नही । मुनि समझ गए । उत्साहित स्वर से बोले 'राम ! तुमको स्त्री-वध अधर्म प्रतीत होता है । शका हो रही है । स्त्री-वध के औचित्य पर मैने प्रकाश डाला है । शायद तुम सनातन व्यवहार और उदाहरण चाहते हो ।'

राम की दृष्टि नत हो गई । विश्वामित्र ने स्नेह से कहा : 'राम ! पुराकाल में विरोचन-सुता मन्थरा ने पृथ्वी को मारने की इच्छा की थी । उस समय इन्द्र ने उसका वध किया था । पतिव्रता भृगुपत्नी अर्थात् शुक्राचार्य की माता अनिद लोक की इच्छा करती थी । विष्णु ने उसका वध किया । इन्द्र और विष्णु हत्या-दोष के भागी नही हुए । इस प्रकार अनेक राजपुत्रो तथा महात्माओं ने अधर्म-परायण स्त्रियो का वध किया है । इस घृणा से कि अधर्म होगा, कार्य-विरत मत हो । मेरी आज्ञा से स्त्री का वध करो ।'

मुनि के अक्लीव वचनो को राम ने सुना । अञ्जलि बाँध कर बोले : 'पिता के निर्देश के कारण, पिता के वचनो का जो गौरव मेरे लिए है, उसे देखते हुए, आपके वचनों का पालन नि शंक होकर करना चाहिए । गुरुओं के मध्य पिता ने मुझे आदेश दिया था कि मै आपके वचनो का पालन करूँ । मैने पिता से सुना है, आप ब्रह्मवादी है । आपके आदेश का पालन करना मेरा कर्तव्य है । मै ताटका का निस्सन्देह वध करूँगा ।'

मुनि प्रसन्न हो गए । लक्ष्मण मुस्करा उठे ।

राम ने धनुष के मध्य मुट्ठी बाँधी । प्रत्यंचा की तीव्र टंकार से दिशाएँ निनादित हो उठी । उस ध्वनि द्वारा ताटका विक्षुब्ध हो गई ।

क्रोध में आ गई। किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुई। क्रोध-मूर्च्छित ताटका टंकार के मूल स्रोत की ओर दौड़ी।

क्रुद्धा, विकृत-आनना, प्रमाण से अधिक वृद्ध ताटका को देखकर राम ने लक्ष्मण से कहा—'लक्ष्मण ! यक्षिणी के भैरव दारुण वपु-दर्शन मात्र से भीरुओं का हृदय कम्पित हो उठेगा। यह मायाबल-समन्वित है। सरलता-पूर्वक जीतना कठिन है। नाक-कान काटकर छोड़ देना चाहिए।'

'इसका वध—' लक्ष्मण ने पूछा।

'लक्ष्मण ! मै हत्या नही करूँगा। स्त्री-स्वभाव होने के कारण ताटका रक्षित है। इसके वीर्य और आकाशगमन की शक्ति को नष्ट कर देना चाहिए।'

राम लक्ष्मण से वार्तालाप कर रहे थे। क्रोध-मूर्च्छिता ताटका बाहुओं को उठाए राम की ओर दौड़ी। विश्वामित्र ने उसे आते देखकर हुंकार किया। स्वस्ति-वाचन करने लगे। उन्होंने राम-लक्ष्मण का जय-घोष किया।

ताटका ने धूलि से आकाश भर दिया। राम धूलि से घिर गए। धूलि के बादल में मुहूर्त्त काल के लिए राम विमोहित हो गए।

ताटका माया द्वारा शिला-वर्षा करने लगी। उसका उत्पात देखकर राम को क्रोध आ गया। शिला-वर्षा को राम ने शर-वर्षा द्वारा बेकार कर दिया। ताटका के दोनों हाथ बाणों से कट कर गिर गए।

छिन्न-भुजा शिथिल ताटका भूमि पर गिर गई। भयंकर गर्जन करने लगी। सौमित्र ने ताटका के नाक-कान काट लिए।

ताटका माया द्वारा इच्छा-रूप धारण कर सकती थी। वह अन्तर्धान हो गई। राम-लक्ष्मण मोहित हो गए। कर्त्तव्य निश्चित नही कर सके। ताटका अश्म-वृष्टि करती हुई उन्मत्त की तरह घूमने लगी। मुनि सहित राम-लक्ष्मण पत्थरों से घिर गए।

विश्वामित्र बोले—'राम ! वह घृणा की पात्री है। पापिनी है। यज्ञ-विघ्नकारिणी है। यक्षिणी अपनी माया से पुनः वार्धक्य प्राप्त कर सकती

है। वध करो, सन्ध्या होना चाहती है। अन्यथा इसका वध कठिन हो जाएगा।

विश्वामित्र का आदेश श्रीराम ने सुना। पाषाण-वर्षणशीला, माया-बल-समन्विता यक्षिणी को शब्दवेधी बाणों द्वारा राम ने घेर लिया। वह बाणों की उपेक्षा करती हुई सवेग राम-लक्ष्मण की ओर दौड़ी। विक्रान्त अशनि के समान अपनी ओर उसे आती देखकर राम ने बाणों द्वारा उसका बध कर दिया। वह पृथ्वी पर गिरी और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

इस भीमकाय यक्षिणी को मृत देखकर सुरपति इन्द्रादि का जयघोष प्रतिध्वनित हुआ—'साधु-साधु! धन्य-धन्य!!'

इन्द्र ने राम की पूजा कर विश्वामित्र से कहा—'कौशिक! आपका कल्याण हो। आपके कार्य से सब प्रसन्न है। आप सत्य-पराक्रम राम पर पुत्रवत् स्नेह प्रदर्शित कीजिए। अमोघ अस्त्र-शस्त्र श्रीराम को दीजिए। वे आपके अनुगामी है। उसके पात्र है।'

देवतागण विश्वामित्र की स्तुति कर चले गए। सन्ध्या हो गई थी। विश्वामित्र प्रसन्न थे। राम का सिर स्नेह से सूँघ कर विश्वामित्र ने कहा: 'शुभ-दर्शन राम! आज की रात्रि यही व्यतीत करेंगे।'

---

- वाल्मीकीय रामायण वालकाण्ड सर्ग २४, २५, २६,

ताडका, ताडिका शब्द ताटका शब्द के नामान्तर मात्र है।

# वामन

'भगवन् !'—अग्नि, अन्य देवताओं के साथ बोले—'विरोचन-पुत्र बलि ने उत्तम यज्ञ का आयोजन किया है। अपूर्ण व्रत-काल मे कार्य-सम्पादन कर लेना चाहिए।

'यज्ञ कहाँ हो रहा है ?'

'सिद्धाश्रम मे।'

ताटका-वन के पश्चात् का स्थान पर्वत के निकट था। मेघ-तुल्य काले घनीभूत वृक्षों का समूह था। स्थान दर्शनीय और मनोहर एवं मृगा-कीर्ण था। पक्षियों के कलरव से गुंजित था। देश सुखी था। धन-धान्य से पूर्ण था। हरित पादप प्रसन्न थे। देश के प्राणी सुखी थे। अराजकता नहीं थी। प्रकृति की उस स्थान पर कृपा थी।

स्थान की ख्याति सिद्धाश्रम नाम से थी। सुरगण-पूजित था। पवित्र स्थान के साथ गुँथी थीं सनातन कहानियाँ।

उस पवित्र स्थान पर नमस्कृत विष्णुदेव ने सैकड़ों युगों तथा वर्षो तक तपस्या की थी। महातपस्वी विष्णु ने वहाँ सिद्धि प्राप्त की थी। उसी पवित्र आश्रम में यज्ञ की सुन्दर वेदी बनी थी।

बलि ने देवताओं को जीता था। इन्द्र को जीता था। त्रैलोक्य के राजा यज्ञ-भूमि में एकत्र थे। उनमें अभूतपूर्व उत्साह था। उमंग थी। असुरों का विजयोत्सव था।

'यज्ञ-काल में वह क्या करता है ?' भगवान् विष्णु ने जिज्ञासा की।

'देव ?' देवता बोले, 'याचकों को इच्छानुसार सन्तुष्ट करता है।'

विष्णु मुस्करा उठे।

'उसके दान की त्रैलोक्य में प्रशंसा है।' देवताओं ने गंभीरतापूर्वक कहा।

'दान निमित्त वांछित वस्तु उसे मिल जाती है।'

'अच्छा !'

'उसे कमी नही है । स्वयं बली है । उसके सम्मुख त्रैलोक्य ने मस्तक झुका दिया है । वह सर्व-साधन-सम्पन्न है ।'

'आप लोगो का अभिप्राय क्या है ?'—विष्णु ने देवताओ से पूछा ।

'बलि की शक्ति-वृद्धि, भगवन्, सुरो के निमित्त हितकर नही है ।'

'आप लोगो ने कुछ निश्चय किया है ?'

'भगवन् ! सुर-हितार्थ आप महायोग का आश्रय ले वामन-रूप धारण कीजिए । अत्यन्त लघु होकर असुर बलि के पास जाइए । हम लोगो का कल्याण कीजिए ।'

'कैसे ?'

'भगवन् ! आपको अत्यन्त लघु जानकर बलि अहम्भाव से आपकी उपेक्षा करेगा । अहंकार का उसमे प्रवेश होगा । अहंकार सर्वनाश का कारण है । वही उसके नाश का कारण होगा ।'

:o: :o: :o:

यज्ञ-मण्डप यज्ञ-ज्वाला से अकस्मात् जाज्वल्यमान हो गया । लोगो ने देखा, अपनी पत्नी अदिति के साथ आगमनशील तेजस्वी कश्यप मुनि को । पत्नी सहित उन्होने दो सहस्र वर्षो का व्रत समाप्त किया था । वे भगवान् की स्तुति करने लगे—

'तपोमय, तपोराशि, तपोभूति, तप स्वरूप, पुरुषोत्तम ! मैं आपको अपने तप द्वारा देख रहा हूँ । प्रभो ! आपमे जगत् है । आप अनादि है । आप—अनिर्देश्य है । हम आपकी शरण मे है ।'

'भद्र !' हरि स्नेहपूर्वक कल्मषहीन कश्यप मुनि से बोले—'वर माँगिए । आप वर-प्राप्ति-योग्य है ।'

कश्यप ऋषि ने प्रसन्न-वदन निवेदन किया—'सुव्रत ! देवताओं की मुक्ति तथा ससार का उद्धार हमारी याचना है ।' भगवान् की दृष्टि कश्यप पर स्थिर होने लगी ।

'शत्रुसूदन ! आप शोकार्त्त देवताओ की सहायता निमित्त मेरे पुत्र-रत्न के रूप मे जन्म ले ।'

भगवान् विष्णु के अधरों पर स्मित रेखा खिंच गई ।

'भगवन् !' कश्यप बोले—'आपके कारण वह स्थान सिद्धाश्रम हो जाएगा । वहाँ कर्मो की सिद्धि होगी ।'

कालान्तर में भगवान् ने कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से वामन अवतार लिया ।

:o: :o: :o:

'महाराज ! याचक आए है'—प्रतिहारी ने कहा ।

'क्या माँगते है ?'—बलि ने उत्साह से कहा ।

'महात्मन् ! आपका शुभ दर्शन ।'

ब्रलि ने देखा एक वामन । ऋषिपुत्र जैसा था उसका वेश । वामन-रूप देखकर बलि को कुछ हँसी आई । अहंकार का उदय हुआ । वामन क्या याचना करेगा ! लेकर कितना जा सकता है । बलि को अपनी शक्ति पर हुआ गर्व । वह दाता है । सर्व शक्तिमान् है । किसको क्या नहीं दे सकता !

असुरों के मध्य वामन खड़ा था । उसे सब छोटा समझ रहे थे । उसके रूप पर असुरों को हँसी आ रही थी ।

'याचक !'—बलि ने वामन को आदर से देखते हुए सस्मित कहा ।

'राजन्—वामन ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया ।

'याचक को इच्छानुसार दान देता हूँ'—बलि ने गर्वपूर्वक कहा ।

'याचक की इच्छा आप पूरी कर सकते है ?'

बलि ने अपने वैभव की ओर देखते हुए संतोष के साथ कहा—'हाँ ।'

'आपके पास इतनी सम्पत्ति है ?' वामन का मस्तक नत था ।

'त्रैलोक्य है'—बलि की वाणी मे अहंकार था ।

'राजन् ! मै लघु शरीरधारी जीव हूँ । अपनी याचना प्रगट करूँ ?'

'प्रसन्नतापूर्वक'—बलि ने उपेक्षापूर्वक कहा ।

'वचन देते है ?'—वामन भूमि की तरफ देखने लगा ।

'निस्सन्देह'—बलि ने आकाश की ओर देखते हुए कहा ।

'तीन पग भूमि दे दीजिए'—वामन की दृष्टि बलि के मुख-मण्डल पर स्थिर होने लगी ।

'केवल तीन पग ?' बलि चकित हो उठा ।

'हाँ'—वामन मुस्कराया ।

'नाप लीजिए'—बलि ने अट्टहास किया ।

वामन ने तीन पगो में त्रैलोक्य नाप लिए । बलि स्तम्भित हो गया । असुर दूर हटने लगे ।

'बलि ! मैने यह त्रैलोक्य इन्द्र को पुन दिया ।'

'भगवन् !' अहकार लज्जित हो गया । शक्ति लुप्त हो गई । शे थे केवल बलि ।

---

वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड अध्याय २९,
किष्किन्धाकाण्ड अध्याय ४०, ५८;
उत्तरकाण्ड

आदिपर्व ६५, २०

वनपर्व . २८, ३-४; २७२, ६३-६९

शान्तिपर्व ९०, २४, २२३; २२४, २२५, ३०-३२, २२७, २१-८८

अनुशासनपर्व ६, ३५, ९०, २०, ९८, १५, ९, १२; ४, १०

महाभारत सभापर्व : ३८, २९

ऋगवेद . १, २२, १७-१८, १, २२, १८, १, १५४, २, १० ८८ १०;

निरुक्त १२, १९,

तैत्तिरीय सहिता २, १, ३, २, ४, १२-२,

शतपथ ब्राह्मण १, २, २, १-५,

भागवतपुराण १८, १३, १, ३, ८, २०

पद्मपुराण . उत्तरखण्ड ५३, ६१, १६०,

वामनपुराण २८; ३१,

स्कन्दपुराण १, १, १८-१९,

मत्स्यपुराण : २४५ २४६,

# कुशनाभ

पुराकाल में महा तपस्वी कुश राजा थे। वह साक्षात् ब्रह्मा के पुत्र थे। अक्लिष्ट व्रत और धर्मज्ञ थे। सज्जन-प्रतिपूजक थे। उत्तम कुलोत्पन्न विदर्भ की राजकुमारी उनकी धर्मपत्नी थी। उनके चार पुत्र थे। उनके नाम कुशाम्व, कुशनाभ, असूर्तरजस किंवा अमूर्तरयस तथा वसुनाभ था। वे दीप्तियुक्त थे। महा-उत्साही थे। पुत्र क्षात्रधर्म का पालन करें, राजा में इच्छा उत्पन्न हुई। राजा ने अपने सत्यवादी और धर्मनिष्ठ पुत्रों से कहा :

"वत्स! प्रजा पालन करो। यही सबसे बड़ा धर्म है।"

:o: :o: :o:

लोक-सत्तम उन चारों पुत्रों ने पिता के आदेश पर चलने का दृढ़ निश्चय किया। उन लोगों ने पृथक्-पृथक् नगरों की स्थापना की।

महातेजस्वी कुशाम्ब ने कौशाम्बी (वर्तमान कौसम) नगर बसाया। धर्मात्मा कुशनाभ ने महोदय नगर बसाया। महामति असूर्तरजस ने धर्मारण्य नामक श्रेष्ठ नगर स्थापित किया। राजा वसु ने गिरिव्रज नामक नगर बसाया।

गिरिव्रज का नाम वसुमति प्रख्यात हुआ। उसके चारों ओर पाँच शैल थे। उनके नाम विपुल, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यकथा थे। सुमागधी अर्थात् शोण नदी मागधी नाम से विश्रुत थी। वह दक्षिण-पश्चिम दिशा से प्रवाहित होती मगध में आई है। अतएव उसे सुमागधी कहते है। पाँचों शैलों के मध्य वह माला-तुल्य सुशोभित थी। मागधी नदी दक्षिण-पश्चिम से आकर पूर्व की ओर बहती है। उसके दोनों उपकूलों पर रम्य एवं हरित क्षेत्र है। वह शस्यमाला से अलंकृत रहती थी।

:o: :o: :o:

राजर्षि कुशनाभ ने घृताची अप्सरा के गर्भ द्वारा एक शत कन्याएँ प्राप्त की वे सुन्दर थी। रूप-लावण्य युक्त थीं।

समय पाकर वे कन्याएँ सावन के सरोवर के समान देखते-देखते यौवन-रस से भर गईं। वे अध्वानो मे विहार करने लगी।

यौवन ने उन्हे और रूपशाली बना दिया। वस्त्राभूषणालकृता वे एक दिन हरित उद्यान-भूमि में वर्षाकालीन विद्युन्माला-तुल्य सुशोभित थी। उत्तम आभूषणालकृत वे अगनाएँ उमग से गाने लगी। नृत्यशीला हुईं। वाद्यलय पर आमोद-प्रमोद मे लीन हो गईं।

उनके अग सुन्दर थे। उनका रूप अप्रतिम था। मेघमाला मे छिपे तारोतुल्य वे हरित उद्यान मे सुशोभित हो रही थी।

सर्वात्मक वायु गुण-सम्पन्ना, रूप-यौवन-समन्विता युवतियों को देखकर बोला :

"आप लोगो को अपनी भार्या-रूप मे देखने की कामना करता हूँ। मनुष्य भाव का त्याग कर मुझे अगीकार करो और देवांगनाओ तुल्य दीर्घ आयु प्राप्त करो।"

अगनाएँ चकित हुई। वायुदेव की अनुरागपूर्ण वाणी पुन. मुखरित हुई :

"मानव-शरीर मे यौवन चचल रहता है। यौवन प्रतिक्षण क्षीण होता रहता है। मेरी भार्या होने पर तुम लोग अक्षय यौवन प्राप्त करोगी।"

कन्याएँ वायु की कामपूर्ण बाते सुनकर अवहेलनापूर्वक हँसने लगी। वे बोली :

"सुरसत्तम! आप सभी भूतों मे प्राणवायु-स्वरूप विचरण करते है। हम आपके प्रभाव को जानती है। हम लोगों का अन्तर्भाव आप जानते है। पुन अनुचित प्रस्ताव द्वारा हमारा अपमान करना आपके लिए शोभनीय नही है।"

वायुदेव गम्भीर हो उठे।

"देव! सुरश्रेष्ठ!!" वे बोली, "हम कुशनाभ की कन्याएँ है। शाप द्वारा देवता होने पर भी आपको पद से च्युत कर सकती है। किन्तु हम शाप देकर अपना तप नष्ट नही करना चाहती।"

"सुश्रोणियो !"

"दुर्मेध ! उस काल को उपस्थित नहीं होना चाहिए कि हम अपने सत्यवादी पिता की अवहेलना कर स्वयं पति का वरण कर लें ।"

"तुम्हारा विवाह कौन करेगा ?"

"पिता हमारे प्रभु हैं । हमारे परम देवता हैं । जिसे वे हमें देंगे वही हमारा भर्त्ता होगा ।"

वायुदेव कन्याओं की बात सुनकर क्रोधित हो उठे । उन्होंने कन्याओं के गात्रों में प्रवेश किया । उनका शरीर भीतर से तोड़ डाला । वे संकुचित हो गईं । वेदना से व्याकुल हो गईं । परम शोभनीय कन्याएँ वायु द्वारा भग्न कर दी गईं । वे पिता के घर आईं । लज्जित थीं । उद्विग्न थीं । उनके लोचनों में अश्रु थे ।

अपनी परम शोभनीय कन्याओं को भग्न एवं अत्यन्त दीन देखकर सम्भ्रान्त राजा कुशनाभ ने पूछा : "पुत्रियो ! किसने धर्म की अवहेलना की है ? तुम कुब्जा कैसे हुईं ? चेष्टा करने पर भी तुम क्यों नहीं बोलती हो ?"

राजा कन्याओं की दयनीय दशा देखकर हताश हो गए और निःश्वास लेने लगे । पुनः सावधान होकर बैठ गए । धीमान् पिता कुशनाभ की बात सुनकर कन्याओं ने पिता के चरणों पर मस्तक रख दिया । वे बोलीं :

"सर्वात्मक वायु अशुभ मार्ग का अवलम्बन करना चाहता था । उसकी दृष्टि अधम हो गई थी ।"

"ओह !" राजा का मुख रक्तवर्ण होने लगा ।

"हमने वायु देव से विनय की, हमारे पिता जीवित हैं । हम स्वच्छन्द नहीं हैं । पिता यदि आपको दे दें, तो हम आपकी हो जाएँगी । उसने हम लोगों की बातों की उपेक्षा की । हम कहती ही रह गईं । उसने यह दशा कर दी है ।"

परम धार्मिक राजा कुशनाभ ने कहा, "पुत्रियो ! क्षमाशीलों का महत्त्वपूर्ण कार्य क्षमा करना है । तुमने महान् कार्य सम्पादन किया है । एकमत होकर तुम लोगों ने अपने पवित्र कुल की मर्यादा की रक्षा की है ।

कामभाव को हृदय मे स्थान न देकर अद्भुत कार्य किया है। नारी हो अथवा पुरुष, क्षमा उनका अलंकार है। तुम्हारी क्षमा देवताओं के लिए कठिन है। पुत्रियो!! क्षमा का दिव्य आदर्श तुम लोगो ने रखा है। मै चाहता हूँ कि इस कुल मे क्षमा रहकर उसकी शोभा वढाएँ।"

कन्याएँ अपनी प्रशंसा सुनकर सकुचित हो गई। राजा ने कहा—'वत्से! क्षमा दान है। क्षमा सत्य है। क्षमा यज्ञ है। क्षमा यश है। क्षमा धर्म है। क्षमा द्वारा ही समस्त जगत् स्थित है। पुत्रियो!! अव तुम अन्त.पुर मे जाओ।"

:o: .o. :o:

राजा ने मन्त्रियो से परामर्श किया। निश्चय किया गया कि कन्याओ का विवाह देश-काल के अनुसार कर देना चाहिए।

"मन्त्रिगण! ब्रह्मदत्त को वुलाना चाहिए।" राजा कुशनाभ ने मन्त्रियों से कहा।

"किसलिए भगवन्!"

"वही हमारे जामाता होगे।"

"वे है कौन ?"

महातपस्वी, सदाचारी तथा ऊर्ध्वरेता चूली ऋषि का नाम आपलोगो ने सुना होगा? चूली ऋषि ने वेद-विहित तपस्या आरम्भ की। उर्मिला की कन्या सोमदा थी। गन्धर्व-कन्या थी। सोमदा विनय एवं नारी-जन्य शील के साथ मुनि की सेवा करने लगी।

उसकी सेवा से मुनि अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"भद्रे! मै तुम्हारी सेवा से परितुष्ट हूँ। बोलो, मै तुम्हारा क्या प्रिय कार्य कर सकता हूँ?"

सोमदा ने मुनि को परितुष्ट देखा। परम प्रीतिकर मधुर स्वर द्वारा वाक्यकोविद मुनि से बोली:

"आप ब्राह्मी विभूति से विभूषित हैं। आप ब्रह्म-स्वरूप है। आप महान् तपस्वी है। ब्राह्म तपस्या से युक्त है। मै ब्राह्म तप-युक्त धार्मिक

पुत्र चाहती हूँ। मैं किसी की भार्या नहीं हूँ। मेरा कोई पति नहीं है। मैं किसी की पत्नी नहीं होना चाहती। ब्राह्मबल द्वारा आप मुझे पुत्र दें।"

चूली ऋषि प्रसन्न हुए। उसे ब्राह्म तप से सम्पन्न (मानस) पुत्र दिया। चूली ऋषि के मानसिक संकल्प द्वारा उत्पन्न हुए मानस-पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। वह काम्पिल्य नगर में निवास करते हैं। मैंने उन्हीं के साथ अपनी शत कन्याओं का विवाह करने का संकल्प किया है।

:o: :o: :o:

महातेजस्वी राजा कुशनाभ ने ब्रह्मदत्त को अपनी कन्याओं का दान किया। इन्द्र-तुल्य तेजस्वी ब्रह्मदत्त ने क्रम से सब कन्याओं का पाणिग्रहण किया। ब्रह्मदत्त के कर-स्पर्श करते ही कन्याओं का कुब्जत्व-दोष दूर हो गया। वे विगत-ज्वर हो गईं। उत्तम शोभा से युक्त होकर वे पुनः शोभनीय हो गईं। कन्याओं का पूर्व-रूप देख कर राजा प्रसन्न हो गए। राजा ने कन्याओं तथा पुरोहित सहित ब्रह्मदत्त को विदा किया।

:o: :o: :o:

राजा कुशनाभ पुत्रहीन थे। ब्रह्मदत्त प्रस्थान कर चुके थे। राजा कुशनाभ ने पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञ-काल में कुश ने कुशनाभ से कहा—"पुत्र! तुम्हारे ही समान सुधार्मिक पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा। उसका नाम गाधि होगा। वह इस संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेगा।"

राजर्षि कुश ने राजा कुशनाभ को आशीर्वाद दिया और ब्रह्मलोक चले गए।

तदनन्तर राजा कुशनाभ को गाधि नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ। गाधि के पुत्र कौशिक विश्वामित्र हुए। कुशवंश में उत्पन्न होने के कारण विश्वामित्र की संज्ञा कौशिक हुई।

विश्वामित्र की एक ज्येष्ठ वहन थी। उसका नाम सत्यवती था। वह व्रतनिष्ठ थी। उसका विवाह ऋचीक ऋषि से हुआ था। पति-अनुवर्ती सत्यवती सशरीर स्वर्ग गई थी। वह कौशिकी नाम से प्रख्यात हुई। सत्यवती भूतल पर परम उदार महानदी कौशिकी नाम से प्रख्यात है।

हिमवन्त की आश्रिता है। पुण्य-सलिला वह दिव्य नदी रम्य है। विश्वामित्र अपनी बहन कौशिकी से अत्यन्त स्नेह करते थे। अतएव उन्होंने अपना आश्रम कौशिकी के तट पर बनाया। सौभाग्यशालिनी पतिव्रता कौशिकी रूप से सरिताओ मे श्रेष्ठ है।

---

वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड सर्ग -- ३२-३३

पुराण : भागवत ९-१५

महाभारत आदिपर्व ७४ ६९

# सुरति-क्रीड शंकर

शैलेन्द्र हिमवान् बहुमूल्य धातुओं से पूर्ण है। उसकी स्त्री थी मयना, जो सुमेरु पर्वत की कन्या थी। हिमवान् की वह पत्नी थी। मनोज्ञ मयना से हिमवान् को दो कन्या-रत्न प्राप्त हुए थे। ज्येष्ठा गंगा और कनिष्ठा का नाम उमा था।

देवकार्यार्थ देवताओं ने हिमवान् स गंगा को माँगा। गंगा का नाम त्रिपथगा भी था। लोकपावनी ज्येष्ठा कन्या का त्रैलोक्य-हित-दृष्टि से हिमवान् ने दान कर दिया। त्रैलोक्य-हिताकांक्षी त्रिलोका गंगा का देवताओं ने प्रतिग्रह किया। वे वांछित फल प्राप्त कर देवलोक चले गए।

हिमवान् की दूसरी कन्या उमा ने सुव्रत लिया। वह उग्र तपस्या करने लगी। लोक-नमस्कृता उग्र तपस्विनी उमा का कन्या-दान हिमवान् ने रुद्र को किया।

:o: :o: :o:

शितिकण्ठ महादेव उमा के साथ रमण करने लगे। रतिक्रीडा में दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये। दीर्घकालीन मैथुन के पश्चात् भी महादेव को कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। देवतागण, ब्रह्मादि ने शिव को काम-विरत करने का विचार किया।

देवगण शिव का प्रणिपात करते हुए बोले: "प्रभो! लोक-हितरत देव! देव!! महादेव!!! आपके तेज को लोक धारण करने में असमर्थ है। आप देवी के साथ शास्त्र-विधि अनुसार तपस्या कीजिए। त्रैलोक्य-हित-दृष्टि से अपने तेज द्वारा अपना ही तेज धारण कीजिए। लोकों की आप रक्षा कीजिए। इस संसार को लोकरहित मत होने दीजिए।"

सर्वलोक-महेश्वर देवताओं की बात सुनकर बोले "तथास्तु।"

देवता प्रसन्न हो गए।

"देवगण !" महादेव पुनः बोले : "मै देवी के साथ तेज को तेज ही मे धारण करूँगा। पृथ्वी तथा लोक शान्ति-लाभ करें। आपलोग तथा पृथ्वी प्रसन्न हो।

"किन्तु सुरसत्तम !" भगवान् शकर ने गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया : "यदि मेरा महान् उत्तम तेज क्षुभित होकर स्थानच्युत हो जाय तो उसे कौन धारण करेगा ?"

"देवाधिदेव ! यदि आपका तेज क्षुभित होकर स्थानच्युत होगा तो उसे धरा धारण करेगी।"

सुरपतियो की प्रार्थना पर महादेवजी ने अपने तेज का त्याग किया। उस तेज द्वारा कानन तथा पर्वतो सहित समस्त पृथ्वी व्याप्त हो गई।

देवताओं ने अग्निदेव से कहा : "अग्ने ! आप रुद्र के महातेज को वायु के सहयोग से धारण करे।"

अग्नि द्वारा व्याप्त होने पर तेज श्वेत पर्वत के रूप में परिणत हो गया। तेज द्वारा शरवण अर्थात् सरकण्डो का दिव्य वन प्रकट हुआ। वह अग्नि तथा सूर्य तुल्य तेजोमय प्रकट होता था।

अनन्तर उस महातेज से उस वन में महा-तेजस्वी कार्त्तिकेय का प्रादुर्भाव हुआ।

देवताओ का ऋषिगणो के साथ आगमन हुआ। सप्रीत मन से शिव एव देवी उमा की उन्होने पूजा की।

देवी पूजा से प्रसन्न नही हुईं। उनके लोचन क्रोध द्वारा आरक्त हो गए।

"देवगण !" देवी ने सरोष शाप दिया . "मैने पुत्र-प्राप्ति की कामना से पति के साथ समागम किया था, किन्तु बीच मे आपलोगो ने विघ्न डाल दिया। अतएव आप लोग अपनी स्त्रियो द्वारा सन्तान उत्पन्न करने योग्य नही रह जाएँगे। वे सतानहीन हो जाएँगी।"

उमा का उग्र रूप देखकर देवता काँप उठे। देवी की शाप-ध्वनि गूँजते ही देवता उदास हो गए। उनके मस्तक नत हो गए।

"पृथ्वी !" देवी सक्रोध पृथ्वी की ओर देखकर बोली : "तुम अनेक रूप धारण करोगी। बहुतो की भार्या बनोगी। मूर्खे !! मेरी कोख

से पुत्र उत्पत्ति न हो, इसकी तुम कामना कर आनन्द का अनुभव कर रही थी। मेरे क्रोध से कलुषित होकर तू पुत्र-जन्य सुख प्राप्त नहीं करेगी।'

शाप सुनते ही इन्द्र वरुण दिशा की ओर और महादेव उमा सहित उत्तर दिशा हिमवान् पर तपस्या करने चले गए।

---

वाल्मीकि रामायण : सर्ग : ३६-३७

महाभारत . आदि पर्व : २२६ . ३२

# कार्त्तिकेय

"पितामह !" देवताओं ने परम पिता प्रजापति ब्रह्मा से निवेदन किया . "पुरा काल मे भगवान् शिव ने हम लोगों को सेनापति दिया था । हिमालय के एक शिखर पर परम आस्था के साथ देवी उमा के संग वे तपस्या कर रहे है । भगवन् ! लोक-हित-कार्य करना चाहिए । आप हम लोगों की परम गति है ।"

सर्वलोक-पितामह देवताओ की बात सुन कर सान्त्वनापूर्ण मधुर स्वर से बोले :

"शैलपुत्री ने आप लोगो को शाप दिया है । वह असत्य नही हो सकता । इसमे सशय नही करना चाहिए । आप लोगों को अपनी पत्नी से सन्ताने उत्पन्न नही होगी ।"

"भगवन् ! पुन हम लोगो की रक्षा कैसे होगी ?"

"देवगण । आकाश-गगा उमा की बडी बहन है । उनके गर्भ मे शकर का तेज अग्निदेव स्थापित करेगे । उनसे पुत्र उत्पन्न होगा । वह पुत्र आपके शत्रुओ का नाशक देव-सेनापति होगा । शैलेन्द्र हिमालय की गगा ज्येष्ठा कन्या है । उमा उसे अपने पुत्र-तुल्य मानेगी ।"

देवतागण कृतकार्य हुए । उन्होंने भगवान् पितामह की पूजा तथा प्रणाम किया ।

:o: :o: :o:

धातु-मण्डित कैलास पर्वत पर देवतागण पहुँचे । उन्होने अग्नि से निवेदन किया

"हुताशन ! देवताओं का कार्य है । शैलपुत्री गंगा में आप महान् तेज उत्सर्ग कीजिए ।"

"मै प्रतिज्ञा करता हूँ देवगण !" अग्नि ने निश्चयात्मक स्वर मे कहा ।

:o: :o: :o:

"देवि !" पावक देवी गंगा के समीप जाकर बोले : "आप गर्भ धारण कीजिए । देवताओं का यह प्रिय कार्य है ।"

अग्नि की बात देवी गंगा ने सुनी । उन्होंने दिव्य रूप धारण किया । अग्नि ने गंगा जी की अपूर्व महिमा देखी और शिवजी का तेज उनके चारों ओर बिखेर दिया । पावक ने शिव के उस तेज द्वारा देवी गंगा का अभिषेक किया । गगा के सब स्रोत पूर्ण हो गए ।

सर्वदेवो मे अग्रगामी अग्नि से गंगा बोलीं : "देव ! मै आप के इस समुद्धत तेज को धारण करने मे असमर्थ हूँ । मै जल रही हूँ । मेरी चेतना व्यथित हो गई है । मै अशक्त हूँ ।"

अग्नि से निवेदन कर गंगा तेज से व्याकुल हो उठी । अग्नि ने गंगा के व्याकुल स्वरूप को देखकर कहा :

"हिमवंत के पार्श्व में अपना गर्भ सन्निवेश कर दीजिए ।"

गंगा ने अग्नि के वचन का पालन किया । अतिभास्वर गर्भ अपने स्रोत से उत्सर्ग करके यथास्थान रख दिया । वह गर्भ पृथ्वी पर जहाँ स्थापित हुआ वहाँ की धरणी कांचन रूप हो गई । उसके समीपवर्ती प्रदेश अनुपम प्रभा से प्रभावित रजतमय हो गए । उस गर्भ से दूर की वस्तुएँ यथाक्रम ताम्र-कार्ष्णप हुईं । उस गर्भ का मल राँगा और शीशा हुआ । भूमि पर तेज ने नाना धातुओं में वार्धक्य प्राप्त किया । उस गर्भ के निक्षेप-मात्र से पृथ्वी तेज द्वारा रंजित हो गई । श्वेत पर्वत, वनादि सुवर्णमय होकर चमकने लगे । अग्नि-रूप होने के कारण सुवर्ण का नाम उस समय से जातरूप हो गया । गर्भ सम्पर्क द्वारा तृण, वृक्ष, लता, गुल्म सब कांचन-स्वरूप हो गए । उत्पन्न हुए कुमार को इन्द्र, देवों, मरुत्गणों ने छह कृत्तिकाओं को क्षीर पिलाने के लिए नियुक्त किया । नवजात कुमार को क्षीर पिलाने वाली कृत्तिकाओं ने पुत्रवत् पालना आरम्भ किया ।

देवताओं ने कृत्तिकाओं से कहा : "यह त्रैलोक्य-विख्यात तुम लोगों का पुत्र कार्त्तिकेय संज्ञा प्राप्त करेगा ।"

गर्भ-परिश्रम-स्कन्द द्वारा वह कुमार उत्पन्न हुआ था । गंगा द्वारा गर्भस्राव द्वारा प्रकट अग्नितुल्य शिशु को कृत्तिकाओं ने स्नान कराया ।

अग्नि-समान तेजस्वी महावाहु कार्त्तिकेय गर्भस्राव काल मे स्कन्दित हुए थे, अतएव देवताओ ने उन्हे स्कन्द कहा। कृत्तिकाओ के छह स्तनो से छह मुखो द्वारा दूध पीने लगे अतएव नाम षडानन हुआ। षडानन ने कृत्तिकाओं का दूध पान कर अतुल पराक्रम द्वारा दैत्य-सेना को जीत लिया। अनन्तर देवताओं ने एकत्र होकर उस महान् तेजस्वी वालक को सुर-सेनापति बनाया।

---
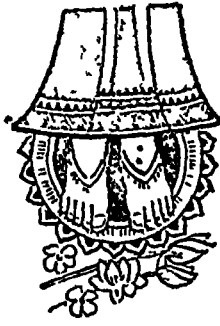
वनपर्व . २२५ – १६ – १८, ३३, २२६ : २४ । २२७ ' १६, १७, १८ । २२८ ।-२२९ । २३० । २३१ , ५, ६, पृष्ठ ५६, ६६ । २३२ . ३-९ ।
शल्यपर्व ' ४५ । ४६ ७३-७५, ७३-८४, ९०-९१ ।
शान्तिपर्व १२२ ३२ । ३२७ : ९, ११ ।
अनुशासन पर्व ८१, ८२ । ८५, ६८-८२, १६४ । ८६ : ५-१४, २८, २९ : १३४ : १-७ ।
पद्म ऋषि वन ४४ ।
पद्म स्वर्ग वन २७ ।
स्कन्द १, १, २७ ।
पुराण ब्रह्माण्ड ३ १० ४५-४८ । ३ ११ ' २२-६० ।
वायु २ ११ २०-४९ ।
मत्स्य १५८ २७-४८ । १५९ ८ । १६०
ब्रह्म पुराण ८१ । ८२ ।
हरिवंश पुराण १ ३ ।

# सगर

सगर अयोध्यापति थे। वीर थे। धर्मात्मा थे। किन्तु इक्ष्वाकुकुलावतंस सगर पुत्रहीन थे।

केवल कामना से कार्य सफल नही होता। केवल विचार कार्य-सपादन नही करता। सगर ने तपस्या का विचार किया।

राजा की दो पत्नियाँ थी। ज्येष्ठा पत्नी का नाम केशिनी था। वह विदर्भराज की कन्या थी। धर्मिष्ठा तथा सत्यवादिनी थी। द्वितीय पत्नी का नाम सुमित्रा था। वह अरिष्टनेमि की कन्या और सुपर्ण की भगिनी थी।

दोनों पत्नियों सहित राजा सगर ने तपस्या-निमित्त प्रस्थान किया। वे हिमवान् पर्वत पर पहुँचे। भृगु प्रस्रवण-शिखर पर तपस्या करने लगे। एक सौ वर्ष राजा ने तपस्या की। राजा सगर की तपस्या कठोर थी। उनकी आराधना से महात्मा भृगु प्रसन्न हुए। उन्होंने वांछित वर माँगने के लिए कहा।

"महात्मन्!" सगर ने दीन वचनों से कहा—"पुत्र की याचना करता हूँ।"

"अनघ!" भृगु बोले : "तुम्हें पुत्र होगा।'

सगर ने मुनि के चरणों का स्पर्श किया।

"पुरुषर्षभ!" लोक में तुम्हें कीर्ति प्राप्त होगी।

सगर ने अपनी पत्नियों के साथ नमन किया।

"राजन्!" भृगु ने रानियों की ओर देखते हुए कहा : "आपकी एक पत्नी से वंश वृद्धि करनेवाला एक पुत्र होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्र होंगे।"

पत्नियाँ भृगु की स्तुति करने लगीं। कृतांजलिपूर्वक बोलीं—

"ब्राह्मण! एक पुत्र किसके और साठ हजार पुत्र किसके द्वारा होंगे।"

"शोभने !"—परम धार्मिक भृगु ने कहा "जो एक पुत्र उत्पन्न करना चाहे वह एक और जो वहुत पुत्र उत्पन्न करना चाहे वह वहुत उत्पन्न कर सकती है।"

भृगु ने स्थिर होकर पुन. कहा "एक पुत्र वृद्धि करनेवाला होगा और साठ हजार पुत्र महावली होगे। कीर्तिमान् होगे। तुम लोग इच्छानुसार निश्चय कर लो।"

"मुनिवर !" केशिनी पति के साथ करवद्ध बोली—"मुझे वश-वृद्धि को एक पुत्र दीजिए।"

"तथास्तु।"

"मुनिपुगव !" सुमति ने कहा—"मुझे साठ हजार महा उत्साही, महा कीर्तिमान् पुत्र दीजिए।

"तथास्तु !" ऋषि ने स्नेह से कहा।

राजा ने पत्नियों सहित मुनि की प्रदक्षिणा की, पूजन किया और शिरसा-नमन कर उनसे विदा ली। राजा पत्नियो सहित राजधानी लौट चले।

:o: :o: :o:

ज्येष्ठा पत्नी केशिनी के गर्भ से असमज नामक पुत्र का जन्म हुआ।

सुमति ने गर्भ से गर्भ तुम्व प्रसव किया। उस तुम्व द्वारा साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। घृतपूर्ण कुम्भ मे रखकर धाइयो ने पुत्रो का वर्धन किया। वे रूप-यौवनशाली हुए।

सगर का ज्येष्ठ पुत्र असमज विचित्र परिहास करता था। सरयू मे उस नगर के वालको को डाल देता था। वे जल मे डूवने लगते। वह प्रसन्न होकर हँसता। वह क्रूर और पापी हुआ। वह सज्जनों के मार्ग का विघ्न था। वह पौरजनों को सर्वदा अपने आचरण से दु:ख दिया करता था। पुत्र के चरित्र से सगर असतुष्ट हुए। सगर ने उसको नगर से निर्वासित कर दिया। असमज के एक पुत्र था। उसका नाम था अंशुमान्। वह वीर्यवान्, प्रियभाषी और लोकप्रिय था।

:o: :o: :o:

"अंशुमान !" सभास्थित राजा सगर ने कहा—"मैंने अश्वमेध यज्ञ का निश्चय किया है। उपाध्यायों की राय ले ली है।"

"भगवन् ! जैसी इच्छा।" अंशुमान ने साभिवादन कहा।

"पुत्र ! तुम महारथी हो। तुमको यज्ञिय अश्व की रक्षा का भार उठाना चाहिए।"

"पितः ! मेरा सौभाग्य है।" अंशुमान ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

"मै यज्ञ की दीक्षा लेता हूँ। यह यज्ञ उस भूखण्ड के मध्य स्थान में होगा जहाँ शंकर-स्वशुर, विश्रुत हिमवान् तथा विन्ध्य पर्वत एक-दूसरे को देखते रहते है।"

:o: :o: :o:

"महाराज ! यज्ञिय अश्व किसी ने चुरा लिया तो ?" लज्जित अंशुमान ने नतमस्तक निवेदन किया।

राजा चकित हो गया। उठकर खड़ा हो गया। उन्होंने अंशुमान की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

:o: :o: :o:

"यजमान !" उपाध्याय ने राजा सगर से कहा—"यज्ञिय अश्व शीघ्रतापूर्वक कोई चुराकर भागा जा रहा है।"

"ओह !" सगर व्याकुल हो उठे।

"काकुत्स्थ ! अश्वहर्त्ता को दण्ड दीजिए। अश्व लाइए। अन्यथा अकल्याण होगा।" उपाध्यायों ने निवेदन किया।

राजा का मुँह लटक गया।

"राजन् !" चिन्ताकुल उपाध्यायों ने कहा—"यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होने में ही कल्याण है।"

सभा में बैठे साठ हजार पुत्रों की ओर देखकर राजा ने कहा—

"पुरुषर्षभ ! राक्षसों ने दस्यु-कर्म किया है, मुझे ऐसा नहीं लगता।"

सगर-पुत्रों की प्रश्नपूर्ण दृष्टि परस्पर मिलने लगी।

"प्रियवर ! वैदिक मन्त्रों द्वारा पवित्र यज्ञ की दीक्षा मैंने ली है। तुम लोग जाओ। यज्ञिय पशु का अन्वेषण करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। मैंने यज्ञ की दीक्षा ली है। स्वयं जाना कठिन है।"

सभास्थित लोगो की दृष्टि सगर-पुत्रो पर स्थिर हो गई । सगर-पुत्रो के मुख-मण्डल शनै -शनै उत्साहपूर्ण होने लगे । वे गम्भीर हो गए ।

सगर ने कहा—"पुत्रो ! समुद्र द्वारा परिवेष्ठित पृथ्वी पर अश्व खोजो । सब स्थानो का अन्वेषण करो । एक-एक योजन भूमि अन्वेषण के लिए परस्पर बाँट लो । उसमे यज्ञिय पशु का अन्वेषण करो ।

सगर-पुत्रो ने पिता की योजना ध्यानपूर्वक सुनी । उनकी दृष्टि पिता के चरणो मे स्थिर होने लगी । सगर पुन बोले—"यदि यज्ञिय पशु पृथ्वी के ऊपर न दिखाई दे तो पृथ्वी को खोदो । पाताल मे पहुँचो । पता लगाओ कि यज्ञिय पशु कहाँ है !"

सगर-पुत्र गम्भीर हो गए ।

"पुत्रो ! मैने यज्ञ की दीक्षा ली है । यज्ञिय अश्व न आने तक अपने पौत्र अशुमान तथा उपाध्यायो के साथ मै यही रहूँगा ।"

सगर के साठ हजार महाबली पुत्रो ने पिता की आज्ञा तथा अनुशासन प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया ।

:o: :o: :o:

पुरुष-व्याघ्र सगर के प्रत्येक पुत्र ने विशाल भुजाओ द्वारा एक-एक योजन विस्तृत धरणी-तल खोदा ।

वज्र-तुल्य शूल एवं दारुण यंत्रो द्वारा वसुमती खोदी जाने लगी । इससे वह चिल्लाने लगी । नाग, असुर, राक्षस आदि को महीतल खोदने के कारण अत्यन्त कष्ट होने लगा । वे करुण स्वर से चिल्लाने लगे । किन्तु रसातल तक पहुँचने का सगर-पुत्रों का संकल्प था । सगर-पुत्रो ने किसी की परवाह नही की । साठ हजार योजन पृथ्वी खोद डाली गई । राजपुत्रो ने पर्वताकीर्ण जम्बू द्वीप को खोदकर उसकी परिक्रमा की ।

देवता, गन्धर्व, पन्नग सम्भ्रान्त भय से पितामह ब्रह्मा के पास पहुँचे । वे विषण्ण-वदन थे, त्रस्त थे । तैतीसो देवताओं ने ब्रह्मा जी से कहा—

"भगवन् ! सगर-पुत्र पृथ्वी खोद रहे है । अनेक महात्माओ का वध हो रहा है ।"

"वध !"—ब्रह्मा ने साश्चर्य पूछा ।

"पितामह ! वे कह उठते है; तुम यज्ञ के घातक हो। तुमने अश्व चुराया है। यह शंका उनके मन में घर कर गई है। वे हत्या करने पर तुल गए है।"

"सुनिए!"—पितामह बोले—"वसुधा वासुदेव की है। वासुदेव की पत्नी है। वसुधा उनकी महिषी है। वह पृथ्वी के स्वामी है। वही भगवान् कपिल-स्वरूप स्थित है। धरा को धारण किए हुए है। कपिल की कोपाग्नि में सगर-पुत्र दग्ध होंगे।"

"पृथ्वी को वे क्यो खोद रहे है, भगवन् ?"

"पृथ्वी का खोदा जाना सनातन कार्य है। पृथ्वी रत्नगर्भा है। सगर-पुत्रों का नाश उनकी अदूरदर्शिता के कारण होगा।"

:o: :o: :o:

सगर-पुत्र पृथ्वी भेदन कर रहे थे। वज्रपात-तुल्य गर्जन हुआ, वे भयभीत नहीं हुए। पृथ्वी खोदते रहे। पृथ्वी खोदना समाप्त हुआ। उन्होंने वहाँ की परिक्रमा की। पिता के पास लौट आए। बली पुत्रों को आते सगर ने देखा। प्रसन्न हो गए। राजा बोले—"पुत्रो ! अश्व !!"

"पितः!"—उन्होंने उदासीन स्वर में उत्तर दिया—"समस्त मही को परिक्रान्त कर चुके। देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पन्नग आदि बलवानों को मार डाला। खेद है, हम लोगो ने अश्व तथा अश्वहर्त्ता को कही नही देखा। अब क्या करे ? कृपाकर निश्चय कीजिए।"

"पुत्रो!"—सगर सक्रोध बोल उठे—"भूमि खोदो। वसुधा-तल का भेद कर डालो। अश्वहर्त्ता को पकड़ो। कृतार्थ होकर आना।

पिता सगर के तेजस्वी आदेश को उन्होंने सुना। वे रसातल की ओर दौड़ पड़े।

:o: :o: :o:

सगर-पुत्र पूर्व दिशा खोदने लगे। पर्वत-तुल्य विशाल विरूपाक्ष गज देखा। गज ने महीतल धारण किया था। विरूपाक्ष ने मस्तक पर पर्वत, वन आदि सहित पृथ्वी को धारण किया था। वह विरूपाक्ष विश्राम निमित्त जब मस्तक को हिलाता, उस समय भूकम्प होता। सगर-पुत्रों ने उस महागज की प्रदक्षिणा की। वे रसातल पहुँचे।

सगर-पुत्र दक्षिण दिशा खोदने लगे। दक्षिण दिशा में महागज देखा। उस महागज का नाम महामदम था। वह पर्वत के समान ऊँचा था। राजपुत्रो ने विस्मयपूर्वक देखा। वह महागज पृथ्वी को सिर पर धारण किए हुए था। सगर महात्मा के उन पुत्रो ने महागज की प्रदक्षिणा की और पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर हुए।

वे पश्चिम दिशा का भेद करने लगे। महान् पर्वताकार दिग्गज देखा। उस गज का नाम सौमनस था। महावली पुत्रों ने गज की प्रदक्षिणा की और उत्तर दिशा की ओर वेग से चले।

उत्तर दिशा भेदते हुए हिमतुल्य श्वेत गज देखा। उसका नाम भद्र था। वह सुन्दर था और मही को धारण किए हुए था। साठ हजार सगर-पुत्रों ने गज की परिक्रमा कर पृथ्वी खोदना आरम्भ किया।

सगर-पुत्र उत्तर दिशा अत्यन्त रोष से खोदने लगे। भीमवेगी और महाबलवान् राजपुत्रो ने उत्तर दिशा खोदते हुए सनातन वासुदेव-रूप कपिल भगवान् को देखा। समीपस्थ चरते हुए यज्ञिय पशु पर उनकी दृष्टि पड़ी। सफलता समीप थी। उनका मन प्रफुल्लित हो उठा।

सनातन वासुदेव-स्वरूप, भगवान् कपिल को उन्हो ने यज्ञ का विघ्नकर्त्ता समझा। उनके हाथो में खनिज, हल, नाना प्रकार के वृक्ष, शिला-दल आदि थे। वे क्रोध-संतप्त थे। वे चिल्लाने लगे—"मुनि दस्यु है। इसने यज्ञिय अश्व चुराया है। मूर्ख है। हम लोग सगर के पुत्र हैं। आ गए हैं। अश्व लेकर जाएँगे।"

सगर-पुत्रों की बातें मुनि ने शान्तिपूर्वक सुनी। सगर-पुत्रो का उत्पात बढता गया। मुनि ने रोषपूर्वक हुकार किया। महात्मा कपिल की उस भयकर हुकार मे सगर-पुत्र राख की ढेर हो गए।

:o: :o: :o:

'अंशुमान्!'—राजा सगर प्रिय पौत्र से बोले—"तुम शूर हो। विद्वान् हो। पूर्वजो के तुल्य तेजस्वी हो। तुम अश्व-प्राप्ति का दायित्व लो। अश्वहर्त्ता को ढूँढो।"

अंशुमान ने पितामह की आज्ञा शिरोधार्य की।

"पौत्र !" राजा ने कहा—"भूमि के अन्दर के लोग वीर्यवान् होते हैं। महान् होते हैं। प्रतिघातार्थ तुम कृपाण तथा धनुष-बाण ग्रहण करो। शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान करो। अश्व प्राप्त कर देव-यज्ञ का कार्य पूर्ण करो।"

"भगवन् !"—पौत्र ने करबद्ध मस्तक झुका दिया।

:o: :o: :o:

अंशुमान् खुदी हुई पृथ्वी का अतिक्रमण करने लगे। सब दिशाओं के दिग्गजों के समीप पहुँचे। उनकी प्रदक्षिणा की, पूजन किया। सबने उत्तर दिया—"तुम कृतार्थ होगे। तुम शीघ्र यज्ञिय पशु प्राप्त करोगे।"

अंशुमान् ने देखी भस्म की ढेरी। उनकी आँखें भर आईं। परमार्त्त होकर वे शोक से गिर पड़े। लोटकर रोने लगे। अपने पिताओं की दयनीय अवस्था देखी। उनकी भस्म-राशि देख उनके दुःख की सीमा न रही। उस भस्म-राशि के समीप देखा चरता हुआ यज्ञिय पशु। यज्ञिय पशु देखकर शोक-काल में भी प्रसन्नता हुई। पितामह की इच्छा-पूर्ति होगी। किंचित् संतोष हुआ। प्रस्थान पूर्व पित्रों की जलक्रिया करना चाहते थे। चारों ओर ढूँढ़ा। जल प्राप्त न हो सका। यज्ञिय पशु के साथ चल पड़े।

पितृमातुल वेगशाली खगपति आते दिखाई पड़े। अंशुमान् की आँखें दुःख से भर आईं।

खगपति ने कहा—"पुरुष-व्याघ्र ! शोक मत करो। तुम्हारे पिताओं का वध लोक-कल्याण निमित्त हुआ है।"

"किस प्रकार ?"—अंशुमान् ने आँसू पोंछते हुए कहा।

"कपिल ने उनको दग्ध किया है। उन पूर्वजों को तुम लौकिक सलिल नहीं दे सकते।"

"अलौकिक जल मैं कहाँ पाऊँगा ?"—विस्मय से अंशुमान् ने कहा।

"पुरुषर्षभ !—हिमवान् की ज्येष्ठा कन्या गंगा है। उन्हीं के पवित्र जल से इनकी सलिल-क्रिया होगी।"

खगपति ने पुनः स्थिर स्वर से कहा—"जब इन भस्म-राशियों को लोकप्रिय लोकपावनी गंगा की पवित्र जलधारा तरल करेगी उस समय सगर-पुत्र स्वर्गलोक जाएँगे।"

अंशुमान् गम्भीर हो गए।

"पुरुषर्षभ ! —यज्ञिय पशु के साथ तुम लौट जाओ ।"

०. :० :०:

"पित ! अश्व ।"

सगर प्रसन्न हो गए । नगर प्रसन्न हो गया । उपाध्याय यज्ञ-आयोजन मे लग गए । लोगो मे उत्साह छा गया । अपने साठ हजार पुत्रो को न देखकर सगर ने पूछा—

"अंशुमान् ! तुम्हारे पितागण !"

अशुमान् ने भरी आँखों से कथा सुनाई । खगेश की वात सुनाई । सगर गम्भीर हो गए ।

राजा ने यज्ञ समाप्त किया । गगावतरण के विषय मे कुछ निश्चय नही कर सके ।

कालान्तर मे राजा सगर की मृत्यु हुई और प्रजा ने अशुमान् को अपना राजा वनाया ।

—⊛—

---

वालकाण्ड · सर्ग ३८, ३९, ४० ।

महाभारत वनपर्व ४७, १९ । १०६ ७-१६ । १०६ १८ से अध्याय १०७ ४ तक । १०७ ३३ । १०७ ३९-४३ ।

रात्रिपर्व ३७, १३०-१३६ । २८८ . ३ ।

अनुशासन पर्व ११५ ६६ । १६५ ४९ ।

विष्णुपुराण ४ . ४ ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण . १ ७

नारदपुराण १ ८-९, १० ।

भागवतपुराण ९ ८ . ९ ।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड २० ३८ ।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड २० ३८ । २१ ।

# असमंजस

"राष्ट्रवर्धन !" राजा सगर राज-सभा मध्य सिंहासनस्थ थे। उनके सम्मुख अयोध्या की प्रजा थी। प्रजा नम्र निवेदन कर रही थी। प्रकृति-जन विनम्र थे, उदास थे, विनयी थे।

"प्रजागण ! आप लोगों की किस मनोकामना की पूर्ति मै कर सकता हूँ।"

"राजन् ! अपराध क्षमा हो।"

"नि:संकोच कहो। इक्ष्वाकु कुल की रीति में नही भूला हूँ। अपने कर्त्तव्य का मुझे ज्ञान है।"

"तेजस्विन् ! आपको दो मे एक चुनना है। क्या महाराज को राजधर्म का स्मरण है ?'

"अवश्य।"

"साधु—राजन्! ! राजपुत्र असमंजस तथा प्रजा में से एक को आपको चुनना है।"

सभा नीरव हो गई। लोक विस्मित हो गए। राजा स्तम्भित थे। सामन्त तथा मन्त्रिगण कभी प्रजा और कभी राजा की ओर देखने लगे। प्रजागण नतमस्तक थे। गम्भीर थे। उनके मुख पर दृढ़ता थी। दृढ़ता में छिपा था क्रोध।

"प्रजागण!" राजा सगर ने मुस्कराकर कुछ झुकते हुए कहा—"कार्य के पूर्व कुछ कारण भी हुआ करता है।"

"राजन्! अकारण सभा को, राजा को कष्ट देना, किसी पर मिथ्या आरोप लगाना अपराध है। इसे हम जानते है।"

"कहिए।"

"राजन् ! राजपुत्र असमंजस से प्रजा भयभीत है।"

"भय !"

"असमंजस अबोध वालको तथा बालिकाओं को पकड़ लेता है। क्रूर वृत्ति का आश्रय लेकर उन्हें सरयू मे फेंक देता है।"

राजा का मुख लाल हो गया।

"इस क्रीड़ा मे उसे असीम आनन्द का अनुभव होता है। राजन्! हमारा कष्ट क्या आपका कष्ट नही है?"

"अवश्य है!"—राजा ने आवेश में सिंहासन त्याग दिया।

:o: :o: :o:

"असमजस!"

"पित! आज्ञा?"

"तुम अपराधी हो।"

"मैं?"

"हाँ"

"कैसे?"

"सरयू मे निर्दोष बालको को तुम क्यो फेकते हो?"

असमजस नीरव हो गया।

"बोलो! क्या यह सत्य है?"

असमंजस की दृष्टि नत थी।

"मुझे राजधर्म का पालन करना होगा।"

असमजस की आँखें भर आईं।

"राजपुत्र! युवराज होकर तुम्हें सहृदयता का परिचय देना चाहिए था। तुमने क्रूरता और मूर्खता का परिचय दिया है। तुम राजपुत्र अंशुमान् के पिता हो। बालको की हत्या करने मे तुम्हारा पितृ-हृदय वात्सल्य-भाव से प्रभावित नहीं हुआ? आश्चर्य है! धिक्कार है!"

"क्षमा कीजिए।"

"नही! असमंजस!! अपराध का दण्ड निश्चय भोगना होगा। यह राज्य है। राज्य के भविष्य का प्रश्न है। राज्य का सूत्र तुम्हारे हाथों में देना उचित होगा या नही, यही प्रश्न है।"

"पित.!" असमंजस कुछ कहना चाहता था। सगर बोले—

"असमंजस! तुम इस राज्य के अधिकारी नही हो सकते।"

असमंजस का सिर घूमने लगा।

"और पुत्र! मैं तुम्हारा देश-निर्वासन देता हूँ। बाहर रथ खड़ा है। अपनी भार्या और पार्षदों के साथ अविलम्ब देश-त्याग करो।"

:o: :o: :o:

पर्वतीय प्रान्त था। एक श्रमजीवी व्यक्ति मलिन वस्त्रों में बैठा था। उसके पास रखी थी कुदाल। उसके हाथों में घट्ठे पड़े थे। उसका शरीर झुलसा था। टोकरी-कुदाल उठाते हुए वह बोला——चलो मन! बहुत ठोकर खा चुके।

हतोत्साह व्यक्ति उठा। चला अपने शरीर की भारी गठरी लिए दबा-सा। कुछ दूर चला। कृषक हाथ उठाकर बुलाने लगे——"असमंजस! आओ भाई?"

असमंजस ने उत्तर न दिया। वह चल पड़ा। पग उठते रहे जीवन-यात्रा के गिनते दिनों के साथ।

---

वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड सर्ग . ३८।

महाभारत : वनपर्व : १०७। ४३।

शान्ति पर्व : ५७। ७९

पुराण · भागवत : ९ : ७। १४-१९

हरिवंश · १ · १५

विष्णु पुराण : ४ : ४ : ३

ब्रह्म पुराण . ८ : ७३ . ७८ . ४०-४३

वायु पुराण . २ ; २। ६ . १५९

# भगीरथ

"राजन् ! वैराग्य !" अयोध्या राज्य के मन्त्रियो, अमात्यो, तथा नागरिको ने वन-यात्रा को उद्यत राजा भगीरथ से नम्रतापूर्वक जिज्ञासा की।

"मन्त्रिन् !"—भगीरथ ने उदासीन स्वर मे कहा—"जिस वंश के पित्रो का भस्म-प्रवाह नही हुआ हो, पितामह अशुमान् तथा पिता दिलीप ने जिस पवित्र उद्देश्य-पूर्ति-निमित्त जन्म विता दिए है, मै उसी वश का होकर बैठा कैसे रह सकता हूँ ?"

"राजर्षि ! कुल-परम्परा का पालन करना उत्तम है, किन्तु प्रजा ?" मंत्री ने गम्भीरतापूर्वक कहा—

"मन्त्रिगण !"—भगीरथ ने कहा—"राज्य प्रजा का है। आप अनुभवी है, चतुर है। प्रजा के इच्छानुसार शासन-सूत्र लेकर प्रजा-पालन कीजिए।"

"धर्मवान् ! राजा विना प्रजा का परिपालन !" पुरोहितो ने यज्ञोपवीत को उँगलियो से लम्बा करते हुए कहा।

"मान्यवर !"—भगीरथ न सस्नह कहा—"मै भाग नही रहा हूँ। एक शुभ उद्देश्य-पूर्ति-निमित्त जा रहा हूँ। प्रजा का कल्याण होगा। गगावतरण से सूखा प्रदेश हरित होगा। प्रजा प्रसन्न होगी। उजाड भूमि मे जनपदो का निर्माण होगा। मै सेवा-निमित्त प्रस्थान कर रहा हूँ। यहाँ अपने कर्त्तव्य का आप लोग पालन कीजिए। मेरे कोई पुत्र नही है। आप ही लोग मेरे सव कुछ है। आपके लिए मेरा जीवन है।"

गंगावतरण-निमित्त गोकर्ण तीर्थ मे भगीरथ तपस्या करने लगे। ऊर्ध्व-बाहु रहकर उन्होने तपस्या की, पचाग्नि सहित तपस्या की। मासाहार अर्थात् एक मास पश्चात् आहार ग्रहण कर तपस्या की। एक सहस्र वर्ष बीत गए। जितेन्द्रिय भगीरथ की तपस्या से प्रजापति ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न-हुए। पितामह का सुरगण सहित भगीरथ के समीप आगमन हुआ।

'भगीरथ ! प्रजाधिप !!" पितामह बोले—"तुम्हारी तपस्या अतुलनीय है। तुम्हारी तपस्या मुझे प्रिय है। सुव्रत ! वर माँगिए !"

'भगवन् !'—महा तेजस्वी महाबाहु भगीरथ ने करबद्ध सर्व-लोक-पितामह ब्रह्मा से निवेदन किया—"आपकी मुझ पर प्रीति है। आप तपस्या का फल देना चाहते हैं। मेरी एकान्त कामना है कि सगर के आत्मजों को मैं पवित्र सलिल दे सकूँ।"

ब्रह्मा के अधरों पर स्मित-रेखा खिंच उठी।

"देव !" नतमस्तक भगीरथ विनम्र भाव से बोले—"जिस समय गंगा की पवित्र सलिल-लहरियों द्वारा सगर-पुत्रो का भस्म महासागर की ओर प्रयाण करेगा, उस समय हमारा प्रयोजन सिद्ध होगा। पितृगण सुखपूर्वक स्वर्ग प्राप्त करेंगे।"

"और कुछ, भगीरथ !"

"भगवन् !"—भगीरथ किंचित् लज्जित होते हुए बोले—

"मैं पुत्रहीन हूँ। मेरे व्रत का नाश नहीं होना चाहिए। पुत्र की मनोकामना मेरा अन्तिम वर है।"

"महारथ भगीरथ !"—सर्वलोक पितामह की मधुर वाणी मुखरित हुई—"तुम्हारा मनोरथ महान् है। वह पूर्ण होगा। इक्ष्वाकु-कुलवर्धन !! तुम्हारा कल्याण हो।"

भगीरथ का मुख-मण्डल खिल गया।

"राजन् !"—ब्रह्मा ने गम्भीर होते हुए कहा—"गंगा हैमवती है। हिमवान् की ज्येष्ठा कन्या है। उसके प्रबल वेग को पृथ्वी नहीं सहन कर सकती। उसका वेग धारण करने की क्षमता केवल शिव जी में है।"

भगीरथ उदास हो गए। ब्रह्मा ने मरुद्गणो को आदेश दिया, भगीरथ का मनोरथ पूर्ण किया जाय।

:o: :o: :o:

अंगुष्ठाग्र पर भगीरथ खड़े थे। इसी अवस्था में एक वर्ष उपासना की। उपासना द्वारा भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। सर्वलोक-नमस्कृत उमापति पशुपति का आगमन हुआ।

"नरश्रेष्ठ !"—पशुपति ने वात्सल्य प्रदर्शित करते हुए सस्नेह कहा—

"तुम मुझे प्रिय हो। मैं तुम्हारा प्रिय प्रयोजन पूर्ण करना चाहता हूँ। शैलराज-सुता गंगा को मैं स्वयं धारण करूँगा।"

गद्‌गद् भगीरथ शिव के चरणो पर गिर पड़े ।

:o: :o: :o:

ज्येष्ठा हैमवती गगा ने महद् रूप धारण किया था। सर्व-लोक-नमस्कृता जाह्नवी आकाश-मार्ग द्वारा प्रवल वेग से चली । शिव ने गंगा का वेग अपने सिर पर रोकने का निश्चय किया ।

परम दुर्धर्षा गगा विचारशील हुईं । वे शिव को स्रोत-प्रवाह द्वारा पाताल मे ले चलने की योजना वनाने लगी ।

गंगा का यह अभिमान ? भगवान् हर क्रुद्ध हुए । मनोरथ तिरोहित करने का निश्चय किया ।

पुण्या गगा रुद्र के पवित्र सिर पर आईं । हिमवान्-समान जटा-गह्वर से निकलने का प्रयास किया । पृथ्वी पर पहुँचने का उद्योग करने लगी । प्रयास विफल हुआ । शकर की जटा से निकल न सकी ।

कितने ही वर्ष बीत गए । गगा शिव-जटा-मण्डल मे घूमती रही । विकल धारा जटापाश से निकल न सकी ।

:o: :o: :o:

गगा-अवतरण हुआ । किन्तु देवी शिव के वन्धन मे पड़ गईं । गगा-जल से विश्व वंचित रहा । जटा-गह्वर से मुक्ति नही मिल सकी ।

कार्य निष्फल होता भगीरथ ने देखा । वे पुनः तपस्या करने लगे । भगवान् शंकर भगीरथ की घोर तपस्या से प्रसन्न हुए । उन्होंने गंगा का बिन्दुसर मे विसर्जित किया । विसर्जित गंगा की सात धाराएँ बिन्दुसर से निकली ।

ह्लादिनी, पावनी और नलिनी, तीन मंगलप्रद धाराएँ प्राची दिशा की ओर पवित्रजल लेकर चली । सुचक्षु, सीता और सिन्धु, तीन धाराएँ प्रतीची दिशा की ओर प्रवाहित हुईं । सातवी अलौकिक धारा राजर्षि भगीरथ का रथानुकरण करती चल पड़ी ।

:o: :o: :o:

गगा की प्रबल वेगवती धारा ने महात्मा जह्नु के आश्रम में प्रवेश किया । आश्रम मे यज्ञ आयोजित था । अद्‌भुतकर्मि जह्नु ऋषि यजमान थे ।

यज्ञ का व्रत लिया था। गंगा की धारा में यज्ञ-पात्र प्रवाहित हो गए। जह्नु हो गए अत्यन्त क्रोधित। उन्होंने गंगा को पी लिया। ऋषि के अद्भुत कार्य को लोगों ने देखा और चकित हो गए।

देवता, गन्धर्व तथा ऋषियों ने गंगा प्रवाह रुकता देखा। उन्होने पुरुषोत्तम जह्नु की पूजा की, प्रार्थना की—"महात्मन्! गंगा आपकी कन्या-स्वरूप होंगी। उनका नाम जह्नु-सुता होगा। वह जाह्नवी नाम से प्रसिद्ध होंगी।"

देवताओं का निवेदन ऋषि ने सुना। वे प्रसन्न हुए। उन्होने कान से गंगा की जलधारा निकाल दी। गंगा भगीरथ के दिव्य रथ के पीछे-पीछे पुनः चल पड़ीं।

:o: :o: :o:

राजा भगीरथ के साथ गंगा जी समुद्र-तट पहुँचीं। वहाँ से भगीरथ सहित पाताल लोक में प्रवेश कर गईं।

भगीरथ ने अपने पूर्वज सगर-पुत्रों का अवशेष गंगा-जल द्वारा सिंचित किया। भगीरथ की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। उन्होंने गम्भीर विश्वास के साथ अपने पूर्व-पुरुषों का भस्म पवित्र धारा में प्रवाहित किया। भस्म प्रवाहित होकर लहरियों के साथ थिरकता चला। लोक-प्रभु पितामह ब्रह्मा भगीरथ की तपस्या पूर्ण देखकर वहाँ अवतीर्ण हुए।

"नरशार्दूल!"—लोक-प्रभु ब्रह्मा ने कहा। "राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों ने तुम्हारे प्रयास द्वारा सद्गति प्राप्त की है। देवता-तुल्य देव-लोक में उनका आगमन हुआ है।"

ब्रह्मा ने पुन. कहा—"पार्थिव! जब तक सागर में जल रहेगा, तब तक सगर-पुत्र देववत् दिविलोक में निवास करेंगे। तुम्हारे अथक परिश्रम द्वारा

भूलोक मे गगा आई है । वे तुम्हारी ज्येष्ठा कन्या के नाम से प्रख्यात होगी । भगीरथ की मुद्रा मुदित थी ।

पितामह ने सस्मित कहा—"तीन धाराओ मे वहने के कारण त्रिपथगा, गगा तथा भागीरथी इनके तीन नाम होगें । भगीरथ आह्लादित थे ।

"मनुजाधिप! "—ब्रह्मा ने पुन स्नेह से कहा—"आप जलाजलि देकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिए ।"

भगीरथ ने मस्तक झुका दिया ।

"राजन् ! "—देवाधिदेव ब्रह्मा ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—"यशस्वी, धार्मिक, श्रद्धास्पद तुम्हारे पूर्वज राजा सगर की यही इच्छा थी । किन्तु वे अपना मनोरथ पूरा न कर सके । अनन्तर सगर-पौत्र अप्रतिम तेजस्वी अशुमान ने गगा लाने का प्रयास किया । उनकी प्रतिज्ञा पूरी नही हो सकी । राजर्षि-समान गुणी, महर्षियों-सदृश तेंजस्वी धर्म-स्थित तुम्हारे पूजनीय पिता दिलीप ने गगा लाने का प्रयत्न किया, किन्तु गगा नही आ सकी ।"

प्रशसनीय वचनो को सुनकर भगीरथ संकुचित हो गए । ब्रह्मा जी ने कहा—

"पुरुषर्षभ ! तुमने प्रतिज्ञा पूरी की है और लोक मे परम यश प्राप्त किया है ।"

भगीरथ ने अजलिवद्ध नमन किया ।

"शत्रुनाशन! " गंगावतरण द्वारा भूतल पर तुम महद् धर्म के भागी हुए हो । नरोत्तम ! गगा मे स्नान करना उत्तम है । पुरुषश्रेष्ठ ! आप पवित्र गगा-सलिल में स्नान कीजिए और पुण्य फल के भागी वनिए ।

नृप ! दिलीप की सलिल-क्रिया कीजिए। कल्याण हो। अब मैं अपने लोक निमित्त प्रस्थान करूँगा।"

भगीरथ ने पितामह के चरण-कमलों पर मस्तक रख दिया।

---
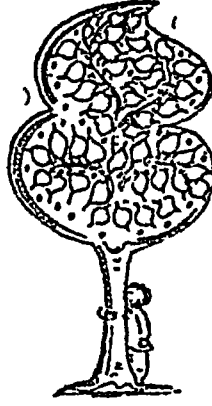
वाल्मीकीय रामायण : बालकाण्ड सर्ग : ४२-४४

महाभारत वनपर्व . २५ १२ । १०७ : ६६ । १०८ ।

सभापर्व : ८ १२

द्रोण पर्व : ६०

शान्ति पर्व : २८ । २६ ६७-७० ।

अनुशासन पर्व : १६० । ७६ . २५ । १०३ : ४२ । १३७ : २६, २७

पुराण : भागवत पुराण : ९ : ९ : १२ : ३

नारद पुराण : १ . ४७ । २ : २६, १६८

ब्रह्म पुराण : उत्तर खड : २१

विष्णु पुराण . ४ : ४

हरिवंश पुराण १-१५ ।

नारद पुराण १-१५

ब्रह्म वैवर्त पुराण . १ : १०

गंगा हिमालय से जल प्राप्ति निमित्त एक नहर के रूप में निकाली गई थी। यह कार्य केवल एक पीढ़ी में नहीं बल्कि दो-तीन पीढ़ियों के लम्बे काल में समाप्त हुआ है। आध्यात्मिक तथा धार्मिक वेश में गंगावतरण की मूल घटना को ढँक दिया गया है।

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग : ३५ ।

# क्षीर निधि-मन्थन

कृतयुग मे दिति के पुत्र महाबली दैत्य थे और अदिति के पुत्र वीर्यवान् और धार्मिक देवता थे। दैत्यो तथा देवताओ ने परामर्श किया कि हम अजर-अमर तथा निरामय अर्थात् नीरोग कैसे होगे। उन लोगो ने विचार किया कि यदि क्षीर-समुद्र का मन्थन किया जाय, तो वाछित अमृत प्राप्त होगा। दृढ निश्चय हुआ। वासुकी नाग को योक्ता अर्थात् मथने की रस्सी और मन्दराचल को मन्थान (मथनी) बनाकर क्षीर समुद्र का मन्थन आरम्भ किया।

अमित तेजस्वी दैत्यो तथा देवताओ ने सहस्र वर्ष मन्थन किया। योक्ता अर्थात् वासुकी नाग विष-वमन करने लगा। वासुकी मन्दराचल की शिला को डसने लगा। प्रलयाग्नि-तुल्य हलाहल महाविष आकाश की ओर उठता निकला। उस विष से देवता, असुर, मानव तथा सम्पूर्ण जगत् दग्ध होने लगे।

भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई। देवतागण शंकर की शरण मे गए। त्राहि! त्राहि! करते हुए पशुपति रुद्र की स्तुति करने लगे।

देवताओ की स्तुति द्वारा शंकर द्रवित हुए। देवेश्वर शंखचक्रधारी प्रभु हरि भी वहाँ प्रकट हुए।

सुरश्रेष्ठ हरि सस्मित शूलधर रुद्र से बोले—"आप सुरो में अग्र है। अतएव अग्रपूजा-स्वरूप मन्थन द्वारा प्राप्त फल आप ग्रहण कीजिए।"

सुरश्रेष्ठ हरि अन्तर्धान हो गए। देवताओं को रुद्र ने भयभीत देखा। हरि की वात सुनी। घोर हलाहल विष को उन्होंने अमृत-तुल्य पी लिया। देवता प्रसन्न हो गए।

:o: :o: :o:

देव एवं असुर मिलकर पुनः मन्थन करने लगे। मन्थन करते-करते पर्वतोत्तम मन्दराचल मन्थान अकस्मात् पाताल मे प्रवेश कर गया। मन्थन-

पाताल में चला गया। मन्थन-कार्य रुक गया। देवता, गन्धर्व, आदि मधु-सूदन की स्तुति करने लगे। 'भगवन्, आप सर्वभूतों की एक मात्र गति है। विशेषकर देवताओं के आप अवलम्बन है। महाबाहो, हम लोगों का पालन कीजिए। गिरि का आप उद्धार कीजिए।"

भगवान् हृषीकेश ने स्तुति सुनी। उन्होंने कमठ अर्थात् कछुए का रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर लिया। हरि उसी प्रकार समुद्र मे सो गए। पर्वताग्र पर लोकात्मा केशव ने अपना हाथ रखा।

देवताओं के मध्य स्थित होकर स्वयं मन्थन करने लगे। सहस्रवर्ष मन्थन हुआ। तत्पश्चात् आयुर्वेदमय पुरुष उत्पन्न हुआ। वह धर्मात्मा कमण्डलु एवं दण्ड धारण किए हुए थे। उनका नाम धन्वन्तरि था।

धन्वन्तरि के पश्चात् मन्थन द्वारा सागर से सुन्दर अप्सराएँ निकलीं, अर्थात् जल के मन्थन द्वारा रस से अप्सराएँ हुई थीं, अतएव उनकी संज्ञा अप्सरा हुई। उन अप्सराओं की संख्या साठ कोटि थी। उनकी असंख्य परिचारिकाओं की गणना नही की जा सकती। देव, दानव किसी ने उनका प्रतिग्रहण नही किया। अप्रतिग्रहण होने के कारण वे सर्वसाधारण कहलाईं।

अनन्तर वरुण की कन्या वारुणी उत्पन्न हुई। उत्पत्ति के पश्चात् उस महाभागा को पति की इच्छा हुई। वरुण की पुत्री वारुणी को दिति के पुत्र दैत्यों ने ग्रहण नहीं किया। अदिति के पुत्रों ने सहर्ष अनिन्द्य सुन्दरी वारुणी को ग्रहण किया।

वारुणी अर्थात् सुरा के ग्रहण करने के कारण अदिति के पुत्र सुर और दिति के पुत्र न ग्रहण करने के कारण असुर नाम से विख्यात हुए। वारुणी को प्राप्त कर सुर प्रमुदित हो गए।

वारुणी के पश्चात् हयश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ, तदनन्तर उत्तम अमृत प्रकट हुआ।

अमृत रस-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा के कारण कुलक्षय-स्वरूप देवासुर संग्राम आरम्भ हुआ। अदिति के पुत्र सुरों ने अपने भाइयों असुर के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। समस्त असुर राक्षसो से मिल गये और भयंकर युद्ध मे प्रवृत्त हुए। त्रैलोक्य-मोहक महाघोर युद्ध चरम सीमा तक पहुँचने लगा। सुर तथा असुरों का प्रायः क्षय हो गया।

महाबली विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर समस्त अमृत ले लिया। अविनाशी विष्णु के सम्मुख अमृत-हरण चेष्टारत जो भी दैत्य गए, उन्हें विष्णु ने युद्ध में आहत किया। अदिति एवं दिति के पुत्रो अर्थात् सुरो एव असुरो के महायुद्ध मे अदिति के पुत्र सुरों ने असुरो को पराजित किया। दैत्यो के संहार के पश्चात् पुरन्दर ने राज्य प्राप्त किया। इन्द्र प्रसन्न हुए। वे देव, कवि तथा चारणो सहित शासन करने लगे।

---

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड सर्ग ३५

# दिति और इन्द्र

अमृत के प्रश्न पर असुरों का भयंकर नाश हुआ था। पुत्रो के संहार के कारण दैत्यमाता दिति अत्यन्त दुखी हुई। वह अपने पति मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप के पास आई।

"भगवन्!" दिति ने शोक-स्वर मे कहा—"आपके महाबली देव-पुत्रों ने मेरे पुत्रों की हत्या कर डाली है।"

कश्यप गम्भीर हो गए।

"मैं चाहती हूँ एक पुत्र।" दिति ने स्त्री-जन्य किंचित् लज्जा के साथ कहा।

"किसलिए?"

"शक्र की हत्या निमित्त मै पुत्र-हेतु दीर्घ तपस्या करूँगी।"

दिति की मुख-मुद्रा कठोर थी। कश्यप विचारशील हो गए।

"भगवन्! मै तपस्या करूँगी। मेरे गर्भ से आप द्वारा शक्र-हन्ता पुत्र उत्पन्न हो। मुझे एतदर्थ तपस्या की आज्ञा दीजिए।"

परमदु:खिता दिति की अवस्था पर दया कर कश्यप ने उत्तर दिया : 'कल्याणी! इच्छा पूर्ण हो। शक्र की हत्या करने वाले पुत्र की तुम माता होगी।"

दिति का मुख खिल गया।

"किन्तु" कश्यप ने विचारपूर्वक कहा : "पूर्ण सहस्र वर्ष यदि तुम शुचिता से रह सकोगी तो अवश्य तुमको इन्द्र का हत्यारा पुत्र प्राप्त होगा।"

कश्यप ने दिति का स्पर्श किया। 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद दिया और तपस्या निमित्त प्रस्थान किया। दिति परम हर्षित हुई।

:o: :o: :o:

विशाला के समीप कुशलव वन था। दिति वही आई और उत्साह-पूर्वक दारुण तपस्या करने लगी। सहस्राक्ष इन्द्र विनय तथा उत्तम गुण-

सम्पत्ति से युक्त दिति की परिचर्या करने लगे। अग्नि, कुश, काष्ठ, फल, मूल अथवा दिति को जिस चीज की आकाक्षा होती थी, उसे इन्द्र एकत्र कर दिया करते थे। इन्द्र गात्र-सवाहन (पैर दबाना), श्रमापनयन आदि सेवा द्वारा दिति की परिचर्या सर्वदा किया करते थे।

सहस्र वर्ष-तपस्या के दस वर्ष शेष रह गये थे। परम प्रसन्न होकर दिति सहस्राक्ष से बोली

"वीर्यवान्! मेरी तपस्या के दस वर्ष और रह गये है। उसके पश्चात् तुम अपने भाई का दर्शन करोगे। तुम्हारे विनाश निमित्त मैने पुत्र की याचना की थी। तुम पर विजय निमित्त पुत्र उत्सुक होगा तो मै उसे शान्त कर दूँगी। इस प्रकार के पुत्र की याचना करने पर सहस्र वर्ष पश्चात् पुत्र होने का वर पति ने दिया था।"

इन्द्र गम्भीर हो गए। उनकी मुद्रा विचारशील हो गई।

मध्याह्न काल हो रहा था। निद्रा-वशीभूत देवी दिति के पद उनके शीर्ष से लग गये थे।

शक्र ने दिति को अशुद्धावस्था मे देखा। दिति के केश पैरो पर पडे थे, मूर्धा के स्थान पर पदो को देखकर इन्द्र मुदित हो गए।

इन्द्र माता दिति के शरीर-विवर में प्रवेश कर गये। पुरन्दर ने गर्भ का सात भागों मे विच्छेद कर दिया।

"वज्र द्वारा गर्भ का भेद जब शक्र करने लगे तो गर्भ रोने लगा। दिति की निद्रा भंग हो गई। दिति जाग्रत हो गई।

'मत रोओ, मत रोओ', इन्द्र ने गर्भ से कहा। गर्भ के रोदन का ध्यान न कर इन्द्र ने गर्भ का भेद कर डाला।

"मत मारो,—मत मारो"—दिति कहने लगी।

माता के वचन-गौरव का स्मरण कर गर्भ-भेदन त्याग शक्र बाहर निकल आए।

"देवि!" प्राजलियुक्त वज्रधारी शक्र ने कहा "अशुचि रूप आप मूध की ओर पद कर सो गई थी। अवसर पाकर मैने इन्द्र-हन्ता गर्भ का भेद किया है। माता क्षमा करो।"

गर्भ के सात भागों में हो जाने पर दिति परम दुखी हुई । दुर्द्धर्ष सहस्राक्ष से सानुनय बोली : "वलसूदन ! गर्भ के सात टुकड़े हो गए । अपराधिनी मैं हूँ । देवेश ! इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नही है ।"

इन्द्र मौन थे ।

"शक्र !"—दिति बोली : "मेरा गर्भ-विपर्यय कर तुमने मेरा प्रिय ही किया है । वे मेरे दिव्य सातों आत्मज मरुत् नाम से विख्यात होंगे । सातों मरुद्गणों के नाम आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह और परावह हुए । सातो सद्गुणों युक्त स्थान-पाल होंगे । सातगणों पर एक मरुत् है । इस प्रकार उनचास मरुत् होंगे ।"

"देवी की जैसी आज्ञा !"—नम्रतापूर्वक इन्द्र ने कहा ।

"प्रथम गण ब्रह्मलोक में, दूसरागण इन्द्रलोक में विचरण करेगा । तीसरा दिव्य वायु नाम से महावली विख्यात होगा । वह अन्तरिक्ष मे गति-शील होगा"—देवी दिति ने संयत वाणी मे कहा ।

"शेष चार ?"

देवी ने पुन: कहा—"सुरश्रेष्ठ ! शेष चार पुत्रों के गण चारो दिशाओं में तुम्हारे शासन मे रहेंगे । समयानुसार सम्पूर्ण दिशाओं में भ्रमण करेंगे । गर्भ में तुमने उनसे 'मरुद:' अर्थात् मत रो, कहा था, अतएव यही वाक्य 'मारुत' नाम से विश्रुत होंगे ।"

"देवी !" इन्द्र ने प्रांजलिभूत होकर कहा, "निस्सन्देह आपके कथना-नुसार सब कुछ होगा । देवरूपधारी होकर वे विचरण करेंगे ।"

माता दिति और पुत्र शक्र इस तपोवन मे कृतकृत्य होकर स्वर्ग चले गए ।

---

वाल्मीकीय रामायण, दालकाण्ड, सर्ग . ४६-४७

महाभारत, आदि पर्व : ६५ . १२ : १७

सभा पर्व ११ : ३८

ऋग्वेद ५ : ६२ . ८ : ४ . २ : ११ : ७ : १५ : १

अथर्ववेद १५ से १८ ४ . १६ . ६ : ७ :

वायवीय संहिता : १८ . १२

# अहिल्या

मिथिला का उपवन था। उसमे सुन्दर आश्रम था। वह देवाश्रम-तुल्य दिव्य था। देवताओ द्वारा पूजित था। वहाँ पवित्रता निवास करती थी। चुपके-चुपके एक व्यक्ति आया। ऋषि-स्वरूप था, साथ में लिए काम-तृष्णा।

आश्रम में थी अकेली तरुणी अहिल्या। वह थी गौतम की नारी। आगन्तुक ऋषि सुन्दर था। कान्तिमान् था। उसमे था काम का आकर्षण। काम-स्वरूप था वह। उसके अग-अंग से, रोम-रोम से काम उद्भूत हो रहा था। उसमे पुरुष शक्ति थी जो दुर्बल नारी को अनायास विचलित कर सकती थी।

आगन्तुक आया सुन्दरी अहिल्या के समीप। आँखो मे थी काम-याचना।

"सुन्दरी!"—वाणी मे अनुराग था, "ऋतुकाल की प्रतीक्षा कामार्त नही करता, देवि!!"

अहिल्या मे आ गई नारी-जन्य लज्जा।

"सुमध्यमे! रतिदान की याचना करता हूँ।"

एकान्त आश्रम था। कलरव शान्त था। लताएँ झुकी थी। पादप मूक थे। मरुत् निद्रित था। घनीभूत कृष्ण बादल मे नभ-ज्योति मलिन हो गई थी। काम की एकान्त प्रार्थना मे विचलित हो गई नारी। आँखों ने देखा पति-सा रूप। आत्मा ने कहा—तपस्वी गौतम नही है। छद्म-वेश है, पाप है, किन्तु मन गिरता गया काम के चरणो मे। वासना मुस्कराई।

आश्रम रहस्यमय हो उठा।

.o: .o: .o:

अहिल्या कृतार्थ थी। प्रसन्न थी। जीवन की एक घटना घट गई। रति-शिथिलता मे याद आया भविष्य। याद आया पति-आगमन-काल। याद आया मंगल पातिव्रत भग का भय।

"प्रभो ?"—अहिल्या बोली—"आपने मुझे कृतार्थ किया। आप शीघ्रतापूर्वक चले जाइए।"

"क्यों ?"

"पतिदेव"—अहिल्या उदास हो गई।

"और तुम्हारा"—

"देवराज !" अहिल्या कातरता से बोली—"अपनी और हमारी आप ही रक्षा कीजिएगा।

"सुश्रोणि !" इन्द्र ने स्नेह से हँसते हुए कहा : "तुमने मुझे परितुष्ट किया है। मैं जिस प्रकार आया हूँ उसी प्रकार जाता हूँ।"

इन्द्र शीघ्रतापूर्वक भागना चाहता था। उसने देखा, गौतम का आश्रम में प्रवेश। ऋषि तपोव्रत-समन्वित थे। जल द्वारा अभिषिक्त थे। अनिल-स्वरूप समिधा हाथों में थी। इन्द्र ने देखी तपोमूर्ति। उनका वदन विषण्ण हो गया।

मुनि वेषधारी दुर्वृत्त सहस्राक्ष इन्द्र को देखकर गौतम क्रोध से बोले—"दुर्मति ! मेरा रूप धारण कर पाप-प्रवृत्त हुआ है। अकर्त्तव्य कर्म तुमने किया है। तुम अब कोष-हीन होगे !"

मुनि के शाप के कारण इन्द्र के दोनो अण्डकोष पृथ्वी पर गिर पड़े। इन्द्र की कामवृत्ति नष्ट हो गई।

अहिल्या बेत-तुल्य काँप रही थी। गौतम ने उसके समीप जाकर कहा—"काममोहिता ! तुम्हारी तपस्या कामपिपासा को नहीं रोक सकी। संयम नहीं कर सकी। मानव-चरित्र के अनुकूल कर्म नहीं किया। दुर्बलता निवारणार्थ तपस्या करनी होगी। संयम करना होगा। वायु तुम्हारा आहार होगा। तुम अश्मशायिनी होगी। भूतों से दूर होगी। अदृश्य रहोगी। तपस्या द्वारा तुम्हे काम पर विजय प्राप्त करनी होगी। इस काया को पुनः पवित्र बनाना होगा।"

:o: :o: :o:

आश्रम पुरातन था। निर्जन था। उजड़ा था। राम ने विश्वामित्र से पूछा—"भगवन् ! क्या यह किसी का पूर्वाश्रम है ?"

"तेजस्विन् राम !" विश्वामित्र बोले—"पूर्वकाल में गौतम का आश्रम था। उनकी पत्नी तपस्विनी महाभागा देवरूपिणी अहिल्या यहाँ तपस्या कर रही है।"

"हम वहाँ क्यों न चलें ?"

"राघव ! चलो।"

विश्वामित्र के अनुगामी राम और लक्ष्मण ने आश्रम में प्रवेश किया।

महाभागा अहिल्या तपस्या-रत थी। तप की प्रभा से स्थान प्रभामय था। सुर, असुर, देवता, तपस्विनी की तरफ तेज के कारण नहीं देख सकते थे। मायामयी समान उसके रूप का ब्रह्मा ने कौशल से निर्माण किया था। वह अभ्र-मण्डल आवृत दीप-शिखा समान प्रतीत हो रही थी। वह तुषार शुद्ध मेघ द्वारा आच्छादित पूर्ण चन्द्र-प्रभा तुल्य प्रतीत हो रही थी और सरोवर में फैली सूर्य-प्रभा तुल्य लग रही थी।

राम और लक्ष्मण ने अहिल्या के पद का स्पर्श किया। अहिल्या ने देखा। कामदेव को भी मोहित करने वाले दो युवक। मन में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उसने उन्हें देखा, शुद्ध मानव रूप में। उसमें अस्थिरता नहीं आई। उसमें आसक्ति ने प्रवेश नहीं किया।

अहिल्या उठी, आश्रम-निवासिनी पवित्र तपस्विनी-तुल्य।

---

वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, अध्याय ४८–९, उत्तरकाण्ड अध्याय ३०,
महाभारत : आश्वमेधिक पर्व ५६ २७
शान्ति पर्व २४३ . २३
अनुशासन पर्व ४१, १५३,
वन पर्व ८४ [illegible]
पुराण भागवत ६,२१
हरिवंश १,३२
ब्रह्म ८७, १२२;
विष्णु ४,१६;
मत्स्य ५०.
स्कन्द १,२,५७.

पाद्य, अर्घ्य तथा आतिथ्य से देवता-स्वरूप अतिथियों का पूजन किया। स्वागत किया। उसकी शुद्ध मनोवृत्ति, उसके पवित्र आचरण को देखकर देवता 'साधु-साधु' कहने लगे।

अपनी स्त्री को विकार-रहित, शुद्ध तथा पवित्र देखकर गौतम प्रसन्न हो गए। उन्होंने राम की परम पूजा की।

---

| | | |
|---|---|---|
| पुराण | गणेश | १,३० : ३१. |
| | पद्म-सृष्टि खंड | ५०,५४ |
| | लिंग | १,२९ |
| आनन्दरामायण, | सार काण्ड | १,३ |
| योगवाशिष्ठ रामायण | | ३,८९ : ९१; |
| शतपथ ब्राह्मण | | ३, ३, ७, १८ |

# त्रिशंकु

"गुरुदेव !" इक्ष्वाकुकुल-वर्धन विख्यात महाराज त्रिशंकु ने गुरु वशिष्ठ को प्रणाम किया ।

"राजन् ! कुशल तो है ?" महात्मा वशिष्ठ ने सस्नेह पूछा ।

"भगवन् ! यज्ञ करने की इच्छा है ।"

"प्रयोजन ?"

"मैं सशरीर देवताओं के यहाँ, परम-गति-स्थान स्वर्ग जाना चाहता हूँ ।"

"राजन् !" विस्मयापन्न महात्मा वशिष्ठ ने कहा—"असमर्थ हूँ । इस यज्ञ का आयोजन नहीं करा सकता ।"

त्रिशंकु उदास हो गए ।

० ० ०

महातेजस्वी राजा त्रिशंकु ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया । गुरु वशिष्ठ के एक सौ पुत्र वहाँ तपस्या कर रहे थे ।

सत्कर्म-सिद्धार्थ राजा ने वशिष्ठ के पुत्रों को देखा । उनसे निवेदन करने का विचार किया । उनके समीप पहुँचकर बोले—

"मुनिवर ! यह अकिंचन आपकी शरण आया है, आप शरणागत की रक्षा करते हैं !"

"राजन् !" वशिष्ठपुत्र बोले—"आपका क्या उपकार कर सकते हैं ?"

"गुरु-पुत्र !" त्रिशंकु ने विनीत स्वर में कहा—

'महात्मा वशिष्ठ से प्रार्थना की थी, सदेह स्वर्ग-गमन निमित्त यज्ञ का आयोजन कीजिए । गुरु ने असमर्थता प्रकट की ।"

"अच्छा !" गुरु-पुत्र गम्भीर स्वर में बोले ।

'महात्मन् !" त्रिशंकु ने याचनापूर्वक कहा—"आप लोग कृपया इस महायज्ञ का आयोजन कीजिए ।"

"हम क्यों आयोजन करें, राजन् !"

"इक्ष्वाकुवंशियों के गुरु है वशिष्ठ जी। उनके पश्चात् आपका स्थान है।"

वशिष्ठ-पुत्र गम्भीर हो गए।

"मैं गुरुपुत्रों को नमस्कार करता हूँ। प्रसन्न करना चाहता हूँ। याचना करता हूँ। कामना-सिद्धि-निमित्त यज्ञ का आयोज़न कीजिए। मै सशरीर स्वर्ग जा सकूँ।"

गुरुपुत्र मौन थे।

त्रिशंकु ने नम्रतापूर्वक कहा—तपोधन! महात्मा वशिष्ठ के अस्वीकार करने के पश्चात् आप लोगों के अतिरिक्त और कौन सहायता करेगा।

वशिष्ठ के शत पुत्र क्रोधित हो उठे। उग्र स्वर मे बोले—

दुर्मेध! सत्यवादी गुरु ने अस्वीकार कर दिया। तुमने उनका तिरस्कार किया। अन्य स्थान क्यो आए?

"महात्मन्!" गुरु-पुत्रों का क्रोध देखकर त्रिशकु सहमकर बोले—'मेरे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं था।"

"इक्ष्वाकु-कुल के वशिष्ठ पुरोधा है। वही परम गति है। आपने उन सत्यवादी गुरु के वचनों का अतिक्रमण कर उचित कार्य नही किया है।"

"महात्मन्! भगवान् वशिष्ठ ने यज्ञ को अशक्य बताया है।"

"उस यज्ञ को कराने की क्षमता हममे फिर कैसे आ सकती है?"

"किन्तु"... त्रिशंकु ने वाक्य समाप्त नही किया था। गुरुपुत्र बोल उठे—

"राजन्! आप मूर्ख है। आप लौट जाइए। महात्मा वशिष्ठ त्रैलोक्य में यज्ञ कराने की शक्ति रखते है। आपको यज्ञ की दीक्षा देकर हम उनका अपमान नही करेगे।"

गुरुपुत्र क्रोधित हो गए। क्रोध में विवेक खो बैठे। मुख से अशुभ बाते निकलने लगी। वे पूर्वापर एवं मर्यादा भूल गए।

"तपोधन!" राजा ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "गुरु ने यज्ञ करना अस्वीकार किया। गुरु-पुत्र!! आप लोगो से निवेदन किया। आप लोगों ने भी अस्वीकार किया। आप का कल्याण हो। मै कही और जाऊँ।"

गुरुपुत्रों के मुख लाल हो गए। अभिप्राय-समन्वित राजा के वचनों को सुनकर वे बोल उठे—

"चाण्डाल हो जा!"

शाप देते हुए गुरुपुत्र आश्रम में चले गए ।

०. ०. :०.

"भागो ! भागो ! ! भागो ! ! !" नागरिक व्याकुल थे । भगदड़ थी । नागरिक भाग रहे थे । किसी ने एक भागते हुए से पूछा—

"क्या वात है ?"

"राजा चाण्डाल हो गया ।"

"लोग गृहस्थी लिए भाग रहे है ।"

"चाण्डाल-राज्य मे कौन रहेगा ?" रथो पर सामान लादे जाती हुई स्त्रियो ने चमक कर कहा ।"

"मत्री ने राजा का साथ त्याग दिया ।" अश्वारोही ने वढते हुए कहा ।

"सेना विघटित हो गई । अस्त्र-शस्त्र लिए गतिशील शस्त्रवारी ने कहा । नगर जनशून्य हो गया । पशु-पक्षी स्वामियो के साथ चले गए । पुर में रह गए केवल राजा त्रिशकु । शाप से राजा चाण्डाल हो गए । रात्रि व्यतीत हुई ।

राजा का वस्त्र नीला था । वर्ण नीला था । शरीर रुका था । केश छोटे हो गए थे । चिता की भस्म वन गई थी अगराग । श्मशान माला कंठ की अशुभ शोभा हो गई थी । आभूषण लौह हो गए थे ।

राजा जितेन्द्रिय था । अधीर न हुआ । सयम से काम लिया । परिस्थिति से विचलित न हुआ । विवेक ने साथ नहीं त्यागा । भविप्यत् चिन्ता उसे घेरने लगी ।

:०. ०: :०:

"राजन् !" विश्वामित्र की करुण वाणी मुखरित हुई—"अयोध्यापते ! तुम्हारा यह रूप ?"

राजा के नेत्रों मे करुण याचना थी । उनमें जल छल-छला आया । विफलीकृत राजा ने दु खान्त कहानी सुनाई ।

"राजेन्द्र!" विश्वामित्र की वाणी में करुणा थी ।

राजा के कपोल पर जल-रेखा खिच गई ।

"महावल !" विश्वामित्र के स्वर मे सान्त्वना थी । "क्या मनोरथ सिद्ध कर सकता हूँ ?"

"सौम्य !" त्रिशकु ने करुण वाणी द्वारा कहा—

"सशरीर स्वर्ग जाना चाहता हूँ । गुरु वशिष्ठ द्वारा ठुकरा दिया गया । गुरुपुत्रो ने ठुकरा दिया । गुरुपुत्रो के शाप द्वारा मेरी यह गति हुई है । स्वर्ग नही जा सका । चाण्डाल अवश्य वन गया ।"

विश्वामित्र की मुद्रा में परिवर्तन ने प्रवेश किया ।

"सौम्यदर्शन !" त्रिशकु ने पुनः कहा—"शत यज्ञ विधिपूर्वक किए । परिणाम कुछ नहीं निकला । जहाँ-का-तहाँ हूँ ।"

विश्वामित्र की मुद्रा मे गम्भीरता ने प्रवेश किया ।

"सौम्य !" त्रिशकु ने करुण वाणी मे कहा—"मै क्षात्रधर्म की शपथ लेकर कहता हूँ । मै असत्य नही बोलता । मिथ्या वचन से दूर रहना चाहता हूँ । मेने भयंकर कष्ट काल मे भी सत्य का साथ नही त्यागा है । अनेक यज्ञों का आयोजन कर चुका हूँ । धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया है ।"

विश्वामित्र की आँखों मे गम्भीरता छाने लगी ।

"मुनिपुगव !" त्रिशकु ने पुनः कहा—"गुरुओ का शीलवृत्ति से तोषण किया है । धर्म मे स्थित हो धर्मानुसार यज्ञ करना चाहता हूँ, तथापि मरे गुरु को, मेरे गुरुपुत्रों को परितोष नहीं है ।"

नत-दृष्टि त्रिशकु ने कोमल वाणी में आगे कहा—

"धारणा होने लगती है, भाग्य प्रधान है; पुरुषार्थ निरर्थक है ।"

"भाग्य !"—विश्वामित्र ने किंचित् आकाश की ओर देखते हुए कहा—

"देव ! भाग्य प्रधान है । भाग्य जीवन-संचालन करता है । मैंने क्या अपराध किया है, पुरुषार्थ का आश्रयाकांक्षी था । पुरुषार्थ द्वारा स्वर्ग जाना चाहता था । पुरुषार्थ मे लगा था । पुरुषार्थ निमित्त जो फल मिला, उसे आप स्वयं देख रहे है । मेरे भाग्य ने पुरुषार्थ को नष्ट कर दिया है ।"

विश्वामित्र विचारशील हो गए ।

"मुनिवर ! मै आर्त हूँ । आपके प्रसाद का आकाक्षी हूँ । क्या आप दैवोपहत इस अकिचन पर प्रसन्न होंगे ? मेरी और कही गति नही है । पुरुषार्थ से क्या भाग्य नहीं वदला जा सकता ?"

:o: :o: :o:

"ऐक्ष्वाक !" विश्वामित्र की मधुर वाणी द्रवित हुई—"मैं आपका स्वागत करता हूँ। वत्स ! मैं जानता हूँ आप धार्मिक हैं। मैं शरण देता हूँ। भयभीत मत हो। पुण्यकर्मा महर्षियों को मैं आमन्त्रित करता हूँ। आमन्त्रित ऋषिगण यज्ञ में सहायता करेंगे। गुरु-शाप द्वारा प्राप्त इस चाण्डाल रूप में आप स्वर्ग जाएँगे। नराधिप ! ! स्वर्ग तो आपके समीप है। आप कौशिक के शरणागत हैं। उनकी शरण आए हैं।"

राजा त्रिशंकु की उदासीन मुद्रा तिरोहित हो गई। विश्वामित्र में पुरुषार्थ का उत्साह उठ रहा था। मुख कान्तिपूर्ण था। वाणी में तेज था। वे बोले—

"पुत्रो।" विश्वामित्र का सम्बोधन सुन सभी पुत्र परम धार्मिक मुनि के सम्मुख नत-मस्तक खड़े हो गए।

"वत्स !" विश्वामित्र उत्साह से बोले—"यज्ञ की सामग्री एकत्र करो।"

धार्मिक पुत्र आज्ञा शिरोधार्य कर चले गए, किंचित् समय पश्चात् विश्वामित्र ने शिष्यों को बुलाया। श्रद्धालु शिष्य-समूह सम्मुख नतमस्तक खड़ा हो गया।

"शिष्यो !" विश्वामित्र ने गभीरतापूर्वक कहा—"ऋषियों तथा वशिष्ठ को आमन्त्रित करो। उन बहुश्रुतों से कहना कि अपने शिष्यों, सुहृदयों तथा ऋषियों के साथ इस आश्रम में शुभागमन करें। यदि कोई मेरे विरुद्ध अनादर पूर्ण वाणी का प्रयोग करे, तो शान्तिपूर्वक सुन लेना।"

शिष्यगण समस्त दिशाओं में गुरु-आदेश के साथ प्रस्थित हुए।

:o: :o. :o:

"देव ! आपका निमंत्रण स्वीकार कर ब्राह्मण-वर्ग तथा ऋषि लोग आ रहे हैं।"

"किसी ने निमंत्रण अस्वीकार किया ?"

"महोदय ऋषि ने।"

"और ?" विश्वामित्र शिष्यों की ओर देखते हुए बोले—

"वशिष्ठ—"

"अच्छा—" मुनि की भृकुटि संकुचित हुई।

"वे यज्ञ कर रहे हैं ?" शिष्यों ने भूमि की तरफ देखते हुए कहा।

"कुछ सन्देश दिया ?"—मुनि की वाणी में आतुर जिज्ञासा थी ।

"मुनिपुगव !" वे सक्रोध बोले—

"जिस यज्ञ का आयोजक क्षत्रिय हो, यजमान चाण्डाल हो, उस यज्ञ की हवि सुरगण तथा ऋषि कैसे ग्रहण करेंगे ? ब्राह्मण और महात्मागण चाण्डाल का भोजन कैसे करेंगे । भगवन् ! ! उनके लोचन क्रुद्ध-मुद्रा में आरक्त हो गए ।"

मुनिपुंगव विश्वामित्र के नेत्रों में क्रोध उतर आया । सरोष विश्वामित्र ने कहा:—

"दोषहीन और कठोर तपस्या-रत मुझ पर दोष लगानेवाले निस्सन्देह भस्म हो जाएँगे । काल-पाश मे आवद्ध वे काल-स्थान की यात्रा करेंगे । सात जन्म तक मृत वस्तु आहार होगी । युष्ठिक जाति के होंगे । श्वान मास भक्षण से घृणा नहीं करेंगे । विकृत और विरूप होकर विचरण करेंगे । दुर्बुद्धि महोदय ऋषि ने दोष लगाया है । दूषित होकर वह निषादत्व प्राप्त करेगा । प्राणियों की निर्दय हत्या करता रहेगा । अनन्त काल तक दुर्दशा भोगता रहेगा ।"

विश्वामित्र ने मुहूर्त्त मात्र में जान लिया, उनका शाप पूर्ण हुआ । वशिष्ठ तथा महोदय पतित हो गए ।"

:o: :o: :o:

ऋषियों के मध्य स्थित विश्वामित्र ने कहा—"महर्षिगण ! आप धर्मिष्ठ दानी एवं विश्रुत इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राजा त्रिशंकु को देख रहे हैं । ये हमारे शरणागत हैं । इसी शरीर से देवलोक जाना चाहते हैं । इस प्रयोजन की जिस प्रकार सिद्धि हो, उस यज्ञ का मेरे साथ आयोजन कीजिए ।"

धर्मज्ञ ऋषियों ने परस्पर मंत्रणा की । विश्वामित्र क्रोधी हैं । संशय-रहित वचन का पालन करना चाहिए । अन्यथा हम सव शाप के पात्र हो जाएँगे । मुनि पुरुषार्थी है । पुरुषार्थ से दैव पर विजय प्राप्त करना चाहते है । शास्त्र की विधि के अनुसार यज्ञ करना आवश्यक है । इक्ष्वाकु-वंशीय राजा त्रिशंकु को सशरीर देवलोक भेजना वांछनीय है । महर्षियों ने यज्ञ-आरम्भ का निश्चय किया । वे अपनी क्रियाओं में लग गए ।

:o: :o: :o:

महातेजस्वी विश्वामित्र यज्ञ के याजक थे। मन्त्रादि-कोविद ऋषि ऋत्विज हुए।

पूर्व-कल्पित यथाविध कर्म किए गए। महातपस्वी विश्वामित्र ने यज्ञ समाप्ति पर यज्ञिय भाग लेने के लिए देवताओं का आवाहन किया। देवता भाग लेने नही आए। महामुनि विश्वामित्र कोप-समाविष्ट हो गए।

क्रोधपूर्वक स्रुवा उठा ली। त्रिशंकु को सम्बोधित किया—"नरेश्वर! स्वार्जित मेरी तपस्या के वीर्य को देखो। मै तुम्हे इसी शरीर से शक्तिपूर्वक स्वर्ग भेजता हूँ। सशरीर स्वर्ग दुष्प्राप्य है। नरेश्वर!! स्वार्जित तपस्या का फल, उसके तेज से तुम सशरीर स्वर्ग जाओ।"

विश्वामित्र की वाणी शान्त हुई। महाराज त्रिशंकु स्वर्ग सशरीर चल पडे।

:o: :o: :o:

"चाण्डाल! चाण्डाल!! चाण्डाल!!!" देवलोक मे कोलाहल था। चाण्डाल-स्वरूप राजा त्रिशंकु को देखने के लिए चारों ओर से सुरगण दौड़ पडे। इन्द्र सहित सुरगणो ने त्रिशंकु को घेर लिया।

"त्रिशंकु!" इन्द्र ने कहा—"स्वर्ग मे निवास-योग्य तुमने अपना स्थान नही बनाया है। तुम्हारी यहाँ आवश्यकता नही है। पुन: भूमि पर लौट जाओ।"

"देवेन्द्र! कारण?" त्रिशंकु ने चकित मुद्रा में पूछा।

"मूढ! तुम पर गुरु-शाप है।"

"किन्तु मै विश्वामित्र के पुरुषार्थ द्वारा, उनकी तपस्या एव तेज द्वारा आया हूँ।"

"देवलोक मे तुम्हारा स्थान नही, तुम अधोशिर गिर जाओ।"

:o: :o: :o:

"मरा! मरा!! मरा!!! भगवन्! कश्यप!! रक्षा कीजिए"—स्वर्ग से पतित त्रिशंकु करुण क्रन्दन करने लगा।

विश्वामित्र आश्रम में थे। स्वर्ग से पतित राजा को देखकर क्रोधित हो गए।

"ठहरो ! ठहरो !!" विश्वामित्र ने रोषपूर्वक कहा—

त्रिशंकु अधर में ठहर गए ।

:o: :o: :o:

विश्वामित्र ने आश्रमस्थ ऋषियों के सहयोग से दक्षिण दिशा में दूसरे सप्तर्षियों का सर्जन किया । नवीन सृष्टिरचना आरम्भ कर दी । महान् पुरुषार्थ तथा तपोवल द्वारा अनेक नक्षत्र-वंशों की सृष्टि कर डाली ।

विश्वामित्र ने ऋषियों से कहा : "मैं दूसरा इन्द्र बनाऊँगा । हमारा लोक विना इन्द्र भी स्थित रह सकेगा ।" मुनिपुगव विश्वामित्र देवताओं की सृष्टि करने लग गए ।

अदम्य उत्साह तथा पुरुषार्थ द्वारा विश्वामित्र की सृष्टि-रचना देखकर सुरगण विकल हो गए । वे विश्वामित्र के आश्रम में आए । नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"तपोधन ! राजा त्रिशकु गुरु-शाप ग्रस्त हैं । शापयुक्त व्यक्ति स्वर्ग में किस प्रकार निवास कर सकता है ?"

"पुरुषार्थ वल से वह स्वर्ग मे रहेगा ।"—विश्वामित्र ने साधिकार उत्तर दिया ।

"किन्तु"...देवगण कह ही रहे थे कि मुनि बोले—

"देवो ! सुनिए !! सशरीर त्रिशंकु को स्वर्ग भेजने की मैंने प्रतिज्ञा की है । प्रतिज्ञा-भंग का दोषी नही बन सकता । त्रिशंकु इसी शरीर से स्वर्ग में रहेंगे । जिन नक्षत्रों की मैंने रचना की है वे स्थायी होंगे । महालय तक मेरी रचित सृष्टि रहेगी । कहिए ! देवगण !! आप लोगों का क्या विचार है ?"

"मुनिपुंगव ! सव कुछ यथावत् रहेगा ।"

विश्वामित्र गगन की ओर देखते हुए बोले—

"गगन मे वैश्वानर नक्षत्र के वाद मेरे निर्मित नक्षत्र रहेगे । उसमे ज्योतिर्मय त्रिशंकु रहेगे । त्रिशंकु अधोशिर रहेगे । उनकी गणना देवताओं मे होगी । मेरे निर्मित नक्षत्रगण इनका अनुगमन करेंगे ।"

"भगवन् ! आपका पुरुषार्थ, आपका तेज अलौकिक है । इस अकिंचन ने आपकी महत्ता से, आपके कर्म से, आपके पुरषार्थ से स्वर्ग प्राप्त किया है ।

भगवन्! मेरा नमस्कार ग्रहण कीजिए।" त्रिशंकु ने नमन करते हुए कहा।

विश्वामित्र शान्त हो गए। देवगण उनकी स्तुति करने लगे।

यज्ञ समाप्त हुआ। प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। शरणागत की अभिलाषा फलीभूत हुई। सब लोग प्रसन्न थे। प्रसन्न-वदन अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थित हुए।

---
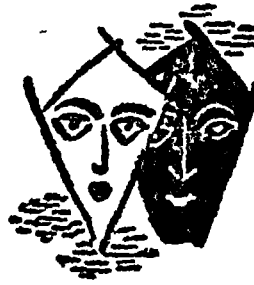
| | | |
|---|---|---|
| वाल्मीकीय रामायण | वालकाण्ड, सर्ग ५७–६० । | |
| महाभारत : | आदि पर्व, | . १७ . ३४ |
| | सभापर्व | . १२ १० |
| पुराण . | ब्रह्मपुराण | · ८ · ६७ |
| | हरिवंश पुराण | १, . १२, १३; |
| | स्कन्ध पुराण | ; ५, ६, २, ७ |
| | तैत्तिरीय आरण्यक : | १,१०,१. |
| | देवी भागवत | · ७, १०, १२ |

नोट :—अन्तरिक्ष में स्पुटनिक अन्य लोक में जाने का प्रमाण; अन्तरिक्ष के प्राणी; पुरुषार्थ; भाग्य ।

# अम्बरीष

"भगवन् !"—दण्डधर ने अयोध्यापति अम्बरीष का अभिवादन करते हुए निवेदन किया।

अम्वरीष ने यज्ञ की दीक्षा ली थी। वे यजमान थे। उत्साहपूर्वक आयोजित यज्ञ हो रहा था। राजा ने दण्डधर की ओर देखते हुए कहा:—

"कहो"—

"क्षमा हो, राजन् ! यज्ञिय पशु इन्द्र चुरा ले गए।"

राजा घवरा गए। वे अचानक खडे हो गए। उपस्थित जनसमुदाय चकित हो गया। राजा ने विनत दृष्टि से उपाध्याय की ओर देखा।

"नरेश्वर !" उपाध्याय के वचनो मे दृढ़ता थी—"दुर्नीति के कारण यज्ञिय पशु चोरी गया है।"

"मेरी दुर्नीति ?" चकित राजा ने पूछा।

"राजन् ! दुर्नीति का कर्म चोरी का कारण है। चोर का कर्म उतना नहीं है।"

"किस प्रकार ?"

"सुरक्षा आपका कर्त्तव्य है। आपने राजधर्म का त्याग किया है। कर्त्तव्यपालन में असफल हुए हैं। यदि यज्ञिय पशु चोरी जा सकता है, तो साधारण लोक की क्या अवस्था होगी। आपने कर्त्तव्य-पालन नहीं किया है। जन-रक्षा में असफल राजा पाप का भागी होता है।"

"ब्रह्मन् !"—राजा ने विनीत स्वर से कहा—"क्या करूँ ?"

"प्रायश्चित्त"—उपाध्याय ने किंचित् कठोर स्वर मे कहा।

"प्रायश्चित्त का रूप—?"

"उस यज्ञिय पशु को लाइए अथवा उसके स्थान पर किसी पुरुष को उपस्थित कीजिए।"

राजा गम्भीर हो गए।

:o: :o: :o:

"महर्षे !"—राजा अम्बरीष ने भृगुतुंग पर्वत-स्थित तपस्या-रत महर्षि ऋचीक के आश्रम में प्रवेश किया। प्रणाम किया।

"कुशल तो है राजन् ?"

"भगवान् का आशीर्वाद"—

"मार्ग में कष्ट ?"

"आपके आशीर्वाद की पवित्र छाया में विघ्न कहाँ ! सुखपूर्वक पहुँच गया हूँ।"

"कोई प्रयोजन सिद्ध कर सकता हूँ, अयोध्यापते !"

"आर्त्तार्थी आर्त्तावस्था में अर्थ के निकट आता है।"

"राजा की इच्छा ?"

"भगवन् ! मैंने यज्ञ की रचना की थी। यज्ञिय पशु चोरी हो गया है।"

ऋषि सुनने लगे।

"उपाध्याय ने कहा—यज्ञिय पशु लाओ अथवा बलि निमित्त एक पुरुष।"

"आपने क्या किया ?"

"यज्ञिय अश्व मिल नहीं सका। मैंने बलि पुरुष के बदले एक लाख गाएँ देने की घोषणा की है।"

"पुन क्या हुआ ?"

"किसी ने अपने जीवन के बदले आर्थिक लाभ उठाना पसन्द नहीं किया।"

"अब ?"

"देश, जनपद, नगर, ग्राम, आरण्य, पर्वत, पवित्र आश्रमों में कार्य-सिद्धि निमित्त भटक रहा हूँ। प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दिखाई देता।" राजा ने हतोत्साह भाव से कहा।

मुनि की मुद्रा गम्भीर हो गई।

"ऋषिवर !" राजा अर्थयुक्त वचन बोले—"शत सहस्र गाएँ लकर बदले में एक पुत्र देकर मुझे कृतार्थ कीजिएगा ?"

ऋषि मौन हो गए।

"भार्गव ! यज्ञिय पशु का पता नहीं लग सका है। क्या आप मेरी चिन्ता दूर कर पुण्य के भागी होंगे ?"

ऋषि की दृष्टि नत थी । वे बोले :

"नरश्रेष्ठ ! मै ज्येष्ठ पुत्र नहीं दे सकूँगा ।" राजा में किंचित् आशा प्रस्फुटित हुई ।

"नरशार्दूल !" ऋषि-पत्नी ने तुरत कहा—"भगवान् भार्गव ने ज्येष्ठ पुत्र की बात आपसे कही है । कनिष्ठ पुत्र शुनक मुझे प्रिय है ।"

माता ने कनिष्ठ पुत्र शुनक की ओर देखते हुए कहा ।

"प्रभो ! प्राय: देखा जाता है ज्येष्ठ पुत्र पिता को और कनिष्ठ पुत्र माता को प्रिय होता है । मै कनिष्ठ पुत्र शुनक से अलग न हो सकूँगी ।"

पिता और माता दोनों की अप्रिय बाते मध्यम पुत्र शुन:शेप ने सुनीं । उसे ग्लानि हुई । माता-पिता का उसे स्नेह प्राप्त नही है । उसे यहाँ रहना और जीना दोनों व्यर्थ मालूम हुए । उसने देखा अम्बरीष की ओर । अम्बरीष की अर्थदृष्टि ऋषि शुन:शेप पर स्थिर थी ।

"राजन् !"—शुन:शेप ने विरक्त स्वर से कहा—"पिता ज्येष्ठ को और माता कनिष्ठ पुत्र को नही देना चाहती । शेष रह गया मै । उनकी दृष्टि में विक्रय-योग्य हूँ । मुझे आप प्रसन्नतापूर्वक बलि निमित्त ले चल सकते है ।"

शुन:शेप की बात सुनते ही अम्बरीष प्रफुल्लित हो गए । सेवकों को आदेश दिया । सुवर्ण, रत्न-राशि आश्रम में लाई गई । राजा ने शत सहस्र गाएँ दी । उनके वदले में शुन:शप को प्राप्त किया । राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गया ।

महा-तेजस्वी यशस्वी राजा अम्बरीष ने शीघ्रतापूर्वक शुन:शेप को रथ पर बिठाया । धूल पीछे छोडता रथ अयोध्या की ओर वेग से चल पड़ा ।

:o: :o: :o:

"मुनिपुगव ! मुझे माता नहीं है । पिता नहीं है । मुझे बन्धु-बान्धव नहीं है ।"

"नरश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ है । सौम्य ! ! धर्म समझकर मेरी रक्षा कीजिए । आप रक्षक है । मैं शरणागत हूँ । मै दीन हूँ । दुर्बल हूँ । कातर हूँ । मै शरण का पात्र हूँ । आप मनोरथ पूर्ण करने वाले है ।"

:o: :o: :o:

"वत्स ! शुनःशेप ! !" महर्षि विश्वामित्र ने स्नेह से कहा—"तुम्हारी यह कैसी अवस्था है ? तुम दीन क्यों हो गए हो ? वदन विपण्ण क्यों है ? तुम्हारा मुख सूखा क्यो है ? आश्रम से अलग क्यो हो गए हो ?"

"मातुल ! मै क्रीत हूँ। मै दास हूँ। पिता ने मुझे बेच दिया है। मै श्रीहत हूँ। मेरी जीवन-लीला समाप्तप्राय हो चुकी है। मै केवल शरीर मात्र रह गया हूँ।"

"पुत्र ! तुम्हारी बात समझ मे नही आ रही है।" विश्वामित्र ने चकित होते हुए पूछा।

"भगवन् ! मेरे पिताजी ने राजा अम्बरीप के हाथ मुझे बेच दिया है। मै अम्बरीप के लुप्त यज्ञिय पशु के स्थान पर बलि चढने जा रहा हूँ।"

"यहाँ कैसे पहुँचे।"

"महात्मन् ! अम्बरीप अयोध्या जा रहे है। मै उनके साथ हूँ। मध्याह्न काल हो गया। पुष्कर क्षेत्र मे कुछ काल के लिए रुक गए। राजा विश्राम करने लगे। मै पुष्कर में घूमने निकल पडा। आपको ऋपियो के साथ तपस्या करते हुए देखा। आपकी शरण मे दौड आया।"

"पुत्र ! मै तुम्हारे लिए क्या करूँ ?" विश्वामित्र ने विचारते हुए पूछा।

"ऋषिवर ! राजा अम्बरीप का यज्ञ सफल हो। मेरे कारण यज्ञ में विघ्न नही पड़ना चाहिए। उनका कोई दोप नही है। पिताजी ने वेचा है। उन्होने मूल्य चुका कर मुझे खरीदा है।"

"राजा ने समाज की मर्यादा का अनुकरण किया है। स्वेच्छापूर्वक लिया हे। पिता ने स्वेच्छा से वेचा है। स्वेच्छा से मै राजा के साथ हूँ। स्वेच्छा से पिता के विक्रय को मैने स्वीकार किया है।"

विश्वामित्र शुन.शेप की दयनीय दशा पर दयार्द्र हो गए। शुन शेप ने पुन कहा, "भगवन् ! दीर्घायु चाहता हूँ। इच्छा है, उत्तम तपस्या करूँ। स्वर्ग प्राप्त करूँ। पशु-तुल्य वलि न चढूँ। मृत्यु की शोभा समय पर होती है। इस काया का अल्पावस्था मे नाश अच्छा नही लगता। मैने कुछ भी इस शरीर से नही किया है।"

विश्वामित्र अत्यन्त गम्भीर हो गए।

"धर्मात्मन् ! सुयोग्य पिता जिस प्रकार अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार इस अनाथ की धर्मानुसार आप रक्षा कीजिए।"

"पुत्र ! चिन्तित न हो। धैर्य रखो। शरीर सस्ता नहीं है। तुम्हारा उद्देश्य सत् है। तुममें धर्म है। तपस्या की भावना है। तुम पृथ्वी के भार न होगे। तुम्हारी दुनियाँ को आवश्यकता है।"

शुनःशेप ने महर्षि को आनतशिर प्रणाम किया। उसे आशा-समन्वित शान्ति मिली।

:o: :o: :o:

"पुत्रो!" विश्वामित्र ने अपनी सन्तानों को बुलाया। करबद्ध नत-मस्तक उनके सम्मुख प्रिय सन्तानें आकर खड़ी हो गईं।

"वत्स!" विश्वामित्र ने संयत वाणी में कहा।

पुत्र सावधान हो गए।

"शुभार्थी पिता लोक-परलोक के हितार्थ प्रजनन करता है। मंगलमय समय आ गया है।"

पुत्रों ने श्रद्धापूर्वक पिता को नमन किया।

"यह आर्त्त शुनःशेप है। तुम्हारा फुफेरा भ्राता है।"

पुत्रों ने मलिन-वदन शुनःशेप की ओर देखा।

"यह मुनिपुत्र शुनःशेप शरण चाहता है। उसे प्राण-दान देना है। यह मेरा प्रिय कार्य है। इसे सम्पन्न करो।

"हम लोग क्या करें?" पुत्रों ने जिज्ञासा की।

"तुम सुकृत-कर्मा हो। धर्म-परायण हो। नरेन्द्र अम्बरीष के यज्ञ में शुनःशेप के स्थान में यज्ञिय पशु बनकर अग्नि को तृप्त करो।

पुत्रगण हो गए निस्पंद।

"देवगण प्रसन्न होंगे। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा। वचनों का पालन होगा। शुनःशेप की रक्षा होगी।"

मृत्यु का भयंकर रूप पुत्रों के सम्मुख आ गया। धधकती अग्नि-ज्वाला में भस्म होते शरीर का वीभत्स दृश्य आँखों में नाच उठा। शरीर मिथ्या है। नित्य, प्रतिदिन घोखते सिद्धान्त भागकर कहीं दूर खड़े हो गए।

प्राण-रक्षा का दृढ सकल्प उदित हुआ। वे कुछ बोल न सके। मुनि ने उनकी तरफ देखा। सबकी दृष्टि नत थी। किसी की आँख पिता की ओर नही उठी। मुनि ने गम्भीर गगन की ओर देखा। पुत्र शान्त थे। मुनि को किञ्चित् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी सन्तानो की तरफ पुन: देखते हुए सम्बोधन किया—

"वत्स!"

कोई उत्तर नही मिला। सन्तानो की रहस्यमयी आँखे एक-दूसरे से मिलने लगी। सभी सोचने लगे। वे क्या कहे। वे क्यो बलि-पशु बनें। मुनि ने किञ्चित् उच्च स्वर मे पूछा—

"मेरी बात सुनी?"—

मुनि के पुत्रों में प्राण-रक्षा की भावना उत्पन्न हुई। उनका शील तिरोहित होने लगा। वे खिन्न मन से बोले—

"अपने पुत्रो की हत्या कर दूसरे के पुत्र की रक्षा आप करना चाहते हैं, विभो! यह अकार्य अपने मांस-भक्षण सदृश है।"

पुत्रों की अशिष्ट बातो द्वारा विश्वामित्र के नेत्र आरक्त हो गए। शुन:शेप उदास हो गया। मुनि का क्रोध उग्र होने लगा। भयभीत सन्ताने पीछे हटने लगी। उनकी ओर क्रूर दृष्टि से देखते हुए मुनि ने कहा—

"तुम लोगो ने शील का त्याग किया है। तुमने निर्भय होकर उन वाक्यो का उच्चारण किया, जिन्हे नही करना चाहिए। तुम लोगों ने कठोर उत्तर दिया है। कर्त्तव्यहीन पुत्रों ने पिता की आशा पर पानी फेरा है। कुसन्तानो! तुम मांस-भक्षी होगे। तुम्हारी जाति वशिष्ठो की होगी।

विश्वामित्र क्रोध से काँपने लगे। उदासीन शुन:शेप को सम्बोधित किया।—"मुनिपुत्र! मै तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

:o: :o: o.

"शुन शेप! सुनो!!"—विश्वामित्र ने शुन शेप को समीप बुलाया।

आशान्वित शुन:शेप मुनि के समीप आया। विश्वामित्र ने स्नेह से कहा—"यज्ञशाला में पवित्र यूप में बाँधे जाओगे। रक्त-पुष्प, माला, अनुलेपन, तुम्हें लगाया जाएगा। तुम्हारी बलि-पशु-तुल्य पूजा होगी।

तुम घबराना मत । उस समय निर्भय रहना । मैं तुम्हें दो दिव्य गाथा सुनाता हूँ । उनका तुम गायन करना । अम्बरीष के यज्ञ में तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी । तुम्हें प्राणदान प्राप्त होगा ।"

"प्रभो, आज्ञा !" शुनःशेप ने हर्षपूर्वक मुनि को नमन करते हुए कहा । "मैं तुम्हें दोनों गाथाएँ सुनाता हूँ, तुम उन्हे ग्रहण करो ।"

:o: :o: :o:

"राजर्षे ! शीघ्र यज्ञभूमि में चलना चाहिए । महाबुद्धे ! यज्ञ-दीक्षा लीजिए । तत्पश्चात् शास्त्रानुसार मेरा उपयोग कीजिए ।" शुन.शेप ने प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

ऋषिपुत्र की प्रसन्न वाणी सुनकर राजा अम्बरीष पुलकित हो गए । बलि-पुरुष का स्वेच्छानुसार बलि निमित्त आग्रह, उनके यज्ञ की सफलता का द्योतक था । सविधि राजा ने शुन.शेप के साथ यज्ञ-मण्डप की ओर प्रस्थान किया । यज्ञ-मण्डप सुसज्जित था । अगर-धूप की सुगन्ध से भरा था । धर्मानुसार शुनःशेप यज्ञ की बलि के पशु-तुल्य पवित्र सामग्रियों से सुशोभित किया गया । उसे रक्ताम्बर पहनाया गया । वक्षःस्थल पर माला सुशोभित हो गई । शरीर पर अनुलेपन लगाया गया । यूप से शुनःशेप बाँध दिया गया ।

लोगों ने समझा शुन.शेप दुखी होगा । मृत्यु देखकर रोदन करेगा । प्राण-रक्षार्थ आतुरता प्रकट करेगा । अपने व्याकुल नाद स लोगों का हृदय आर्द्र कर देगा । किन्तु यूप में बँध जाने पर भी लोगों ने देखा कि शुन.शेप मे अस्थिरता न थी । वह प्रसन्न था ।

बलि-प्राणी की बलिपूर्व की सब क्रियाएँ समाप्त हुईं । शुनःशेप विश्वामित्र द्वारा बताई दोनों गाथाओं का गान करने लगा । गान-स्वर से लोग मोहित हो गए । इन्द्र उसकी उत्तम स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गए । वे यज्ञ-भूमि में अवतीर्ण हुए—

"शुनःशेप तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"दीर्घायु ।"

'एवमस्तु ।"

"और—?"

"यज्ञ सुफल हो, भगवन् !"

"एवमस्तु ।"

इन्द्र ने अम्बरीष की ओर मुस्कराते हुए देखा और वरदान दिया । मानव रक्त-विन्दुओ से लाल होने वाली भूमि मे वर्षा होने लगी हर्ष-ध्वनि के मध्य पुष्पों की ।

---

वाल्मीकीय रामायण —वालकाण्ड · सर्ग ६१ ।

महाभारत आदि पर्व : १, २२७ ।

भीष्म पर्व ९, ६

वन पर्व २६३; ३३ ।

द्रोण पर्व ६४ ।

शान्ति पर्व . ८ : ३३—३४ ।

८ ३३—३४ । ७ । २९,१००—१०४ ।

: ९८ · ६—११,१५ । २३४, २३ ।

अनुशासन पर्व . ९४,२० । ११५, ५८, ५९ । १३७, ८ ।

१६५ : ५३ ।

आश्वमेधिक पर्व : ३१, ७—१२

पुराण पद्मपुराण उत्तरखड . ३६ . ३७, ८०, १२४ ।

भागवत पुराण . ९, ४ ।

लिंग पुराण . २, ५, ६ ।

ऋग्वेद : १, १००, १७ ।

१, १०० ।

९, ९८ ।

नोट —नरमेध के स्थान पर अन्य वलिप्रकार, पिता पर पुत्र का अधिकार, पशु के स्थान पर नरवलि (नरमेध का एक प्रकार से विरोध) ।

## मेनका

"भद्र ! आपने अपने अर्जित शुभ कर्मों द्वारा महर्षि-पद प्राप्त किया है"—महा-तेजस्वी ब्रह्मा ने सुरुचिर वचनों से कहा।

विश्वामित्र ने एक सहस्र वर्ष की तपस्या समाप्त की थी। उन्होने व्रत-स्नान किया। व्रत-स्नान काल में तपस्या फल प्रदान निमित्त देवतागण का आगमन हुआ था। ब्रह्मा की बात सुनकर विश्वामित्र विशेष प्रसन्न हुए। मुनि ने पितामह का सादर पूजन, अभिवादन किया।

"पुत्र ! कल्याण हो"—ब्रह्मा ने आशीर्वाद देकर ब्रह्मलोक गमन किया।

आगत-देवतागण उपचारोपरान्त यथास्थान पुनर्वर्तित हुए। विश्वामित्र पुनः कठोर तपस्या करने लगे।

कुछ काल बीत गया।

परमाप्सरा मेनका पुष्कर में स्नान करने आई। महा-तेजस्वी विश्वामित्र की तपस्या द्वारा स्थिर हुए नेत्रों ने देखा—कमनीय नारी-मूर्त्ति।

आँखों ने देखी रूप की प्रतिमा। वारिद की चंचल दामिनी। काम मुस्कराया। संयम मुनि का साथ छोड़ चला। नेत्रो मे जागृत होने लगीं कोमल वृत्तियाँ। मानस में उठने लगी मनोरम भावना। तेज उदास होने लगा। व्रत दु.खित हुआ। तपस्या विलख उठी।

किन्तु मन नाच उठा। उपेक्षापूर्वक देखा तपोमय जीवन को। तरंगित हो गया मानवीय काम दुर्बलता में।

विश्वामित्र के पद उठे, रुकते-उठते। आगे बढ़े, पीछे लौटे और फिर बढ़ चले पुष्कर-तट पर।

नीर से निखरा हुआ नारी-कलेवर। रति खड़ी थी जैसे ऋतु-स्नान करके। आड से मुनि निरखने लगे अपूर्व नारी-सौन्दर्य। माया मुसकाई। काम-तृष्णा जगी। लज्जा तिरोहित हुई। शील गिर गया। मुनि के कामोन्मुख पद पहुँचे सरोवर-तट पर। विस्फारित नयन देखने

लगे तरुणी की शोभा। उत्फुल्ल पुष्प-वाण द्वारा ताड़ित मुनि की वाणी मुखरित हुई :

"अप्सरे! मै तुम्हारा स्वागत करता हूँ। शुभागने! आओ आश्रम मे निवास करो।"

मेनका आकर्षक नारी-जन्य लज्जा में छिपने लगी।

"भद्रे!! निस्सकोच अनुग्रह करो।"

मेनका मुस्कराई।

० ० :०:

दस वर्ष पश्चात्—

"मै ओह! मै कही भूला था। दशक मुहूर्त मात्र-तुल्य निकल गया। मुझे ज्ञान न रहा।" विश्वामित्र की आर्तवाणी मुखरित हुई।

विश्वामित्र की आश्चर्य-मिश्रित मुद्रा में गम्भीरता आने लगी। तपस्या नष्ट हो गई। सयम नही रह सका। उन्हे होने लगा पश्चात्ताप।

"मेरे पुरुषार्थ को धिक्कार है। मुझे धिक्कार है। धिक्कार है काम को।" विश्वामित्र ने मन मे उसका निराकरण किया।

विश्वामित्र लज्जित थे। चिन्ता उन्हें घेरने लगी। उदासी मे शोक ने प्रवेश किया। वे हो गये दुर्बल। दौर्बल्य का सखा आया क्रोध। क्रोध-जन्य विवेक में मन विचार करने लगा, "सुरगणो का माया-जाल था। तपस्या-भंग निर्मित षड्यन्त्र था। स्पर्श-सुख में, मोह मे, आह!—दस वर्ष निकल गए।"

दु:ख-जर्जर विश्वामित्र नि:श्वास परित्याग करने लगे। अस्थिर हो गए। अनुताप ने उन्हे कातर वना दिया।

उनकी व्याकुलावस्था देखी मेनका ने। वह कदलीपत्र-तुल्य कॉपने लगी। भयाकुल हो गई। विश्वामित्र के क्रोधानल की अनेक कहानियाँ मूर्तरूप नेत्रों के सम्मुख एक के वाद दूसरी आने लगी।

मुनि ने देखी अपनी दस वर्ष की सहचरी। मुनि ने देखी तप-विनाशक काम-मूर्त्ति।

मुनि की आँखों ने देखी दुर्बल नारी। उनके आरक्त नेत्रो मे खिच गया दुर्बल नारी का श्वेत रेखा-चित्र। सरल नारी-रूप की छाया

में नेत्र की लाली दूर होने लगी। उज्ज्वल होते नेत्र में श्वेत रेखा-चित्र एकाकार हो गया। मन स्वस्थ हुआ। विवेक ने जगाया। वे मेनका के समीप विकारहीन आए। उसके पास जिसके लिए कभी पुरुषार्थ को, तप को, तिलांजलि दे चुके थे। विवेक ने उन्हें अनुप्राणित किया। मुनि के शान्त स्वर मुखरित हुए :

"शोभने! क्षमा करना। मै आत्मविस्मृत था। तुम्हारा कोई अपराध नही। मरे दुर्बल संयम का दोष है। मैं जाता हूँ उत्तर पर्वत पर, काम और विकारों पर विजय-प्राप्ति के निमित्त पुनः अपनी तपस्या तथा पुरुषार्थ की शरण लेने।"

:o: :o: :o:

कौशिकी नदी के तट पर तप करने लगे विश्वामित्र—देवतागण भीत हुए। वे गए ब्रह्मा के पास। निवेदन किया—"विश्वामित्र को महर्षि का पद मिलना चाहिए।"

ब्रह्मा मुस्कराए। पुनः चल पड़े कौशिकी-तट पर।

"महर्षि!"—पितामह बोले—"स्वागत वत्स!! वास्तव में तुम महर्षि हो। तुम्हारी तपस्या फलीभूत हुई।"

"पितामह!" विश्वामित्र ने नम्रतापूर्वक करबद्ध निवेदन किया—

"श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि-पद मैं अपने अर्जित शुभ कर्मो द्वारा नहीं प्राप्त कर सका हूँ। अतएव—आपकी दृष्टि में मै जितेन्द्रिय नही हूँ।"

"वत्स! तुम्हारी इन्द्रिय-विजय पूर्ण नही हुई है। मुनिश्रेष्ठ! इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करो। इन्द्रिय-विजय बिना कोई ब्रह्मर्षि कैसे हो सकेगा?"

विश्वामित्र ने पुनः कठोर तपस्या आरम्भ कर दी।

---

वालमीकीय रामायण—बालकाण्ड सर्ग. ६।

महाभारत, आदि पर्व ८ ७–७।
७२ : २–६।
७४ ६८–६६।
१२२ ६४।
सभा पर्व १०० १०।
वन पर्व ४३. २६।

नोट—अन्तर्द्वन्द्व, मनोवैज्ञानिक काम की शक्ति, शारीरिक तथा मानसिक प्रवृत्तियो का संघर्ष।

## रम्भा

"रम्भे !"—सहस्राक्ष धीमान् इन्द्र ने कहा—"महत्त्वपूर्ण देव-कार्य तुम्हे करना है ।"

"शचीपते !" रम्भा ने मस्तक झुका दिया ।

"कौशिक को काम-मोहित करना है ।"

रम्भा ने वद्ध-अजलि सुरपति से कहा, "सुरपते ! महामुनि विश्वामित्र घोर है । निस्सन्देह वे क्रोध करेगे । भय लगता है । क्षमा कीजिए ।"

"रम्भे !" कृताजलि भीता कम्पिता रम्भा से इन्द्र ने कहा—

"तुम और भय ! कल्याण होगा । अनुशासन मानो ।"

"भगवन् !"

"सुनो ! रम्भे ! ! हृदयग्राही वसन्त ऋतु मे जव पादप नव-पल्लव धारण करते है, कोकिल कूजती है, मै कन्दर्प सहित तुम्हारे पार्श्व में रहूँगा । भद्रे ! तुम अपना रूप और सुन्दर एव भास्वर बनाकर तपस्वी का मन तपस्या से विरत करो ।"

"जो आज्ञा"—रम्भा ने गम्भीर मुद्रा से नतमस्तक होते हुए उत्तर दिया ।

:o. .o: :o:

वसन्त आया । पादप फूले । लताएँ मुस्कराईं । उमग उठी । कोकिल कूकी । मस्ती आई ।

रम्भा ने किया शृगार । सौन्दर्य पर मानवीय प्रसाधन फैल गए । प्रकृति ने, वन-पुष्पो ने उसे सजा दिया । मंजरियों ने सुरभि-दान किया । मदन ने दुंदुभी बजाई । रम्भा चली विजय करने ।

विश्वामित्र ने सुना कोकिल-गान । आँखे खुली । उनमें नाच उठी शुचिस्मिता रम्भा ।

मधुर कण्ठ स्वर से निकलीं संगीत-लहरियाँ। चल पड़ी मिलने विश्वामित्र से।

संगीत में प्रच्छन्न काम ने उत्पन्न किया सन्देह। ध्यान में आ गईं मनका। तप नष्ट हुआ था। आज पुनः उसी की पुनरावृत्ति।

"रम्भे!" विश्वामित्र सक्रोध स्वर में बोले—"काम-क्रोध जीतने की प्रवल इच्छावाले मुझ तपस्वी को तप-विरत, काम-मोहित करना चाहती हो! तपस्वी का तप नष्ट करना तुम्हारा प्रयोजन है। तेरे सव कर्म जड़ हैं। रम्भे! जा शिला हो जा। तुम्हारा उद्धार कभी कोई तपस्वी ब्राह्मण करेगा।"

रम्भा देखते-देखते पत्थर हो गई। इन्द्र और कामदेव भाग गए। कोप के कारण मुनि का तप नष्ट हो गया। इन्द्रियो पर संयम नही रख सके। अशान्त हो गए। ग्लानि उत्पन्न हुई। दीर्घकालीन तपस्या के पश्चात् भी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नही कर सके। मुनि ने निश्चय किया मूक व्रत लेने का। क्रोध का त्याग करूँगा, इन्द्रिय-जय करूँगा।

विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि पद-प्राप्ति की प्रतिज्ञा की। तपस्या की दीक्षा ली।

:o: :o: :o:

विश्वामित्र ने उत्तर दिशा त्याग दी। पूर्व दिशा की ओर गए। कठोर तपस्या करने लगे।

सहस्र वर्षो का उत्तम मौन व्रत लिया। पुष्कर तप में रत हुए। सहस्र वर्ष तक वे काष्ठवत् वैठे रहे। उनके तपोमार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित हुए, किन्तु उनमें किंचित् मात्र क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ।

सहस्र वर्ष पश्चात् महामुनि का महाव्रत पूर्ण हुआ। मुनि अन्न ग्रहण करना चाहते थे।

अपने सम्मुख द्विजाति-रूप इन्द्र को देखा। सकेत से प्रयोजन पूछा।

"अन्न-भोजन"—छद्म ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र ने कहा।

विश्वामित्र ने प्रसन्नता से अन्न इन्द्र को दे दिया। मन मे किंचित् मात्र विकार ने प्रवेश नही किया। विना भोजन रह गए। ब्राह्मण से कुछ नही बोले। पुन अपनी तपस्या मे लीन हो गए।

विश्वामित्र ने श्वासावरोध कर तपस्या आरम्भ की। सहस्र वर्ष और तपस्या की। नासिका द्वारा श्वास वन्द हो गया। मूर्धा से धुआँ निकलने लगा। उन्हें मानवीय किंवा दैवी, कोई भी शक्ति विचलित नही कर सकी। क्रोध उन्हे स्पर्श नही कर सका।

देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नागादि ब्रह्मा के पास गए। निवेदन किया। विश्वामित्र पापहीन हो गए है। अतएव अव उनको उनका अभिलषित ब्रह्मर्षि पद मिलना चाहिए।

ब्रह्मा देवगणो के साथ चल पड़े।

.o: .o: :o.

"ब्रह्मन्! स्वागत! आप दीर्घायु हो। महान् तपस्या द्वारा आपने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है। आपका कल्याण हो।"

महामुनि ने मुदित मन से सबको प्रणाम किया। परमपिता ब्रह्मा से बोले—

"यदि ब्राह्मणत्व और दीर्घ आयु मुझे प्राप्त हुई है, तो मुझे ओंकार, वषट्कार तथा वेद-ज्ञान प्राप्ति का वर भी देकर अनुगृहीत कीजिए।"

विश्वामित्र ने पुन. ठहर कर कहा—"वेद जाननेवालो में मै श्रेष्ठ होऊँ। ब्रह्म-पुत्र वशिष्ठ मुझको ब्रह्मर्षि कहे। यदि आप लोगो की कृपा से मेरा यह मनोरथ पूरा हो गया, तो आप लोग प्रसन्नता से अपने-अपने गन्तव्य स्थान को जाइए।"

देवतागण वशिष्ठ को अनुकूल कर साथ लाए ।

वशिष्ठ ने विश्वामित्र को देखते ही सम्बोधित किया—"ब्रह्मर्षे !"

विश्वामित्र वशिष्ठ के गले से मिल गए । मित्रता हो गई । विकार किंवा दोष दूर हो गए । विश्वामित्र ने वशिष्ठ की विधिवत् पूजा की ।

—:०:—

---

| वाल्मीकीय रामायण | | |
|---|---|---|
| | बालकाण्ड : सर्ग | ६४ । |
| | अरण्यकाण्ड : सर्ग | . ४ . १९ । |
| महाभारत | आदि पर्व | . ६५ : ५० । |
| | | १२२ : ६२ । |
| | सभा पर्व | . १० : १० । |
| | वन पर्व | ४३ . २० । |
| | उद्योग पर्व | ११ । |
| | अनुशासन पर्व | : ३ . ११ । १९ . ४४ । |
| पुराण | भागवत | : १२ . ११ । |
| | स्कन्द | ३ · १, ३९ । |

यह कहानी जन्मना तथा कर्मणा वर्ण के संघर्ष का इतिहास तथा तत्कालीन सामाजिक स्थिति प्रस्तुत करती है । कार्य-साधन निमित्त स्त्रियों का उपयोग किया जाता था । चाणक्य ने विष-कन्या का वर्णन किया है । आधुनिक वैदेशिक नीति तथा गुप्तचरादि विभाग मे स्त्रियों ने चतुराई तथा निपुणता के साथ कार्य किया है ।

जन्म से जाति होने पर भी कर्म से जाति बदली जा सकती है । राजा राजर्षि तथा ब्राह्मण ब्रह्मर्षि होता है । वशिष्ठ और विश्वामित्र का इतिहास इस आन्दोलन का इतिहास है कि कर्म से निम्न जाति का व्यक्ति उच्च जाति किंवा वर्ण प्राप्त कर सकता है । विश्वामित्र पुरुषार्थ का आश्रय लेकर ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त करना चाहते थे । वशिष्ठ जन्मना वर्ण स्कूल के समर्थक थे । दोनो विचारों मे संघर्ष हुआ । अन्त मे यही निश्चय हुआ कि कर्म से राजर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हो सकते है ।

# परशुराम

जैसे आँधी उठी। पृथ्वी काँप उठी। वडे-वडे वृक्ष धराशायी होने लगे। भुवन-भास्कर तम-से आवृत्त हो गए। दिशाएँ अदृश्य हो गई। उडते भस्म से संसार आवृत्त हो गया। राजा दशरथ की सेना समूढ हो गई। उस भयानक वायु के प्रादुर्भाव में वशिष्ठ, दशरथ तथा दशरथ के चारो पुत्रों ने अपनी सज्ञा नही खाई। वाहिनी भस्माच्छादित हो गई थी। जीवधारी अपनी सज्ञा भूल गए थे।

दशरथ की आँखो ने देखा। भीम-सदृश जटामण्डलधारी क्षत्रिय राजाओं का नाश करने वाले जमदग्नि-पुत्र भार्गव। परशुराम कैलास के सदृश दुर्धर्ष थे। कालाग्नि के समान दु सह थे। तेजोमण्डल द्वारा जाज्वल्य-मान थे। पृथग्जन उनकी ओर देख नही सकते थे।

स्कन्ध-प्रदेश पर परशु था। हाथों मे दीप्तिमान् उत्तम धनुष विद्युत्-तुल्य सुशोभित था। वे त्रिपुर-विनाशक शकर-सदृश प्रतीत हो रहे थे।

भीम-तुल्य एवं पावक-समान प्रज्वलित भगवान् परशुराम को देखकर वशिष्ठादि प्रमुख ब्राह्मण एकत्र होकर परस्पर बात करने लगे।

पिता-वध द्वारा क्रोधित परशुराम क्या पुन: क्षत्रिय-संहार करेगे? पूर्वकाल मे क्षत्रिय-सहार कर उनका मानसिक विकार शान्त हो गया था। पुनः क्षत्रियो का संहार करने के लिए निकलना कठिन है।

परस्पर सम्भाषण करते हुए ऋषियो ने परशुराम को समीप आया देखा। उन्होने भगवान् परशुराम को अर्घ्य दिया। विनीत स्वर मे राम भगवान् से बात करने लगे।

पूजा प्राप्त कर लेने पर परशुराम दाशरथी राम से बोले—"दाशरथे! तुम्हारे अद्भुत वीर्य की वात मैने सुनी है। निखिल पृथ्वी में धनुर्भेदन की वात सुनी है। उस धनुष का भेदन करना अचिन्त्य है, अद्भुत है। धनुर्भङ्ग की वात सुनकर मै एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर यहाँ आया हूँ।"

उपस्थित समुदाय निःशब्द था।

"राम ! इस महा धनुष पर शर चढ़ाकर अपने ब्रह्म का प्रदर्शन करो । मै तुम्हारा वल देखकर तुम्हे द्वन्द्व-युद्ध प्रदान करूँगा । वह तुम्हारे वीर्य के लिए श्लाघ्य होगा ।"

परशुराम की वात राजा दशरथ ने सुनी । वे विषण्ण-वदन हो गए । दीन भाव से प्रांजलिभूत होकर बोले—

"आप महान् तपस्वी, व्रत तथा स्वाध्यायरत ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न हुए है । ब्रह्मज्ञानी है । क्षत्रियो पर आपका प्रकट हुआ क्रोध शान्त हो चुका है । आपने इन्द्र के सम्मुख प्रतिज्ञा की है । शस्त्र का त्याग किया है । मेरे वालकों को कृपया अभयदान दीजिए ।"

परशुराम कुछ बोले नहीं ।

राजा दशरथ ने पुन निवेदन किया—"आपने कश्यप को वसुन्धरा का दान किया है । धार्मिक जीवन का वरण किया है । आप महेन्द्र पर्वत पर निकेतन बनाकर रहने लगे है । महामुने ! आप इस समय हमारे विनाश निमित्त किस प्रकार आ गए ? राम की हत्या के पश्चात् हम लोग कैसे जीवित रह सकते है ?"

दशरथ के आर्त्त एवं दीन वचनों का परशुराम ने आदर नहीं किया ।

"राम !" परशुराम ने कहा—"लोकाभिपूजित दिव्य, श्रेष्ठ, दृढ़ और बली दो धनुषों की रचना विश्वकर्मा ने स्वयं अत्यन्त परिश्रम से की थी । उन दोनों धनुषो में एक धनुष देवताओं ने युद्धार्थी त्र्यम्बक को दिया था । महादेव ने उस धनुष का प्रयोग त्रिपुरासुर-संग्राम में किया था ।"

सवके मस्तक नत थे ।

"नरश्रेष्ठ काकुत्स्थ !! तुमने त्रिपुरासुर-संहारक धनुष को तोड़ा है"—परशुराम ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

परशुराम न पुनः कहा—"देवताओं ने शिव तथा विष्णु के वलावल के विषय मे जिज्ञासा की थी । ब्रह्मा ने बलाबल-परीक्षा-निमित्त शिव तथा विष्णु में भेद उत्पन्न कर दिया । शिव तथा ब्रह्मा मे रोम-हर्षण युद्ध हुआ । विष्णु ने हुंकार मात्र से शिव के धनुष तथा शिव को स्तम्भित कर दिया था । देवताओं ने उन्हे शान्त किया । शिव ने वाण सहित धनुष राजर्षि विदेह को दे दिया था । यह वही धनुष है ।"

अपने धनुष की ओर देखते हुए परशुराम ने कहा—"राम ! यह दूसरा दुर्धर्ष धनुष सुरगणो ने विष्णु को दिया था। भगवान् विष्णु ने भृगुवशी ऋचीक मुनि को न्यास-स्वरूप धनुष दे दिया था। वही वैष्णव धनुष मेरे हाथो मे तुम्हारे सम्मुख है। महातेजस्वी ऋचीक ऋषि ने उस धनुष को प्रतिकार-भावना-हीन अपने पुत्र एव मेरे पिता महात्मा जमदग्नि को दिया था। जमदग्नि अस्त्र-शस्त्र त्यागकर तपस्या करने लगे थे। धनुष रखा था। कृतवीर्य-कुमार अर्जुन ने मेरे पिता का वध प्राकृत बुद्धि का आश्रय लेकर कर दिया। पिता के दारुण वध का समाचार सुनकर मैने रोषपूर्वक क्षत्रियों का संहार आरम्भ किया। समस्त पृथ्वी विजय करने के लिए एक यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त मे दक्षिणा-स्वरूप समस्त पृथ्वी ऊर्ध्वकर्मा महात्मा कश्यप को दक्षिणा-स्वरूप दे दी है। पृथ्वी-दान के पश्चात् तपोवल-समन्वित होकर महेन्द्र पर्वत पर निवास करने लगा। शिव-धनुष के भग का समाचार सुना। शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया हूँ।"

परशुराम ने राम की ओर गम्भीरतापूर्वक देखते हुए कहा—"राम ! पितृ-पितामह के अधिकार में वह गौरवान्वित महान् धनुष रहता चला आया है। क्षात्र-धर्मानुसार उत्तम वैष्णव धनुष ग्रहण करो। शत्रु-नाशक इस धनुष-श्रेष्ठ पर वाण योजित करो। यदि तुम इस कार्य मे असफल हुए तो मै तुमसे द्वन्द्व करूँगा।"

भगवान् राम ने भगवान् परशुराम की बाते शान्तिपूर्वक सुनी। पिता की उपस्थिति और उनके गौरव के कारण संकोचवश कुछ बोल नही सके। परशुराम ने रामचन्द्र के क्षात्रधर्म एवं वल को चुनौती दी। राम ने बोलना उचित समझा। अपने पिता की ओर देखा। परशुराम को सम्बोधित किया :

"भार्गव ! पिता-वध के प्रतिशोध-स्वरूप आपके क्षत्रिय-संहार की वात सुनी है। मै पिता के ऋण से उऋण होने के कर्मो की प्रशसा करता हूँ। मै क्षात्रधर्म से युक्त हूँ। आप मुझे वीर्य-विहीन समझते है। असमर्थ समझकर मेरा अपमान कर रहे है। आप मेरा तेज और पराक्रम देखिए।"

राम ने क्रोधपूर्वक भार्गव के हाथों से धनुष-बाण ले लिए। सरलता-पूवक धनुष पर बाण चढ़ा दिया। धनुष पर बाण तानकर राम परशुराम की ओर आकृष्ट हुए :

"जामदग्न्य! आप ब्राह्मण हैं। मेरे पूज्य है। आप विश्वामित्र के सम्बन्धी है। अतएव मैं बाण आपके प्राण-हरण निमित्त नहीं चलाऊँगा। मेरा विचार है तपोबल द्वारा अर्जित आपके लोकों तथा गति का हनन कर दूँ। बोलिए भार्गव! आपकी क्या इच्छा है?"

उपस्थित जन-समुदाय आश्चर्यित जड़वत् हो गया। राम का अलौकिक बल तथा तेज देखकर परशुराम स्तम्भित हो गए। कुछ बोल न सके।

"भार्गव!" राम बोले, "यह विष्णु का दिव्य पुरंजय शर है। यह अपने पराक्रम से अमोघ बल और दर्प का विनाश करता है।"

परशुरामजी राम की ओजस्वी वाणी सुन एवं पराक्रम देखकर स्तम्भित हो गए। निर्वीर्य हो गए। उनका पराक्रम-बलवीर्य जैसे राम मे प्रवेश कर गया। तेजहीन हो जाने से परशुराम दुर्बल एवं जड़ीभूत हो गए।

"काकुत्स्थ!" परशुराम कमलाक्ष राम की ओर देखते हुए मन्द-मन्द स्वर से बोले, "पूर्व काल में इस वसुन्धरा को कश्यप को दान दिया था। उन्होंने मुझ से कहा था, तुम मेरे राज्य में मत रहना। उस समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मै पृथ्वी पर निवास नही करूँगा। अतएव मेरी गति का नाश मत कीजिए। मुझे मनोवेग-तुल्य महेन्द्र पर्वत पर जाना है। मैंने पूर्व काल मे निजार्जित तपस्या द्वारा जिन उत्तम लोकों की प्राप्ति की है, उन्ही लोकों का नाश आप प्रत्यंचा पर चढ़े बाण से कीजिए। अब विलम्ब करना अनुचित होगा।"

परशुराम ने नतमस्तक पुनः कहा—"परंतप! कल्याण हो! आपके धनुष ग्रहण द्वारा मैं समझ गया हूँ कि आप अक्षय मध-दैत्य-हन्ता सुरेश्वर है। देखिए, सभी सुरगण आपको देखने के लिए एकत्र हो गए हैं। आपका कार्य अनुपम है। युद्ध में आपका सामना करने वाला कोई नही है।"

"काकुत्स्थ !" परशुराम ने कहा—"आपसे परास्त होने के कारण मैं लज्जा का अनुभव नहीं कर रहा हूँ। अपना बाण छोड़कर हमारे अर्जित लोकों का विनाश कीजिए। बाण के छूटने पर मैं उत्तम महेन्द्र पर्वत पर जाऊँगा।"

दाशरथि राम ने प्रतापवान् परशुराम के कहने पर उत्तम शर छोड़ा। परशुराम ने अपने स्वार्जित लोको का विनाश देखा।

---

| | | |
|---|---|---|
| वालमीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग | | ७४–७६ |
| महाभारत | आदि पर्व | ३, ४, ५–७ । ६४, ४ । १२९, ६२, ६६ । १६५, १३ । |
| | सभा पर्व | ८, १९ । ३८, २९ । ५३, ११ । ७८, १५ । |
| | वन पर्व | ९९, ४०–७१ । ११५ । ११६, १४ । ११६, १८, २५ । ११७, ९, ११ । ११८, । ३०२, ९ । |
| | उद्योग पर्व | ८३, ६४ । ९६ । १७७, ३२–३४ । १७८, ३०, ३५ ३६, ६६ । १७९, ३–४, १९ । १८५, ३६ । ८६, ३ । |
| | द्रोण पर्व | ७० । |
| | कर्ण पर्व | ३४, १४९–१५५ । |
| | शान्ति पर्व | २ १४ । ३, ३०–३२ । ४९ ३१–३३, ४८, ५२–५३, ६३–६४, ६६–८७ १४३–१५९ २३४ २६ |
| | अनुशासन पर्व | १८ १२–१५ ८४ . ३०–४० १३७ . १२ ९२ |

परशुराम की दशरथनन्दन श्रीराम ने पूजा की। राम द्वारा पूजित परशुराम ने राम की प्रदक्षिणा की। अनन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान किया।

---

| | | |
|---|---|---|
| पुराण | ब्रह्म | १० |
| | पद्म-उत्तरखड | २४८, २४१ |
| | मत्स्य | ३६, ४७, २४४ |
| | वायु | २, २९, ८८, ३६, ९० |
| | ब्रह्माण्ड | ३, ३२, ५६–६०, २३, २६, २, १४, ३१, ३०, ४ . ४०–४१। ३–४२, ३–४४, ३–४६, ३–५८, १७, ३–५६, ५१–५७, ३–५८। |
| | विष्णु धर्मोत्तर | १, ३६, ११, १ · ५२–५६ |
| | हरिवश | २ . ४४, २–३९ |
| | मीक | १८५ |
| | स्कन्द, सह्याद्रि | २–१, (१) |
| | आश्वमेधिक पर्व | २९ ११, १८, ३० |
| | ऋग्वेद | १० : ११० |
| | अथर्ववेद | ५ १८ . १० |
| | रेणुका-माहात्म्य | १४, १५, ३७, ३७–४० |
| | देवी भागवत | ४ . १६ |

# अयोध्या काण्ड

# श्रवण

भास्कर वसुन्धरा का रसपान समाप्त कर चुके थे। प्रखर रश्मियो द्वारा जगत् को सतप्त कर प्रेत-सेवित दक्षिण दिशा की ओर वे प्रस्थान कर चुके थे।

"उनके प्रस्थान के साथ आई काम-विवर्धनी वर्षा ऋतु। सजल मेघो द्वारा नील गगन भर गया। उष्णता तत्काल शान्त हो गई। भूमि ने पहन लिया हरा वस्त्र। गा उठे चातक। वायु-मण्डल पूर्ण हो गया दादुर-ध्वनि से। मयूर हो गया प्रसन्न।"

"विदा हो गई गर्मी। प्रिय-दर्शन आ गए स्निग्ध मेघ। तरल पंख पक्षी गए उन वृक्षो पर, जिनका मस्तक शीतल जल-वर्षण से हो चुका था शान्त। सुरभित प्रकम्पित वायु ने झुकझोर कर निकाल दी थी उनकी उष्णता। वर्षाच्छादित मत्त सारंग तरंगहीन निश्चल समुद्र किंवा स्नान किए हुए पर्वत-तुल्य लगता था। पर्वत की धातुओं से सम्पर्कशील, विमल जल-स्रोत, कही पाण्डु वर्ण, कही अरुण वर्ण, कही भस्म वर्ण, नागो-तुल्य कुटिल गति से गुन-गुनाते वहे चले जा रहे थे।"

"रमणीय वर्षा ऋतु का प्रारम्भिक काल प्रिय लगा। उत्साह उत्पन्न हुआ। प्रकृति सुषमा मुझे खीच रही थी। उस सुख-काल मे धनुष-वाण लेकर रथ पर निकल पड़ा। सरयू के पवित्र तट पर गया।"

"चला जा रहा था इन्द्रियो से प्रेरित युवक को लिए एक रथ। स्कन्ध-प्रदेश पर शोभित था धनुष। अवयवो मे पडे थे अलंकार। मस्तक पर शोभित था रत्न-जटित मुकुट।"

"मैंने किसी घाट पर तृपार्त्त आए किसी महिष, गज अथवा सिंह, व्याघ्रादि निशा-काल मे शब्दवेधी वाण से मारने का निश्चय किया।"

.o: .o: .o:

"चारों ओर घोर अंधकार था।

"कलश में जल भरने जैसा घोष हुआ।

"घोष आँखों की ओट से ऊर्जस्वित हुआ था।

"गज-गर्जन के तुल्य था वह।

"शर पर बाण रखा।

"दीप्तिमान् सर्प तुल्य भयंकर शब्दवेधी बाण की सन्-सन्-सन् ध्वनि हुई।

"हाथ से अर्घ-पूर्ण कलश गिर गया।"

"कोई जलाशय मे गिरा।"

"मानव की करुण वाणी गूँजी।"

"आह! निर्जन रात्रि काल मे, नदी के शीतल एकान्त अपकूल मे, मै आया था जल लेने? मुझे तपस्वी पर शस्त्र-प्रहार कैसे सम्भव हो सका है?

"किसने मुझे मारा है। किसी का मैने क्या बिगाड़ा है। दण्ड देना त्याग दिया है। ऋषि हूँ। वन-जन्य पदार्थ पर हमारा जीवन आश्रित है। मैने किसी का अपकार नही किया है। फिर किसने मुझे मारा है? मैं जटा धारण करता हूँ। वल्कल एवं मृगचर्म हमारे वसन है। मेरे समान ऋषि का वध किया गया है? किसी का क्या अपकार किया है? मेरे वध से किसी का क्या अर्थ-लाभ होगा। मेरे वधकर्त्ता ने अपने शरीर को कष्ट देकर निष्फल चेष्टा की है। इस कार्य से उसकी हानि होगी? इस वध द्वारा वधिक का कुछ लाभ नही देख पा रहा हूँ।"

"गुरु-स्त्री-गमन तुल्य इस अपराध को कोई अच्छा नहीं कहेगा। मुझे अपने जीवन नष्ट होने की चिन्ता नही है।'

'किन्तु मेरे माता-पिता! आह!! उनकी क्या अवस्था होगी? मै उन्ही के लिए चिन्तित हूँ। उनकी मैने चिरकाल से सेवा की है। मेरे पंचतत्व प्राप्त करने पर वृद्ध माता-पिता का जीवन-निर्वाह कैसे होगा। किस अजितेन्द्रिय अकृतात्मा ने एक ही वाण से मुझे तथा मेरे माता-पिता का वध कर दिया है।'

"ऋषि की वाणी शिथिल होने लगी। जीवन-श्री बिखरने लगी। रक्त उज्ज्वल जलाशय के जल को लाल करने लगा। वाणी रुक गई।

:o .o: .o:

"मै अवाक् हो गया। उमग इन्द्रियों का साथ छोड़कर भाग गई। बुद्धि लौटी और लौटी बुद्धि के साथ गम्भीरता। हाथो से छूट गए धनुष-वाण।

"करुण वाणी, शुद्ध आत्मा की पुकार ने, हिला दिया मेरा युवक-हृदय। धर्मयुक्त वाणी ने कर्त्तव्य एव राज्यधर्म की साकार कर्त्तव्य-मूर्ति आँखो के सम्मुख खडी कर दी। मै सम्भ्रान्त हो गया। चेतना विलुप्त होने लगी। उदासीनता आई। दीनता आई। शक्ति साथ छोड चली।

"करुणा ने पुकारा। धर्म ने आकर्षित किया मेरे युवक हृदय को। कर्त्तव्य ने पद वढ़ाया। चल पडा सरयू तट की ओर।

"आँखो ने देखा—विखरी जटा मे युवक ऋषि-कुमार। पडी हुई एक पवित्र आहत काया। जलहीन गिरा कलश। धूल एव रक्त से सना तरुण सुन्दर शरीर। शरीर मे विधा हुआ बाण। मृत्यु छाया उन पर पडी थी। वह करुण दृश्य था। वह भयकर दृश्य था। मै त्रस्त हो गया। चेतना लुप्त होने लगी।

"ऋषि के मृत्यु-दर्शन से थकी ऑखे मानव आहट पाकर शनैः-शनै खुली। आँखे घूमी। उनकी कठोर वाणी मुखरित हुई—

"राजन्! वनवासी होकर मैने आपका क्या अपराध किया था? अपने माता-पिता के लिए जल लेने आया था। वाण द्वारा मेरा मर्म-स्थान विदीर्ण कर केवल मेरी हत्या नहीं की है, मेरे उन वृद्ध अन्ध माता-पिता की भी हत्या की है जिन्होंने मुझे जन्म दिया है।

'आह! राजन्! वे अत्यन्त दुर्बल है। अन्धे है। प्यासे है। वे मेरी प्रतीक्षा मे बैठे होगे।

"कहते-कहते श्रवण रो पडे। उनके नेत्रो से अश्रुधारा वह चली। वे भूल गए अपना दुःख। वे भूल गए मृत्यु देवी के आश्रम मे वढती हुई छाया को, घनीभूत होते मानसिक अन्धकार को।

"शोकाकुल मैंने अपना मुँह ढक लिया। जगत् मुझे करुणामय दिखाई देने लगा।

"ओह! माता-पिता! प्यासे होगे। जल की आशा मे बैठे होगे। मेरे शास्त्र-ज्ञान तथा तपस्या का कोई फल नही दिखाई दे रहा है। वे क्या जान सकेगे मैं यहाँ भूमि पर गिरा हूँ। जानकर भी क्या कर सकेगे? वे अशक्त है। वे यहाँ आ भी नहीं सकते। जिस प्रकार गिरे हुए तरु की रक्षा दूसरा तरु नहीं कर सकता उसी प्रकार मेरे माता-पिता मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे।

"मै काँप उठा। कुछ उत्तर न दे सका।

'राजन्!' उस ऋषि कुमार ने कहा: 'आपको भयभीत नहीं होना चाहिए। दावाग्नि क्रुद्ध होकर वन को दग्ध कर देती है, उस प्रकार मेरे पिता-माता आप पर क्रुद्ध न होंगे। आपके शरीर को भस्म नहीं करेंगे।

"मै नीरव था। लज्जा से, मानसिक वेदना से मूक खड़ा था।

'राजन्! मेरे माता-पिता के आश्रम की ओर यह पगडंडी जाती है। वहाँ पहुँचकर पिता की प्रसन्नता प्राप्त कीजिए। वे क्रोधवश न हो सकें। आपको शाप-ग्रस्त न कर सकें। मेरे शरीर से अब अपना बाण निकाल लीजिए। मर्म-स्थान में दारुण कष्ट हो रहा है। तीक्ष्ण बाण द्वारा मेरा शरीर क्लेश से उसी प्रकार फटा जा रहा है, जिस प्रकार नदी का वेग तटवर्ती कोमल वालुकामय करार को काटता छिन्न-भिन्न कर देता है।"

"मैं बाण को निकालने के लिए आगे बढ़ा। किन्तु रुक गया। बुद्धि कह उठी, बाण निकालते ही क्षीण प्राण निकल जाएँगे। मैं बाण निकालने का साहस न कर सका। ऋषि-कुमार का मन अपनी असहाय अवस्था पर दीन हो गया था।

'राघव! आप ही मेरे माता-पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त कहिए।'

"श्रवण के गात्र शीतल हो रहे थे। शक्ति शेष नही रह गई थी। अंगों में शिथिलता शीघ्रतापूर्वक प्रवेश कर रही थी। उनकी आँखें मेरी ओर धीरे-धीरे उठीं।

'राजन्!' श्रवण अपनी शोक-व्यथा को धीरतापूर्वक रोककर बोले—'मैं अपना चित्त स्थिर कर रहा हूँ। ब्रह्महत्या-कृत ताप से सम्भवतः आपका

हृदय कष्ट पा रहा है। आप मानसिक व्यथा का त्याग कीजिए। मैं ब्राह्मण नही हू। आपको ब्रह्म-हत्या का भय नही होना चाहिए।'

"मेरा मन कुछ स्वस्थ होने लगा।

'नराधिप!' श्रवण ने कष्ट से कहा—'मेरी माता शूद्रा है। पिता वैश्य है।'

"कहते-कहते श्रवण का कण्ठावरोध हो गया। उनका शरीर कष्ट से भूमि पर छटपटाने लगा। कभी निश्चेष्ट हो जाता था, कभी भूमि मे लोटने लगता था।

"मैंने धीरे-धीरे श्रवण के मर्म-स्थान से वाण निकाला। वाण निकलते ही निकल पड़ी रुकी हुई रक्त-धारा। श्रवण कुछ त्रस्त हो उठे और निकल गए उनके प्राण-पखेरू।

"हरित आश्रम था। वहाँ बैठे थे दुर्बल, वृद्धावस्था से जर्जरीभूत आश्रय-हीन दो अन्ध प्राणी। वे थे पंखविहीन पक्षियों-तुल्य असहाय। वे परस्पर स्नेह से बातें कर रहे थे। उनके वार्त्तालाप का विषय था, प्रिय पुत्र श्रवण-सम्बन्धी कहानियाँ। पुत्र की वातों में, पुत्र के सुन्दर कार्यों की स्मृति में उनका मन प्रसन्न होकर गद्‌गद् हो जाया करता था।

"उनके आश्रम मे प्रवेश कर रहा था उदास मैं। मेरे स्कन्ध-प्रदेश पर था विमल सरयू का जलपूर्ण कलश।

"श्रवण के माता-पिता की दयनीय अवस्था तथा पुत्र के प्रति उनका स्नेह देखकर मेरा मन विचलित हो गया। शोक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मेरे वढ़ते पदो को दु ख ने रोक लिया। मै भयभीत हो उठा। कैसे बोलूँ! क्या कहूँ! क्या करूँ!

"मानव-पद-शब्द सुनकर वृद्ध प्रसन्न हो गए। पिता बोले—'पुत्र! विलम्व क्यो किया। जल ले आओ। तात! जिस सलिल-क्रीडा मे तुमने इतना विलम्व किया है, उसी सलिल-क्रीडा के कारण तुम्हारी माता तुम्हारे अशुभ की आशंका से उत्कण्ठित हो उठी है। शीघ्र आश्रम में प्रवेश करो।'

"मेरे पद रुक गए। वृद्ध ने अत्यन्त दीन स्वर से कहा.—

'मैंने अथवा तुम्हारी माता ने कोई अपराध किया हो, तो उसे मन में स्थान न देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम तपस्वी हो। हम लोगों की गति हो। हम अन्धों की तुम आँख हो। प्राण तुममे लगे है। तुम बोलते क्यो नहीं, तात!'

"उनकी पवित्र आशा, उनके दैवी वात्सल्य की प्रेम-प्रतिमा मेरे एक ही शब्दोच्चारण द्वारा भग हो जायगी, सोचकर मै अत्यन्त विचलित हो गया। समाचार-प्राप्ति के पश्चात् होने वाले दु.ख, शोक एवं करुणा की प्रतिक्रिया द्वारा उद्भूत उनके शाप के भयंकर रूप की कल्पना मात्र से काँप उठा। भय की भयंकर दृश्यावली से सिहर उठा। मेरी वाणी खुल न सकी।

"मैंने मानसिक विक्षोभ को शान्त किया। भय की वाह्य चेष्टाओं को तिरोहित किया और कण्ठ साफ किया। साहसपूर्वक बोला, 'मुनिवर! आपका तपस्वी पुत्र अन्तिम गति प्राप्त कर चुका है।'

'ओह!'

"वे पागल हो उठे। उन्हें काठ मार गया। वे लगे मेरी ओर अन्धे होकर भी देखने। उनके कपोलों पर वेगवती अश्रुधारा बह चली। वे शोकार्त्त मूर्च्छित हो गए। दीर्घ निश्वास लेने लगे। मैंने कहा:

'महात्मन्! मै क्षत्रिय हूँ। दशरथ हूँ। आपके पुत्र का बधिक हूँ।'

"सिसकियाँ लेते वे विक्षिप्त हो गए। मै शनैः-शनैः सुनाने लगा श्रवण की मृत्यु-कहानी।

"मैंने विनम्रतापूर्वक कहा: 'अज्ञानवश मैंने आपके पुत्र की हत्या की है। आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। आप मुझे आदेश दीजिए।'

"उन तपस्वियों का जीवन-दीप जैसे बुझ गया हो। उनकी श्वास-धारा लम्बी हो गई थी। वे कटे वृक्ष की तरह एक-दूसरे पर गिर पड़े थे। मै नतमस्तक वहाँ खड़ा था।

"वे प्रिय पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर, पुत्र-हन्ता को सम्मुख देखकर भी क्रोधित नही हुए। क्रूर मृत्यु-समाचार तथा हत्यारे के मुख से सुनकर भी उनका मुख शाप के लिए नहीं खुल सका।

"राजन् !" श्रवण के पिता ने कहा 'यदि आप अपना अशुभ कर्म स्वयं यहाँ आकर नही वर्णन करते, तो आपका मस्तक सहस्रो खण्डो में विभक्त हो जाता ।'

"मुझे कुछ शान्ति मिली ।" वे बोले ·

'नरेश्वर ! यदि क्षत्रिय विशेषत. किसी वानप्रस्थाश्रमी का वध करता है, तो वह इन्द्र क्यो न हो, उसे स्थान-च्युत होना पडता है । तपस्या निष्ठ ब्रह्मवादी पर शस्त्र चलाने वाले के मस्तक के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं । धर्म, राजधर्म, बलधर्म एव लौकिक-धर्म आप जानते हैं । अज्ञानवश आपने वह कार्य किया है । अतएव आप जीवित हैं । अन्यथा समस्त रघुकुल नष्ट हो जाता ।'

"मेरा भय दूर होने लगा ।

'नृपवर ! हमे मृत्यु-स्थान पर ले चलिए, जिससे हम अपने पुत्र का अन्तिम स्पर्श कर सकें ।'

.o. .o .o:

"रुधिर एवं धूल में सना सरयू जल से भीगा श्रवण का शरीर जीवन का अन्तिम अध्याय बन्द कर चुका था । भूमि पर पड़ा था । मृगचर्म तथा वस्त्र बिखरे पडे थे ।

"मैंने अन्धे माता-पिता का हाथ पकड कर श्रवण के शरीर का स्पर्श कराया । स्पर्श करते ही दोनो वृद्ध श्रवण के शरीर पर गिर पडे । निर्जन वन उनकी करुण कातर-ध्वनि से विकम्पित हो उठा । मै चुपचाप उनके समीप खडा हो गया । जीवन-हीन काया अनेक विचार-शृङ्खला मन में उत्पन्न करने लगी । मै ससार के एक अत्यन्त करुण दृश्य को देख रहा था ।

'पुत्र !' श्रवण-पिता ने रोते हुए कहा : 'तुम हम लोगो से कुपित क्यो हो ? यदि मै तुम्हे प्रिय नही हूँ, तो अपनी धार्मिक माता की ओर देखो ? सुकुमार ! तुम अपनी माता के हृदय से क्यो नही लग जाते ?'

"पुत्र का मुख चूमते हुए वृद्ध ने कहा . 'रात्रि मे पवित्र शास्त्र-गाथा किसके मुख से सुनूँगा ? स्नान, सन्ध्योपासन तथा अग्नि-होम करने के पश्चात् कौन शोकजर्जर हम लोगो के पास बैठकर हमे प्रसन्न करने की चेष्टा करेगा ? असमर्थ, दीन और अनाथ हमको अतिथि-तुल्य कौन कन्द, मूल,

फल, भोजन-कराएगा ? मैं अन्धा हूँ। वृद्ध हूँ। तुम्हारी तपस्विनी, अन्धी वृद्धा, कृपण माता तुम्हारे लिए उत्कंठित रहने वाली है। मैं उसका भरण-पोषण किस प्रकार कर सकूँगा।'

"मेरा मन उनकी क्रन्दन-ध्वनि से विचलित होने लगा। श्रवण-पिता ने कहा : 'पुत्र, रुको ! यमराज के निवास-स्थान की ओर मत जाओ। हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे। हम शोकार्त्त हैं। हम अनाथ हैं। दीन हैं। तुम्हारी अनुपस्थिति में वन में हम लोग अनायास मर जायेंगे। हम तुम्हारे साथ चलेंगे। धर्मराज से कहेंगे, यह आपके पास रहकर क्या सेवा करेगा ? आप इसको क्षमा कर दें। हमारे पास रहने दें, जिससे माता-पिता की सेवा कर सके। लोकपाल धर्मराज धर्मात्मा हैं। महायशस्वी हैं। वे मेरी आकांक्षित अभयस्वरूप दक्षिणा अवश्य हमें देंगे।'

"कोई प्रत्युत्तर न पाकर वृद्ध की वाणी अनायास ही शिथिल होने लगी। श्रवण नही उठ सका। यमराज ने उनकी पुकार नहीं सुनी।

"हतोत्साह श्रवण के पिता ने पुत्र को सम्बोधित किया : 'पुत्र ! तुम निष्पाप हो। पापकर्मा ने तुम्हे निहत किया है। सत्य के प्रभाव द्वारा तुम युद्ध में वीरगति-प्राप्त योद्धाओं तुल्य पवित्र लोक में स्थान पाओगे। समर में पीठ न दिखाने वाले शूरों की श्रेष्ठगति तुम प्राप्त करोगे। सगर, शिवि, दिलीप, नहुष, धुन्धुमार आदि की गति तुम्हें प्राप्त होगी। तपस्या, स्वाध्याय, भूमिदान, अग्निहोत्र, एकपत्नी-व्रत-धारियों की जो गति होती है, वही तुम्हें प्राप्त होगी। सहस्र गौ-दान, गुरु-सेवा, महा-प्रथान द्वारा देह त्याग करने वालों को जो गति मिलती है, वही तुम्हें मिलेगी। हम तपस्वियों के कुल में जन्म लेनेवाले की गति बुरी नही होती। बुरी गति होगी उसकी, जिसने तुम्हारी हत्या की है।'

"मैंने उन्हे आश्वासन दिया। मेरी सहायता से श्रवण के माता-पिता ने श्रवण को जलांजलि दी।

"अनन्तर श्रवण के पिता ने कहा : 'राजन् ! आज ही आप हमारा वध कर दीजिए। हमे किंचित् मात्र भी कष्ट न होगा। आपने अपने बाण द्वारा मुझे पुत्रहीन बना दिया है।'

"मेरा मुख लज्जा से नत हो गया।

# अनसूया

हरित पर्वतमाला थी। कल-कल निनाद करती मंदाकिनी की मन्द धारा गतिशील थी। सरित-कूल दूर्वादल तथा उत्फुल्ल वन-पादप से आच्छादित थे। मंदाकिनी-उपत्यका अभिरम्यता बटोरे पुष्पित थी। पल्लव-विहीन उज्ज्वल अर्जुन वृक्ष तपोरत ऋषियों की खड़ी ठठरी का ध्यान दिला देते थे। एक पर्वत-शिखर से उड़कर पक्षी दूसरे पर्वत-शिखर पर बैठते हुए जैसे सन्देश-वाहक का कार्य कर रहे थे।

घने वृक्षों की सघन छाया में मध्याह्न की प्रखर सूर्य-किरणे छनकर भूतल पर आने में संकुचित हो रही थी। शिखरों की छाया उपत्यका में पड़कर स्थान को गम्भीर बना रही थी। वह गम्भीरता समन्वित नीरवता किंचित्-भय उत्पन्न कर दिया करती थी।

मंदाकिनी के दक्षिणी तट पर खड़े पर्वतों की उभड़ी शिलाओं पर मधु निकालने वाले बाँस बाँध-बाँध कर रखे थे। उन्हें देखकर कहीं गए हुए संन्यासियों के एकत्र दण्डों की अनायास भावना उत्पन्न हो जाती थी।

स्थान शान्त था। शीतल था। किन्तु परस्पर उलझे बन-पादपों के कारण विकट प्रतीत होता था। एकाकी आना साहस तथा वीरता का परिचायक था।

पवित्र आश्रम था। अत्रि मुनि वहाँ निवास करते थे, अनुसूया के साथ। अत्रि ने देखा, जनपद त्यागकर आते हुए दो कुमारों को। उनके साथ थी एक सौभाग्यवती स्त्री।

महा-यशस्वी राम अत्रि-आश्रम में पहुँचे। अत्रि की वन्दना की। अत्रि ने राम का परिचय प्राप्त कर अतिथि-सत्कार किया। राम ने आश्रम में पाया माता-पिता जैसा प्रेम। पाया मानवोचित व्यवहार।

लक्ष्मण तथा सीता से अत्रि ने प्रीतिपूर्ण सम्भाषण किया। भूत-हित-रत धर्मज्ञ अत्रि ने वृद्धा, तपस्विनी, महाभागा, धर्मचारिणी, पत्नी अनसूया से कहा :

"देवि ! वैदेही का सत्कारपूर्वक आलिंगन करो ।"

राम की पवित्र आँखों ने देखा, महातपस्विनी पवित्र सती अनुसूया को। सीता ने देखी, आर्य-नारी की प्रतिमूर्त्ति । लक्ष्मण ने देखी, अनुसूया के मुखमण्डल पर कर्मठ रेखा । राम की प्रश्नपूर्ण आँखें घूम गईं अत्रि की ओर। अत्रि ने देखी, उन लोचनों में परिचय की आकांक्षा।

"राम !" अत्रि ने स्नेह से कहा—"दस वर्षों तक अनावृष्टि रही। जल का दर्शन नहीं होता था। प्राणी मर रहे थे। लोक दग्ध हो गया था। मानव तथा पशु-कंकालों से भूमि पट गई थी । चारों ओर बिखरा था उज्ज्वल अस्थियों का ढेर।

"पल्लव सूख गये थे। वृक्षों के नीचे सूखे पत्तों के ढेर थे । वायु-वेग में वे उड़ते थे । उनकी खरखराहट की कर्कश ध्वनि कह जाती थी दग्ध-विप्लव की कहानी।

"उस समय अनसूया ने की तपस्या। इनकी उग्र तपस्या द्वारा जलमय मन्दाकिनी प्रवाहित हो गई। भूमि तरल हुई। पादप पल्लवित हुए। लताएँ मुस्कुराईं । पक्षी कलरवशील हुए। ऋषियों की यज्ञ-वेदियों से पवित्र धूम-रेखाएँ ऊर्जस्वित हुईं । देवी ने दस हजार वर्ष तक तपस्या की। ऋषियों के विघ्न तिरोहित हुए। तपस्या द्वारा, वृक्षों में फूल-फल लगे। धान्य से पृथ्वी शोभित हुई। किंचित्-जीवित कंकालों में आ गया जीवन। अस्थि की ढेरियों के स्थान पर अन्न की ढेरियाँ हवि हेतु लग गईं ।

"राम ! अनुसूया की तपस्या उग्र है। उत्तम नियम उसकी शोभा है। पातिव्रत्य उसकी सुरभि है। व्यवहार उसका अलंकार है। कर्म उसकी गति है। उसके व्रत-प्रभाव के कारण ऋषियों के विघ्न दूर हुए हैं। देवकार्य-निमित्त अनसूया ने दस रात्रि को एक रात्रि मानकर व्यतीत किया था। राम ! तुम्हारी माता के समान अनसूया पूज्य है।

राम ने सादर अनसूया को नमस्कार किया ।

"राम ! यह सबकी नमस्कृत्य तपस्विनी है। अक्रोधी है। वृद्धा है। उनके समीप वैदेही को जाना चाहिए।"

"राजपुत्रि !" राम ने धर्मज्ञा सीता की ओर देखकर कहा : "मुनि के वचन तुमने सुने हैं। कल्याण निमित्त तपस्विनी अनसूया के पास शीघ्र

जाओ। अपने सत्कर्मों द्वारा उन्होंने लोक में अनसूया नाम से ख्याति प्राप्ति की है। उनका आश्रय तुम्हें लाभप्रद होगा।"

:o: :o: :o:

मैथिली आई धर्मज्ञा अनसूया के पास। मैथिली की पवित्र आँखों ने देखा शिथिला, वृद्धा, जरा द्वारा सितकेशा अनसूया को। वायु द्वारा कदली-तुल्य अनसूया प्रकम्पित हो जाती थीं। सीता, महाभागा पतिव्रता अनसूया के समीप जाकर बोली :

"देवि! मुझे लोग सीता कहते हैं।"

देवी सीता ने अनसूया को प्रणाम किया। संयमशीला अनसूया के लोचनो की पवित्रता सीता की ओर चली। सीता ने करबद्ध कहा :

"देवि! कुशल से हैं?"

धर्मधारिणी सीता को अनसूया देखकर सान्त्वनामय वचन बोलीं : "धर्म मे तुम्हारा अनुराग देखकर प्रसन्नता होती है। बन्धु-बान्धव का त्याग कर, मानिनी का मान त्यागकर, पति के साथ तुम वन में आई हो। नगर में अथवा वन में, पति शुभ हो अथवा अशुभ, भर्त्ता जिन स्त्रियों को प्रिय होता है, उन्ही को महान् लोकों की प्राप्ति होती है। पति से विशिष्ट बान्धव मुझे कहीं और दिखाई नहीं देता। पति दु:शील, कामुक, निर्धन होने पर भी स्त्रियों का देवता है। पत्नि सर्वत्र योग्य एवं तप का अव्यय फल है। कामाधीना और पति पर अनुशासन रखने वाली स्त्रियाँ अपने पति का अनुकरण नहीं करतीं। वे गुण-दोष को नहीं समझ सकती।"

"मैथिलि! कामी स्त्रियाँ धर्म-भ्रष्ट होती एवं अपयश प्राप्त करती हैं। तुम्हारे समान गुणशीला तथा लोक के उत्तम एवं मध्यम धर्मों को जानने वाली स्त्रियाँ पति की अनुगामिनी तथा पुण्यशीला होकर स्वर्ग प्राप्त करती हैं। सती धर्म का पालन, पति को सर्वस्व तथा उसकी सेवा को अपना धर्म समझ सर्वदा पति का अनुकरण करोगी, तो तुम्हें यश एवं धर्म की प्राप्ति होगी।"

वैदेही मिथिलेशनन्दिनी सती अनसूया के पवित्र वचनों को सुनकर प्रसन्न हुईं। मन्द स्वर से बोलीं :

अनसूया की बातों को सुनकर सीता विस्मित हो गईं। मन्दस्मित के साथ सीता तपोबल-समन्विता अनसूया से बोलीं :

"देवि ! मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपकी वाणी द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तु मुझे प्राप्त हो गई है।"

सीता की निर्लोभ भावना देखकर अनसूया पुलकित हो गईं। प्रसन्नता-पूर्वक बोली :

"सीते ! तुम्हारी निर्लोभ भावना से मैं अत्यन्त प्रभावित हुई हूँ।"

अनसूया सीता को दिव्य माला, वस्त्र, आभूषण, अंगराग, अनुलेपन देकर बोली :

"वैदेहि ! दिव्य मालादि द्वारा तुम्हारे गात्र शोभित होंगे। नित्य प्रयोग करने पर भी निर्विकार तथा निर्दोष रहेंगे। जनकात्मजे !! दिव्य अंगराग से लिप्त होकर तुम अपने पति को उसी प्रकार शोभित करोगी जैसे लक्ष्मी विष्णु का शोभा-वर्धन करती हैं।"

अनसूया द्वारा अंगराग आदि उत्तम प्रीतिदान लेकर सीता ने करबद्ध नमस्कार किया। वे अनसूया के पास बैठी रहीं। दृढ़व्रता अनसूया प्रसन्न होकर बोली :

"यशस्विनि ! मैंने सुना है, राघव ने स्वयंवर से तुम्हें प्राप्त किया है। यह कथा विस्तार से मैं सुनना चाहती हूँ।"

सीता ने अपने जन्म से वन-गमन तक की कुल सुख-दु:खमय कहानी कह सुनाई। सीता की महान् कथा सुनकर धर्मज्ञा अनसूया ने मैथिली का शिर सूँघा। उन्हें प्रगाढ़ आलिंगन में प्रेमपूर्वक ले लिया।

'वैदेहि !" अनसूया गद्‌गद होकर बोलीं : "तुम्हारा भाषण मधुर है। तुम्हारे अक्षर-पद स्पष्ट हैं। तुम्हारी गाथा सुनकर मैं कृतार्थ हुई।"

सीता का मस्तक नत हो गया।

मधुरभाषिणी अनसूया स्नेह से बोली :

"तुम्हारे मधुर स्वर मे जीवन है। शब्दों में लालित्य है। कथन में आकर्षण है। शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण है। तुम्हारी बातों में आनन्द है। प्रवाह है।

वैदेहि ! शुभ रजनी आई। निशा का आह्वान कर रवि प्रस्थान कर गए। चारों ओर आहार-निमित्त गए पक्षिगण लौटे आ रहे हैं।

सन्ध्या भीन रही है। नभचर कलरव से निद्रा का आह्वान कर रहे हैं। वे अपने घोसलो मे छिपने लगे हैं।

देखो, स्नान द्वारा मुनियो के शरीर आर्द्र हैं। उनके वल्कल भीगे हैं। मुनिवृन्द जल-कलश लिए एक साथ जा रहे हैं। महर्षि द्वारा विधिवत् अग्निहोत्र-सम्बन्धी होम सम्पन्न हो चुका है। वायुवेग से आकाशमध्य ऊर्जस्वित यज्ञ-धूम कपोत के श्याम वर्ण तुल्य दिखाई दे रहा है।

"दिशाएँ मुहुर्मुहु : व्याप्त अन्धकार में विलीन हो रही हैं। इन्द्रियो की ज्ञान-सीमा से दूरस्थ तरु-समूह घनीभूत होते दिखाई दे रहे हैं। रजनीचर रजनी के अभिनन्दनार्थ निकल पड़े हैं। मृगादि तपोवन की वेदियों के आस-पास सोने लगे हैं। सीते! नक्षत्रों से निशा अलंकृत हो गई है। गगन मे ज्योत्स्ना का आवरण ओढ़कर शशि का अभ्युदय हो रहा है। तुमने अपनी मधुर कथा से मुझे संतुष्ट किया है। प्रिये! जाओ, रजनी आ गई। मैं कहती हूँ। राम की सेवा मे रत हो।"

सीता का मुख नारी-जन्य लज्जा स लाल हो गया।

"मैथिलि!" अनसूया की वाणी मे स्त्रीजन्य माधुर्य था. "आज तुम मेरे सम्मुख शृंगार करो। तुम दिव्य अलंकार पहनो। माला से सुशोभित हो मुझे प्रसन्न करो। वत्से! आज मैं तुम्हारा प्रसन्न, सलज्ज, अलंकारमय, सुरभित नारी रूप देखना चाहती हूँ।"

सलज्जा सीता सजने लगी। अनसूया के दिव्य अगराग अनुलेपन, अलंकारो एव वस्त्रो मे वह निखर आई देवकन्या-तुल्य। अनसूया पुलकित हो गई। हृदय में उत्साह जैसा, उमंग-जैसा कुछ लहरा उठा। सीता ने अनसूया के चरणों का स्पर्श किया और चल पड़ी।

नारी-रूप मे चली, अलंकृत होकर चली, पति की पवित्र सेवा में।

---

वाल्मीकीय रामायण : अयोध्या काण्ड : सर्ग : ११७–११९

महाभारत : अनुशासन पर्व : १४ · ९५-९८

पुराण · गरुड : २६

शिव कैलास संहिता २ : १९

अब भी चाल है कि युवती स्त्रियाँ शृंगार कर अपने से बड़ी स्त्रियों के दोनों छोरों में अंचल लेकर चरण छूती हैं।

# अरण्य काण्ड

# विराध

दुर्गम दण्डकारण्य नामक वन था । मृग-समूह रिक्ष, तथा शार्दूलों से वन पूर्ण था । वन के लता-गुल्म तथा पादप ध्वस्त हो चुके थे । बल-प्रदर्शनार्थ किसी ने उन्हें झकझोर दिया था । जलाशय का दर्शन दुर्लभ था । पक्षियों के मधुर कलरव की गूंज वहाँ नहीं थी । केवल झींगुरों के कर्ण-कटु शब्द स्थान की भयंकरता बढा रहे थे ।

सीता के साथ राम ने वन में एक नरभक्षी राक्षस देखा । वह गिरि-शृंग तुल्य ऊँचा था और घोर गर्जन कर रहा था ।

राक्षस की आँखे-गहरी थी । मुख बड़ा और विकट था । वह विकटोदर था । बड़ा ही बीभत्स, विषम, दीर्घ, विकृत और घोर-दर्शन था । रक्तार्द्र वसामय व्याघ्र-चर्म पहने था । सबको त्रास पहुँचाने वाला था । वह मुख फैला कर खड़ा था ।

अपने लौह शूल में तीन सिंह, चार व्याघ्र, दो वृक, दस मृग, तथा विशाल दाँत युक्त हाथी का महान् मस्तक गूँथे हुए शूल उछाल-उछाल कर भयंकर गर्जन कर रहा था ।

महाकाल लोक-भक्षण-निमित्त जिस प्रकार दौड़ते हैं, उसी प्रकार विराध राम, लक्ष्मण और सीता की ओर दौड़ा । उसने वैदेही को गोद में उठा लिया और दूर जा खड़ा हुआ । कहने लगा :

"चीरधारण पश्चात् भी स्त्री के साथ निवास ? शर, चाप तथा असि धारण कर दण्डकारण्य में प्रवेश ? तपस्त्री रूप और कर्म यह ?

"प्रतीत होता है । आप लोगों का जीवन क्षीण हो गया है ।"

विराध व्यंग्यपूर्वक पुनः बोला :

"कहिए ! तपस्वियो का स्त्री के साथ वन में निवास किस प्रकार सम्भव होगा ? आप लोग अधार्मिक आचरण वाले है । पापी है । मुनि नाम कलंकित करने वाले आप कौन है ?"

राक्षस के अंक में कदली-पत्र तुल्य सीता काँप रही थी । राम और लक्ष्मण विस्मयापन्न विराध की वात सुन रहे थे ।

"सुनो !" विराध बोला : "मै सायुध, वनचारी, विराध राक्षस हूँ। नित्य ऋषियों का मास भक्षण करता हूँ। वरारोहा यह नारी मेरी भार्या होगी। तुम दोनों का मै युद्ध मे रक्तपान करूँगा।"

दुष्ट दुरात्मा विराध की बाते सुनकर जनकात्मजा सम्भ्रान्त हो उठीं। झंझावात मे प्रकम्पित कदली-तुल्य काँपने लगी। सहसा विराध के अक में सीता को देखकर राम का मुख सूख गया।

"सौम्य !" राम ने शुष्क स्वर में लक्ष्मण से कहा · "राजा जनक की कन्या और शुभाचारी मेरी भार्या विवश विराध की गोद में पड़ी है। सुख मे पालित यशस्विनी राजपुत्री की यह दुरवस्था ? विमाता कैकेयी की इच्छा पूर्ण हुई। उन्होने कष्ट पहुँचाने के निमित्त वर माँगा था। दुख इतने शीघ्रता-पूर्वक आ जाएगा, मैने कल्पना नही की थी। विमाता कैकेयी भरत की राज्य-प्राप्ति से सतुष्ट नही हो सकीं। अयोध्या में हम प्राणियों को प्रिय थे, एतदर्थ हमे वन भेजा गया।

"सौमित्र !" आज मध्यमा विमाता कैकेयी की कामना फलीभूत हुई। वैदेही का स्पर्श मेरी आँखों के सम्मुख दूसरा करे ? मेरी सहनशीलता को यह चुनौती है। पिता की मृत्यु तथा राज्य-ग्रहण से बढ़कर यह दारुण दु:ख है।"

लक्ष्मण क्रोध से लाल हो गए। उनके रोम-रोम से क्रोधानल निकलने लगा। नेत्रों में उष्ण जल था। मन शोक-प्लावित था। क्रोधित नाग-तुल्य श्वास-प्रश्वास ले रहे थे।

"काकुत्स्थ !" लक्ष्मण बोल उठे—"आप क्यो दु:खी होते हैं ? मै जीवित हूँ। मेरे बाणो से विराध लुठित पृथ्वी पर गिरेगा। उसके रक्त से पृथ्वी आर्द्र होगी। भरत पर मेरा जो क्रोध है, आज वह क्रोध राक्षस पर प्रकट होगा।

"जिस प्रकार पर्वत पर इन्द्र अपने वज्र का प्रहार करते हैं, मेरा यह विशाल शर मेरे बाहुओ का वेग प्राप्त कर इसके विशाल शरीर को पृथ्वी पर गिरा देगा।

"बोलो !" विराध चिल्लाया : "मैं जानना चाहता हूँ तुम कौन हो ? कहाँ जाना चाहते हो ?"

विराध के मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं।

राम ने कहा : "हम इक्ष्वाकु-वंशी हैं। क्षत्रिय है। कुलाचार का पालन करने वाले हैं। स्वेच्छाचारी तुमको जानना चाहते है। तुम कौन हो ?"

"राजन् !" विराध बोला : "परिचय देने में मुझे प्रसन्नता होगी। मै जव राक्षस का पुत्र हूँ। माता का नाम शतह्रदा है। राघव ! भूमण्डल के राक्षस मुझे विराध कहते है।"

विराध ने सगर्व कहा : "तपस्या द्वारा ब्रह्मा ने मुझे वर दिया है। किसी भी शस्त्र द्वारा मेरा वध नही किया जा सकता। मेरे अंग-प्रत्यंग का छेदन तथा भेदन नही हो सकता।

"मेरे वध की आशा त्याग दो। स्त्री को छोड़कर शीघ्रतापूर्वक भाग जाओ। अन्यथा जीवन की रक्षा कठिन होगी।"

"क्षुद्र !" आरक्त-लोचन राम पापी विकृतानन विराध से बोले : "तुम्हें धिक्कार है ! तुम्हारा अभिप्राय घृणित है। निश्चय अपनी मृत्यु तुम खोज रहे हो। ठहरो ! जीवित तुम नही लौट सकते।"

राम ने शीघ्रतापूर्वक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। महा-तीक्ष्ण सात वाण विराध पर छोड़े। प्रज्वलित अग्नि-तुल्य तेजस्वी तथा मयूर-पख लगे वाणों से विराध का शरीर विध गया। वाण शरीर को आहत करते हुए रक्तार्द्र पृथ्वी पर गिरे। वाणों द्वारा आहत होने पर विराध ने वैदेही को छोड़ दिया। फिर इन्द्रध्वज-तुल्य शूल लेकर कालस्वरूप विराध राम की ओर दौड़ा। राम मुख विस्फारित किए हुए गर्जनशील विराध पर वाण-वर्षा करने लगे।

विराध ने हँसकर जम्हाई ली। वाण उसके शरीर से निकल कर गिर पडे। उसने प्राण वायु को रोक लिया था। शूल ऊपर उठा वह राम-लक्ष्मण की ओर दौड़ा। शूल आकाश मे वज्र तथा अग्नि के समान प्रज्वलित हो गया। राम ने शल वाणो से काट डाला।

राम-लक्ष्मण ने खड्ग-प्रहार करना आरम्भ किया। खड्ग-प्रहार द्वारा विराध किंचिन्मात्र भी विचलित नही हुआ। उसने राम-लक्ष्मण

को पकड़ लिया और उन्हे उठाए वन की ओर भागना चाहा। उसने दोनों भाइयों को दोनों कन्धों पर उठाकर रख लिया। वह एक गहन वन में जिसका रूप मेघ-घटा तुल्य नीला था लेकर भागा।

सीता दोनो भुजाएँ उठाकर उच्च स्वर से रोदन करने लगी। वे व्याकुल हो गई। उन्होंने राम को पकड़ लिया और उच्च स्वर में बोली :

"राक्षस! ये दाशरथी राम है। सत्यवादी है। शीलवान् है तथा शुचि है। तुम उनको लक्ष्मण के साथ ले जा रहे हो! मै अकेली कैसे रहूँगी? मै रिक्ष, शार्दूल अथवा चीतो की अनायास भोज्य-सामग्री बन जाऊंगी।

"राक्षस श्रेष्ठ!" सीता कातर स्वर से बोली : "मै तुम्हें नमस्कार करती हूँ। मुझे भी तुम अपने साथ ले चलो।"

वैदेही की करुण पुकार ने राम-लक्ष्मण को विचलित कर दिया। उन्होंने विराध-वध का निश्चय कर लिया। विराध का लक्ष्मण ने बायाँ और राम ने दाहिना हाथ तोड दिया। विराध दुःख से कातर हो गया। उसे मूर्च्छा आ गई। वह गिर गया। राम तथा लक्ष्मण मुक्के, हाथ तथा पदों से विराध को मारने लगे। पटक कर पीसने लगे। किन्तु विराध मरा नही।

"लक्ष्मण!" राम ने कहा : "विराध से युद्ध में जीता नही जा सकता। इसे वर प्राप्त है। इसे गाड़ देना चाहिए। तुम इस भयकर राक्षस के लिए एक गड्ढा खोदो।"

लक्ष्मण गड्ढा खोदने लगे। राम ने भूमिष्ठ विराध का गला पैर स दबा लिया। आसन्न-मृत्यु विराध विनयपूर्वक बोला :

"पुरुषव्याघ्र! शक्र-तुल्य बली आपने मेरा वध किया है। मूर्खता के कारण मै आपके बल, शक्ति और स्वयं आपको पहचान नही सका। सच-मुच कौशल्या तुम्हारे जैसा पुत्र पाकर भाग्यशाली माता हुई है, तात!"

"विराध!" राम ने पूछा : "तुमने राक्षसी वृत्ति कैसे ग्रहण की!"

"दाशरथे! मै तुम्बरु नामक गन्धर्व हूँ। मैने कुबेर के शाप द्वारा राक्षस शरीर-प्राप्त किया है। मैं रम्भा पर आसक्त था। एक दिन कुबेर के यहाँ समय पर नही पहुँच सका। कुबेर ने शाप दिया। आप द्वारा मृत्य

पाकर शाप-मुक्त हुआ हूँ। मैं पुनः पूर्वरूप प्राप्त करूँगा और अपने लोक के लिए प्रस्थान करूँगा। आपका कल्याण हो।"

विराध ने पुनः कहा : "राम ! आप मेरे शरीर को गड्ढे में डालकर ढक दीजिए। राक्षसों के लिए यही संस्कार सनातन धर्म है।"

कहते-कहते विराध की इन्द्रियाँ शिथिल होने लगीं।

वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड, : अध्याय २-५
महाभारत : सभापर्व : ५०

# शरभंग

महान् कष्टकर दुर्गम वन था। उस जैसा घोर वन देखा नही गया था। अनसूया-आश्रम कुछ दूर था। उस वन में था [तपोघन पवित्रात्मा शरभंग का आश्रम।

श्रीराम ने पत्नी सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन मे प्रवेश किया। तपस्या द्वारा परिशुद्ध तथा देव-सदृश प्रभा-युक्त तपस्वी शरभंग के आश्रम के निकट श्रीराम का आगमन हुआ। श्रीराम ने महान् अद्भुत दृश्य शरभंग के आश्रम में देखा।

आकाश मे स्थित एक सुन्दर रथ था। रथ वसुधा को स्पर्श नहीं कर रहा था। रथ अधर मे था। रथ मे हरित- वर्ण के अश्व जुते थे। रथ तरुण आदित्य-तुल्य लगता था। रथारूढ़ थे तेजस्वी इन्द्र। उनकी कान्ति सूर्य वैश्वानर-तुल्य प्रभामय थी। उनके साथ थे अनेक देवता। देवताओ के दीप्तिमान् आभरण से ज्योति निकल रही थी। उन्होंने विरजाम्बर धारण किया था।

उन्ही के समान अनेक महात्मागण इन्द्र की पूजा कर रहे थे। चन्द्र-मण्डल तथा पाण्डुवर्ण मेघ-सदृश विमल छत्र चित्र तथा मालाओं से सुशोभित था। रुक्मदण्डीय चामरधारिणी दो वरनारियाँ इन्द्र के शिरोदेश पर व्यजन कर रही थी। अनेक गन्धर्व, सिद्ध, देवता तथा महर्षि अन्तरिक्ष-स्थित इन्द्र की स्तुति कर रहे थे। इन्द्र वार्तालाप में संलग्न थे महर्षि शरभंग के साथ।

राम ने भ्राता लक्ष्मण से अद्भुत रथ की ओर संकेत करते हुए कहा :

'लक्ष्मण ! देखो !! अन्तरिक्ष-स्थित अद्भुत रथ कितना सुन्दर है। उससे तेज प्रस्फुटित हो रहा है। वह सूर्य-सदृश जाज्वल्यमान है। सुन्दरता मूर्तिमान् होकर रथ की सेवा कर रही है। पुरुष-व्याघ्र ! रथ के दोनों पार्श्वों मे कुण्डल-विभूषित खड्गधारी शत-शत युवक खड़े है। उनके वक्षः-स्थल विशाल हैं। भुजाएं परिघा-तुल्य हैं। शोणांशु वसनधारी वे व्याघ्र-

तुल्य दुर्जय प्रतीत हो रहे है । सौमित्र ! उनके वक्ष.स्थल पर अग्नि समान दीप्तिमान् हार शोभित है । उनका वय पचीस वर्ष से अधिक नही है । जनश्रुति है, देवताओ का सर्वदा यही एक वय रहता है । इन पुरुष-व्याघ्रों का दर्शन कितना मुग्धकर है ! लक्ष्मण ! वहाँ विदेहनन्दिनी के साथ जाना ठीक नही होगा । तुम उसके साथ यहाँ ठहरो । मै उस दिव्य पुरुष का पता लगाता हूँ ।"

शरभग आश्रम के निकट श्रीराम टहलते हुए पहुँचे । राम ने सुना, इन्द्र शरभग से कह रहे थे .

"श्रीराम का यहाँ आगमन आसन्न है । मै इस समय दर्शन नही करना चाहता । मै प्रस्थान करूँगा ।"

शरभग चकित हुए । इन्द्र ऋषि का मान कर दिवि लोक के लिए प्रस्थित हुए । अनन्तर सीता तथा लक्ष्मण के साथ श्रीराम ने शरभग आश्रम मे प्रवेश किया । तपस्वी उस समय अग्निहोत्र के समीप आसीन थे

श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण ने तपस्वी का पाद-स्पर्श किया और शरभग की आज्ञा पाकर बैठ गए । मुनि ने आश्रम-निवास निमित्त आमन्त्रित किया । स्वस्थ होने पर श्रीराम ने पूछा .

"महात्मन् ! इन्द्र के आगमन का क्या कारण था ?"

"राम ! इन्द्र मुझे ब्रह्म-लोक मे ले जाने के इच्छुक थे । उग्र तपस्या द्वारा मैने उस लोक की प्राप्ति की है । अकृतात्मा व्यक्ति के लिए वह लोक दुष्प्राप्य है । मुझे ज्ञात हुआ कि, आप जैसे अतिथि का आगमन यहाँ होगा । मैने अतिथि के आतिथ्य की भावना तथा दर्शन-कामना से यात्रा स्थगित कर दी ।

"नरव्याघ्र ! आप-जैसे धार्मिक महात्मा का समागम प्राप्त कर मै दिवि तथा उससे ऊपर परम-ब्रह्म लोक को जाऊँगा । नरशार्दूल ! मैने जिन शुभ लोकों को प्राप्त किया है, उन्हें आप ग्रहण कीजिए ।"

"महामुने !" राम ने कहा : "इस समय आपके कानन मे केवल आवास की इच्छा है ।"

"राम !" शरभंग ने कहा · "कुछ दूर पर महातेजस्वी धार्मिक सुतीक्ष्ण निवास करते है । वे आपका विधिवत् प्रबन्ध कर देगे । आप कृपया इस

रमणीय वन के उस स्थान पर पधारिए । आप इस पवित्र स्रोतस्विनी मन्दाकिनी की धारा की उलटी दिशा मे चले जाइए । आप उस पवित्र आश्रम मे पहुँच जायँगे ।"

राम मुनि के तेजस्वी स्वरूप तथा उनकी स्पष्ट वाणी से प्रभावित हो रहे थे । शरभग ने तुरत कहा :

"नरव्याघ्र ! मुहूर्त्त मात्र आप ठहरिए । मै अपने जीर्ण गात्र का त्याग करना चाहता हूँ ।"

राम विस्मयापन्न हो गए । शरभंग मुनि ने विधिवत् मन्त्रो द्वारा अग्नि की स्थापना की । मन्त्रो द्वारा घी की आहुति दी । पवित्र अग्नि प्रज्वलित हुई :

प्रसन्न-वदन मुनि शरभग राम, सीता और लक्ष्मण के सम्मुख अग्नि-ज्वाला मे प्रवेश कर गए । शरभग के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, अस्थि, मांस, शोणित को अग्निदेव ने भस्म कर दिया ।

उनकी पार्थिव काया अग्निज्वाला मे लोप हो गई । परन्तु ज्वाला से उद्भूत हुआ एक कुमार । अग्निशिखा से ऊपर अन्तरिक्ष मे कुमार सुशोभित हो गया । उसने अग्निहोत्रियों, महात्माओ, देवताओ के लोकों का अतिक्रमण करते हुए ब्रह्मलोक की ओर गमन किया ।

---

वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड, सर्ग ४—६
महाभारत . वनपर्व ९०—६—२७७ : ४०—४१

नोट : स्वय शरीर त्यागने की प्रथा प्राचीन है । ऋषि लोग जीवितावस्था में समाधि ले लेते थे । अग्नि में जीवित अपने को भस्म कर प्राण त्याग देना भी साधारण बात थी । सिकन्दर के साथ जानेवाला एक भारतीय ईरान में पहुँचने पर ज्वरग्रस्त हो गया । वह उसकी सर्वप्रथम बीमारी थी । उसने शरीर में दोष का प्रवेश होते देख कर स्वयं चितारोहण कर प्राण त्याग दिया । विदेशी पर्यटकों ने कई जगह उल्लेख किया है कि साधु हँसते-हँसते शरीर अग्नि में त्याग देते थे । उसे वे एक परिवर्तन मात्र मानते थे । उन्हें किंचित् मात्र इस प्रकार अपने शरीर का अग्निदाह करने मे क्लेश, दु ख किंवा कष्ट का अनुभव न होता था । वे जीवन-क्रिया का इसे एक अग मानते थे, उनका दृढ़ निश्चय होता था कि शरीर त्याग कर दूसरा शरीर धारण किया जाता है अथवा अन्य लोकों की प्राप्ति होती है । विदेशियों ने लिखा है कि भारत के इन साधुओं को समझाना तथा तर्क करना व्यर्थ होता है । वे इस विषय में जैसे अन्ध-विश्वासी होते हैं । शरीर को वस्त्र समझते हैं । जीर्ण वस्त्र तुल्य उसे फेक देना सृष्टि-प्रक्रिया का एक अग मानते हैं ।

# एक सत्यवादी तपस्वी

पवित्र आश्रम था। चतुर्दिक् शान्ति थी। विकार-विहीन वातावरण था। तपस्वी की पवित्रता आश्रम को पवित्र बना चुकी थी। पशु-पक्षी, तरु-पल्लव हिंसा-भाव-हीन थे। आश्रम से भय, द्वेष, मत्सर तथा अहंकार विदा हो चुके थे। उनका स्थान प्रेम, करुणा, अहिंसा तथा पवित्रता नें ले लिया था।

। जनपद से दूर, मानवीय संकल्प-विकल्प से दूर, तपस्वी आत्मरत थे। वे शान्ति के उपासक थे। अहिंसा उनकी श्वास-निश्वास-गति की सहचरी हो गई थी।

शचीपति इन्द्र का सिंहासन डोला। तपस्या मे विघ्न डालने का विचार किया। आए आश्रम में भट रूप धारण कर। उनके हाथ में खड्ग था। उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया :

"तपस्वी ! अकिंचन का प्रणाम स्वीकार कीजिए।"

तपस्वी की स्थिर, गम्भीर, शान्त दृष्टि योद्धा इन्द्र पर पड़ी। सम्मुख देखा खड्गधारी योद्धा। इन्द्र मुनि की शान्त मुद्रा देखकर कुछ गम्भीरता-पूर्वक बोले :

"मुनिवर ! मेरा एक प्रयोजन है।"

मुनि के पवित्र नेत्रों में जिज्ञासा थी।

"मुझे एक आवश्यक काम है। खड्ग यदि न्यास, स्वरूप आप रख लें तो महान् कृपा होगी।"

तपस्वी ने खड्ग की ओर देखा।

"अनुगृहीत हूँगा।" इन्द्र ने दीन वाणी से कहा।

"खड्ग" मुनि ने पुनः खड्ग की ओर देखा।

"भगवन् ! मैं शीघ्र ही आकर ले जाऊँगा। आप इसे थाती-स्वरूप अपने पास रख लीजिए।"

मुनि ने स्वीकृति का संकेत किया। इन्द्र ने खड्ग तपस्वी के सम्मुख रख दिया। इन्द्र प्रत्यावर्तित हुए। उनके अधरों पर कुटिल मुस्कान थी।

० ० ०

खड्ग हो गई एक समस्या। तपस्वी ने वचन दिया था। न्यास-स्वरूप खड्ग मुनि का बन्धन हो गया। खो जाने के भय से वे सर्वदा उसे पास रखते थे।

खड्ग का स्वामी लौटा नहीं। मुनि फल-फूलादि जहाँ लेने जाते उसे साथ रखते थे। रात-दिन खड्ग के साथ रहने के कारण उसके प्रति उनकी प्रीति उत्पन्न हो गई। तपस्या के स्थान पर खड्ग की बात लगे विचारने।

समय बीतता गया।

.०: ·० :०:

खड्गधारी मुनि की इच्छा अनायास खड्ग चलाने की हुई। आमोद में घुमा लिया करते थे। उसका प्रयोग उन्हें अच्छा लगने लगा।

समय गम्भीर होने लगा।

·०: .०· .०:

लता-द्रुम पर खड्ग का प्रयोग अनायास मुनि कर दिया करते थे। अनजाने प्रयोग द्वारा मुनि की आत्मिक शक्ति मे अनजाने ह्रास होने लगा। पल्लव, पादप के प्रति अहिंसा भावना लुप्त हो गई। मन-बहलाव के लिए फल, फूल, पल्लव, पादप काटने लगे। उन्हे काटने मे, उन्हे नष्ट करने मे, शनैः-शनैः मुनि की कोमल भावनाएँ नष्ट होने लगी।

समय मुस्कुराया।

०· :०. ०·

तपस्वी तपस्या-विरत होने लगे। तप से क्या लाभ? खड्ग पर उनका हो गया भरोसा। आत्म-विश्वास खो दिया। विवेक के स्थान पर खड्ग हो गया उनका साथी। उनकी प्रवृत्ति मे हिंसा को स्थान मिलने लगा।

क्रूरता ने प्रवेश किया। तपस्वी का ज्ञान-भण्डार नष्ट हो गया। दैवी भावनाओं के स्थान पर आसुरी भावनाएँ उत्पन्न हो गईं। हत्या में, खड्ग-प्रयोग में आने लगा पाशविक आनन्द।

समय अट्टहास कर उठा।

:o: :o: :o:

शस्त्र-संयोग से मुनि हो गए क्रूरकर्मा।

धर्म ने साथ त्याग दिया। हो गए प्रमत्त।

समय चला अन्धकार की ओर।

:o: :o: :o:

आश्रम बदल गया। तपस्वी हो गया हत्यारा। कभी के मित्र पशु-पक्षी हो गए शत्रु। तपस्वी का अग्निहोत्र, तप, कर्म, ज्ञान, धर्म सब कुछ सिमट गया।

इन्द्र तपस्वी के पतन पर हुए प्रसन्न। तपस्वी वेग से बढ चले नरक की ओर।

समय लोप हो गया अन्धकार में।

-----

** वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड ; ९।

# वातापि और इल्वल

वातापि और इल्वल दो राक्षस थे। दोनों सगे भाई थे। दुष्ट थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करता था। सस्कृत मे भाषण करता था। श्राद्ध मे भोजन निमित्त ब्राह्मणों को निमन्त्रित करता था। वातापि मेष बन जाता था। मेष रूपी वातापि का वध कर इल्वल श्राद्ध भोजन निमित्त मांस वनाता था। श्राद्ध में निमंत्रित ब्राह्मणों को मांस भोजन कराता था।

ब्राह्मण भोजन समाप्त कर बैठते थे। इल्वल उच्च स्वर से पुकारता : "वातापे! निकल आओ।"

भाई का आह्वान सुनकर ब्राह्मणों के उदर मे मांस-स्वरूप स्थित वातापि भेड़ा के समान 'मे-मे' बोलता उदर फाडकर वाहर निकल आता था। इच्छानुसार रूपधारी मासभक्षी वातापि और इल्वल ने इस प्रकार अगणित ब्राह्मणों की हत्या कर डाली थी।

राक्षसों का उत्पात बढ गया। देवता तथा ब्राह्मण व्याकुल हो गए। उन्होंने अगस्त्य ऋषि से रक्षा तथा दुष्ट राक्षसो के परिहार निमित्त प्रार्थना की।

ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन न करे। अत यह काम एक वर्ग महापात्र ब्राह्मण को दिया गया। जिससे शेष ब्राह्मणो की रक्षा हो जाय।

अगस्त्य मुनि ने राक्षसो से मुक्ति दिलाने का वचन दिया। वे स्वयं ब्राह्मण-स्वरूप बन गए। इल्वल ने उन्हे भोजन निमित्त निमत्रित किया।

वातापि मेष वना। उसे मारकर इल्वल ने मांस भोजन वनाया। अगस्त्य मुनि को परोसा। अगस्त्य ने पूर्ण भोजन किया।

श्राद्ध-कर्म समाप्त हुआ। अगस्त्य मुनि भोजन समाप्त कर हाथ धोने लगे। इल्वल ने परिहासमय उच्च स्वर से पुकारा—"वातापे! निकल आ।"

इल्वल पुकारता रहा। विस्मित हुआ। वातापि पेट फाड़कर निकला नहीं। इल्वल घबराया। अगस्त्य मुनि हँसने लगे। इल्वल और चकित

हुआ। उसकी समझ में बात नहीं आई। अगस्त्य ने संतोषपूर्वक अपने पेट पर हाथ फेरते हुए इल्वल से कहा :

"इल्वल ! तुम चकित हो रहे हो। मेरे पेट में तुम्हारा अन्न, श्राद्ध-भोजन तथा साथ में तुम्हारा भाई भी पच गया। वह सीधा यमलोक पहुँच चुका है। मित्रवर ! जगत् में सहोदर भाई दुर्लभ है। दुःख है, वह तुम्हें मिल न सकेगा।"

भाई की मृत्यु सुनकर इल्वल क्रोधित हो गया। प्रहार निमित्त अगस्त्य पर दौड़ा। उसने मुनि पर प्रहार किया।

अगस्त्य की आँखें राक्षस की ओर उठी। अग्नि-ज्वाला नेत्रों से प्रस्फुटित हुई। उस ज्वाला में देखते-देखते इल्वल भस्म हो गया।

---

वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड : ११

महाभारत : वनपर्व ९४९, ९६ . १-१३

९९: १३, १६, ११, ३९

पुराण : भागवत ६-१८

ब्रह्माण्ड ३ : ६ : १८-२३

यह कथा महाभारत में बढ़ाकर दी गई है।

# जटायु

पंचवटी मार्ग। राम को महाकाय भीम समान एक गृद्ध मिला। वह भयकर पराक्रमी था। विशाल पक्षी देखकर राम ने उसे राक्षस समझा। वे गृद्ध के समीप पहुँचे।

"आप कौन है ?" राम ने कौतूहलपूर्वक पूछा।

"वत्स!" अत्यन्त मधुर एव सौम्य वाणी मे गृद्ध ने कहा "तुम्हारे पिता का आत्मीय हूँ।"

पितृ-सखा सुनकर राम-लक्ष्मण प्रसन्न हो गए। उन्होने उसकी पूजा की। उससे शान्तिपूर्वक पूछा

"आपका नाम, गोत्र, परिचय क्या हम जान सकते है ?"

राम की जिज्ञासा जटायु के लिए सुखप्रद हुई। उसने अपना परिचय दिया। साथ ही प्राणियो की उत्पत्ति का क्रम बताना आरम्भ किया।

"महाबाहो! मेरा नाम जटायु है। पूर्वकाल मे अनेक प्रजापति हो गए है। क्रम से उनका वर्णन करता हूँ।

"राघव! सर्व प्रथम प्रजापति कर्दम हुए। तदनन्तर द्वितीय प्रजापति विकृत हुए। तृतीय प्रजापति का नाम शेप था। चतुर्थ प्रजापति सश्रय थे। पचम प्रजापति वीर्यवान् वहुपुत्र हुए। षष्ठ प्रजापति स्थाणु, सप्तम मरीचि, अष्टम अत्रि, नवम महाबली क्रतु, दशम पुलस्त्य, एकादश अंगिरा, द्वादश प्रचेता अर्थात् वरुण, त्रयोदश पुलह, चतुर्दश दक्ष, पचदश विवस्वान्, षोडश अरिष्टनेमि तथा अन्तिम सप्तदश प्रजापति कश्यप हुए है।

"राम! दक्ष प्रजापति की यशस्विनी विश्रुत कन्याओ की सख्या साठ थी। साठ कन्याओ मे आठ—अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोध-वशा, मनु तथा अनला थी। ये सब प्रजापति कश्यप की पत्नी हुई।

"कन्याओ का पाणिग्रहण कश्यप ने किया। उनसे कहा "त्रैलोक्य का भरण करने वाले, मेरे समान तुम्हारे तेजस्वी पुत्र होगे।"

"अदिति, दिति, दनु और कालका ने कश्यप के कथन को शिरोधार्य किया। किन्तु ताम्रा, क्रोधवशा, दनु एवं अनला ने कश्यप की बातों पर ध्यान नहीं दिया।

"अदिति के गर्भ से तैंतीस देवताओं ने जन्म लिया। उनमे बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, और दो अश्विनीकुमार थे।

"दिति ने यशस्वी दैत्यों को जन्म दिया। पूर्वकाल मे पृथ्वी के वे ही राजा थे।

"दनु ने अश्वग्रीव और कालका ने नरक और कालक नामक दो पुत्र-रत्न उत्पन्न किए।

"ताम्रा ने क्रौंची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी नाम की लोक-विश्रुत पाँच कन्याएँ उत्पन्न की। क्रौंची द्वारा उलूक उत्पन्न हुआ। भासी ने भास नामक पक्षियों को जन्म दिया। श्येनी ने तेजस्वी गृद्ध एव श्येन को जन्म दिया। धृतराष्ट्री ने हसों तथा कलहंसो को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्री चक्रवाकों की भी माता हुई।

"ताम्रा की कनिष्ठ कन्या शुकी थी। शुकी की कन्या नता हुई। नता की कन्या विनता हुई।

"राम! क्रोधवशा ने दस कन्याओं को जन्म दिया। वे है . मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सर्वलक्षणयुक्त सुरसा और कद्रू।

"नरश्रेष्ठ! मृगी की सन्ताने मृग हुए। मृगमन्दा की सन्ताने ऋक्ष, सृमर अर्थात् वनगाय तथा चामर गाएँ हुईं।

"भद्रमदा की कन्या इरावती हुई। इरावती से महागज ऐरावत हुआ।

"हरी के पुत्र सिह और तपस्वी वानर गोलागूल (लंगूर) है।

"क्रोधवशा की पुत्री शार्दूली से व्याघ्र ने जन्म लिया।

"मनुजर्षभ! मातगी की सताने मातग अर्थात् हाथी हुए।

"काकुत्स्थ! श्वेता ने दिग्गजो को जन्म दिया।

"राम ! रोहिणी और यशस्विनी गन्धर्वी नामक कन्याओं को देवी सुरभि ने उत्पन्न किया । रोहिणी ने गायो को उत्पन्न किया । गन्धर्वों ने घोडों को जन्म दिया ।

"नरपुगव ! सुरसा ने नागो और कद्रू ने पन्नगो को उत्पन्न किया ।

"महात्मा कश्यप की पत्नी मनु ने चतुर्वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मानवो को जन्म दिया । मुख से ब्राह्मण, हृदय से क्षत्रिय, उरुओ से वैश्य और पाद से शूद्रो की उत्पत्ति की बात कही जाती है ।

"पुण्य फलदायक सब वृक्षो को अनला ने उत्पन्न किया । कश्यप की पत्नी ताम्रा द्वारा शुकी कन्या थी । शुकी की पुत्री विनता थी । कद्रू सुरसा की बहन विख्यात है । कद्रू ने पृथ्वी को धारण करने वाले एक सहस्र नागो को उत्पन्न किया । विनता को दो पुत्र गरुड़ तथा अरुण हुए । मैं विनतानन्दन अरुण का पुत्र जटायु हूँ । मेरा कुल श्येनी का है । ज्येष्ठ भ्राता का नाम सम्पाति है ।

"राघव ! मै मित्र हूँ । सहायक हूँ । मै सीता की रक्षा करूँगा ।"

राम ने जटायु की प्रतिपूजा की । प्रसन्नतापूर्वक उनका अभिवादन और आलिंगन किया ।

---

वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड : १४

पुराणों में कश्यप की १३ पत्नियों का वर्णन है परन्तु वाल्मीकि रामायण मे केवल ८ का वर्णन मिलता है ।

# शूर्पणखा

नाग जाति की नगरी थी। नाम था भोगवती। वह रसातल में थी। राजा था वासुकि। वहाँ पराक्रमी रावण पहुँचा। उसने नाग जाति पर आक्रमण किया। नाग जाति पराजित हुई।

रावण निवातकवचों की नगरी मणिमयी पुरी में आया। दैत्यों ने वरदान पाया था। वहाँ निवास करते थे। निवातकवचों तथा रावण में घोर युद्ध हुआ। संघर्ष एक वर्ष से अधिक चलता रहा। यथावत् स्थिति बनी रही। रावण विजयी नही हुआ। किन्तु वह पराजित होकर लौटना नहीं चाहता था।

पितामह ब्रह्मा का उत्तम विमान पर शीघ्रतापूर्वक आगमन हुआ। उन्होंने निवातकवचों तथा रावण में मध्यस्थता की। वृद्ध पितामह ने कहा :

"दानव ! सुर-असुरों की सम्मिलित शक्ति रावण को नहीं पराजित कर सकती। समस्त सुर-असुर तुम लोगों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। तुम्हें मैत्री-सूत्र में बँध जाना चाहिए।"

वृद्ध पितामह ब्रह्मा का अर्थयुक्त प्रस्ताव दोनों पक्षों ने मान लिया। राक्षसेन्द्र रावण और निवातकवचों ने अग्नि को साक्षी माना और मैत्रीसूत्र में बँध गए।

रावण ने निवातकवचों के देश में वर्ष भर निवास किया। तत्पश्चात् मैत्री-स्वरूप एक शत निवातकवचों को साथ लिया। विजय-यात्रा निमित्त निकल पड़ा। उसने निवातकवचों के नगर में एक सौ प्रकार की माया का ज्ञान प्राप्त किया।

रावण रसातल में सलिलेन्द्र पुरी का पता लगाता भ्रमण करने लगा। अकस्मात् अश्म नगर में पहुँचा। अश्मनगर में बली कालकेय निवास करते थे। वह बलशाली कालकेयों को त्रस्त करने लगा।

शूर्पणखा का पति विद्युज्जिह्व था। रावण का वहनोई था। उत्कट वलशाली था। रावण से उसका सघर्ष हुआ। रावण ने निस्सकोच विद्युज्जिह्व की हत्या कर दी। अपनी वहन को विधवा वनाने मे उसे हिचक नही हुई।

दो मुहूर्त्त मे उसने चार सौ दैत्यो पर विजय प्राप्त की। उन्हे मार डाला। उसने वहाँ पाण्डुमेघ वर्ण कैलास-तुल्य भास्कर वरुणालय देखा। वहाँ सुरभि-नामक गाय थी। उसके स्तन से दुग्धधारा प्रस्रवित थी। उसने सुरभि की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् महा घोर विविध वलो से सुरक्षित वरुणालय मे प्रवेश किया। वरुण-पक्ष के रक्षको ने रावण पर आक्रमण किया। रावण द्वारा वरुण के योद्धा आहत हो गए।

"योद्धागण!" रावण ने कहा "वरुण को मेरे आगमन की सूचना दो। उनसे कहिए राजन्! रावण युद्धार्थी है। युद्ध किंवा पराजय दो विकल्प है। उनमे एक को स्वीकार करना होगा।"

रावण की वात समाप्त नही हुई थी। उसने देखा, महात्मा वरुण के पुत्र तथा पौत्र सक्रोध गौ तथा पुष्कर सेनापतियो के साथ आ रहे है। वे इच्छागामी रथारूढ थे। उदयशील भास्कर-तुल्य तेजस्वी थे। वे सैनिकों से घिरे थे।

रावण तथा वरुण-पुत्रादि का रोमहर्षण सग्राम आरम्भ हो गया। दशग्रीव के मन्त्रियो ने क्षण मात्र मे वरुण-सेना को पराजित कर दिया। वाणो से वरुण-पुत्रो को आच्छादित कर दिया। आहत होकर वे युद्ध-विमुख हो गए।

रावण पुष्पक विमान पर बैठा था। वरुण-पुत्र शीघ्रगामी रथो द्वारा आकाशगामी हुए। आकाशीय युद्ध आरम्भ हो गया। रावण युद्ध-विमुख हुआ। वरुण-पुत्रो ने सिहनाद किया।

रावण को तिरस्कृत होते महोदर ने देखा। उसे अत्यन्त क्रोध हुआ। वायु-गति गामी वरुण पुत्रो के अश्वो पर महोदर ने गदा-प्रहार किया। अश्व धराशायी हो गए।

वरुण-पुत्रो ने रथ त्याग दिया। वे आकाश में अपनी शक्ति से दण्डायमान हो गए। उन्होने महोदर को क्षत-विक्षत किया। रावण को घेर लिया। किन्तु रावण का वाण-प्रहार असह्य हुआ। वरुण-पुत्र पृथ्वी पर गिर पडे। उनके भृत्य उन्हे उठाकर प्रासाद में ले गए।

"सेवको!" रावण ने गर्जन कर कहा . "वरुण से कहो, स्वय युद्ध निमित्त वाहर निकले।"

"राक्षसेन्द्र!" वरुण के मन्त्री प्रभास ने कहा : "जलेश्वर महाराज वरुण ब्रह्मालोक गए है।"

"क्यों?" विस्मयापन्न रावण ने पूछा।

"सगीत सुनने।"

"मै युद्धार्थी हूँ!" रावण ने सिंहनाद किया।

"वीरवर!" प्रभास ने कहा "आपका परिश्रम व्यर्थ होगा। वरुण यहाँ नहीं है। पुत्रों को आपने पराजित कर दिया है।"

रावण ने अपनी विजय की घोषणा की। वह हर्षोन्मत्त वरुणालय से प्रत्यावर्तित हुआ।

:o: :o: :o:

विजयोन्मत्त रावण ने लका मे प्रवेश किया। राक्षसो ने उनका सत्कार किया। उत्साह लंका की गलियों में हँस रहा था। किन्तु यदि कोई दु खी था, शोकार्त्त था, तो वह थी शूर्पणखा। शूर्पणखा सहसा भाई रावण के चरणों पर गिर पड़ी। रावण के चरण उसके आँसुओं से तरल हो गए। रावण स्तम्भित हुआ। रुक गया। उत्साह पर धक्का लगा। लोगो की दृष्टि शूर्पणखा पर आकर्षित हो गई।

"भद्रे!" चकित रावण ने शूर्पणखा की ओर देखा।

"राजन्!" अश्रुपूर्ण नेत्रो से शूर्पणखा बोली : "आपने मुझ विधवा वना दिया है। आपने वीर्यवान् चौदह सहस्र कालकेय दैत्यों की हत्या की है। उनमें महावली मेरा भर्त्ता भी था। आप भाई है। आपने उसे अपना शत्रु समझा। उसका वध कर दिया।

"आप भाई हैं। मुझ वहन की हत्या की है। राजन्! आपके कारण मुझे वधव्य प्राप्त हुआ है। क्या समरागण मे जामाता की रक्षा नही की जाती? आपको उसे निहत करते हुए लज्जा नही आई?"

"वत्से!" रावण ने रोती हुई भगिनी से स्नेहपूर्वक कहा . "रोना व्यर्थ है। भय-विह्वल नही होना चाहिए। वे सभी सुख तुम्हे प्राप्त होगे, जो होने चाहिए। दान, पान एव प्रसाधनो द्वारा मै तुम्हें यत्नपूर्वक तोषित करूँगा। मै युद्ध मे जयाकांक्षी था। विक्षिप्त था। युद्ध रत था। वाण चला रहा था। युद्ध मे अपना-पराया कोई नही होता। शत्रुपक्षीय कोई भी हो, हमारा घोर शत्रु मात्र रहता है। वह रणागण मे जामाता नही, शत्रु था। शत्रु-स्वरूप उसने मेरे हाथो मृत्यु प्राप्त की है।"

शूर्पणखा का विलाप बढ गया।

"भगिनि!" रावण संतोषप्रद मधुर स्वर मे बोला : "तुम्हारा भाई खर है। ऐश्वर्य-युक्त है। मौसेरा भाई है। धनी है। उसके साथ तुम निवास करो। वह चौदह सहस्र सेना का अध्यक्ष होगा। सेना का तुम्हारे इच्छानुसार उपयोग करेगा। तुम्हारी आज्ञा का पालन करता रहेगा। दण्डकारण्य की रक्षा करेगा। अति शीघ्र तुम्हारे साथ प्रस्थान करेगा। उसके साथ महाबली वलाध्यक्ष दूषण जाएगा। वे तुम्हारी सेवा और आज्ञा मे सर्वदा तत्पर रहेगे।"

खर ने सेना तथा शूर्पणखा के साथ यथासमय दण्डकारण्य के लिए प्रस्थान किया।

:o: :o: :o:

गोदावरी-तट पर श्रीराम का आश्रम था। पर्णकुटी थी। स्नान कर राम, लक्ष्मण और सीता कुटी में बैठे थे। श्रीराम विविध कथा कह रहे थे। देवी सीता तथा लक्ष्मण ध्यान से सुन रहे थे। अकस्मात् वहाँ राक्षसी शूर्पणखा आ गई।

शूर्पणखा की आँखो ने देखी सुन्दर पुरुष-मूर्ति। दिव्य शरीर मानव श्रीराम का रूप बैठने लगा नारी की आँखो में। काम-तृषित आँखो मे

समाने लगी राम की दीप्त कान्ति, पुष्ट महाबाहु, पद्मलोचन, गजविक्रान्त-गति और शिर पर स्थित जटा-मण्डल ।

राम का यौवन-जन्य सुकुमारत्व, उनका महाबल, राजोचित लक्षण, इन्दीवर-श्याम वर्ण, कन्दर्प-तुल्य प्रभा, इन्द्र-सदृश तेजस्वी रूप देखकर शूर्पणखा काम-मोहित हो गई । नारी-जन्य दुर्बलता मे उसने अनुभव किया सबल काम-वेग का ।

राम सुमुख थे, शूर्पणखा दुर्मुख थी । राम क्षीणकटि थे, वह महोदरी थी । राम विशालाक्ष थे, वह विरूपाक्षी थी । राम के केश सुन्दर थे, वह ताम्रवर्ण केश वाली थी । राम का रूप प्रिय था, वह विरूपा थी । राम का स्वर मधुर था, उसका स्वर भैरव गर्जन था । राम तरुण थे, वह दारुण वृद्धा थी । राम दक्षिणभाषी थे, वह वामभाषिणी थी । राम न्यायवृत्त थे, वह दुर्वृत्त थी । राम प्रियदर्शी थे, वह अप्रियदर्शना थी ।

कामाविष्टा शूर्पणखा राम के समीप आई । राम से बोली : "जटा एवं तापस वेष में, भार्या सहित, शर-चाप लिए हुए, राक्षस-सेवित इस देश में आपके आगमन का क्या प्रयोजन है ?"

राम ने कहा : "त्रिदश-विक्रम दशरथ नामक राजा का मै अग्रज पुत्र हूँ । लोग मुझे राम कहते है । यह मेरे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण है । यह मेरी भार्या वैदेही है । इनको लोग सीता कहते हैं । पिता की आज्ञा एवं माता की प्रेरणा द्वारा धर्मार्थि एवं धर्माकांक्षी रूप से हमारा वन मे आगमन हुआ है ।"

माया-रूपधारिणी शूर्पणखा के मुख-मण्डल पर काम-छाया गम्भीर होने लगी । वह राम के सौन्दर्य का पान कर रही थी ।

"मनोहरांगि !" राम ने कहा : "तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम कहाँ से आई हो ? इच्छारूप-धारिणी तुम राक्षसी प्रतीत होती हो । तत्त्वत. कहो, किस निमित्त तुम्हारा आगमन हुआ है ?"

"राम!" मदनार्दिता शूर्पणखा बोली : "मै तत्त्व की बात कहती हूँ । मेरी बात सुनिए । मैं कामरूपिणी शूर्पणखा राक्षसी हूँ । मै इस भयंकर अरण्य में एकाकी विचरण करती हूँ । आपने मेरे भ्राता रावण का नाम

सुना होगा। रावण की भगिनी हूँ। आपने सुना होगा, रावण विश्रवा मुनि का वीर पुत्र है। प्रवृद्ध निद्रावान् महाबली कुम्भकर्ण का नाम आपने सुना होगा। वह मेरा दूसरा भाई है। विभीषण धर्मात्मा है। उसकी चेष्टा राक्षसो जैसी नही है। उसका भी नाम आपने सुना होगा। वह मेरा तीसरा भाई है। प्रख्यात वीर खर और दूषण मेरे भाई है। मै उन सबकी बडी बहन हूँ। मै उनके समान ही बली हूँ।"

राम की मुद्रा गम्भीर हो गई।

"राम!" कामातुर शूर्पणखा बोली "प्रथम दर्शन मे ही अपना मन खो चुकी हूँ। पुरुषोत्तम! मै तुममे भर्त्ता का भाव रखती हूँ। मै प्रभाव-सम्पन्ना हूँ। स्वच्छन्द बलगामिनी हूँ। चिरकाल निमित्त भर्त्ता बन जाइए। सीता को लेकर आप क्या कीजिएगा? सीता विकृत है, विरूप है। तुम्हारे योग्य नही है। मै तुम्हारे अनुरूप हूँ। मुझे भार्या-रूप मे देखो। मेरी दृष्टि मे सीता विरूपा है। असती है। कराल है। निर्णतोदरी है। मै इस मानुषी को तुम्हारे भाई के साथ भक्षण कर जाऊँगी। अनन्तर हम पर्वत-शृगो पर, विविध वनो मे उनकी शोभा देखते हुए दण्डकारण्य मे विचरण करेगे।

विशालाक्ष राम ने हँसते हुए कहा "मै विवाहित हूँ। मेरी भार्या साथ है। वर्तमान भी है। तुम्हारे समान नारी के लिए सौत का होना दु खदायी होगा। मेरे अनुज प्रिय भ्राता लक्ष्मण वीर्यवान्, श्रीमान्, प्रियदर्शन है। उनके साथ भार्या नहीं है। तरुण है। भार्यार्थी है। तुम्हारे सुन्दर रूप के अनुरूप ही तुम्हारे योग्य पति है। विशालाक्षि! तुम मेरे भ्राता को अपना भर्त्ता बनाओ। वरारोहे! तुम लक्ष्मण के साथ सौत-रहित मेरु मे सूर्य-प्रभा तुल्य रहोगी।"

शूर्पणखा प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मण के पास गई। सस्नेह बोली "तुम्हारे इस रूप के अनुरूप मै भार्या हो सकती हूँ। मेरे साथ सुखपूर्वक दण्डकारण्य मे विचरण करिए।"

"विशालाक्षि!" लक्ष्मण ने हँसते हुए कहा 'मै दास हूँ। दास की भार्या कैसे बनोगी? मै ज्येष्ठ भ्राता के अधीन हूँ। वे ऐश्वर्ययुक्त है। समृद्ध है। सिद्धार्थ है। तुम उनकी छोटी भार्या बनो। तुम प्रसन्न

रहोगी। मनोरथ पूर्ण होंगे। उनकी स्त्री विरूप है, असती है, कराल है, निर्णतोदरी है। वृद्धा भार्या का त्याग कर तुम्हें ग्रहण करेंगे।"

शूर्पणखा प्रसन्न हो गई।

"वरारोहे!" लक्ष्मण ने मुस्कुराकर कहा: "कौन ऐसा मूर्ख होगा जो तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ रूप का त्याग कर मानुषी को ग्रहण करेगा?"

स्वरूप-प्रशंसा सुनकर शूर्पणखा मुदित हो गई। उसने लक्ष्मण की बात सत्य समझी। प्रसन्नवदन पर्णकुटी के समीप राम और सीता के पास आई।

"राम!" शूर्पणखा सीता की ओर देखती हुई राम से बोली: 'विरूप, असती, कराल, निर्णतोदरी वृद्धा भार्या के कारण तुम मेरा विशेष आदर क्यों नहीं करते हो? मैं इस मानुषी का भक्षण करूँगी। तुम्हारे साथ बिना सौत के सुखपूर्वक रहूँगी।"

शूर्पणखा सीता की ओर प्रज्वलित उल्का-तुल्य झपटी। राम ने हुंकार द्वारा उसे रोका। काममोहिता शूर्पणखा की आँखें क्रोध से जल रही थीं।

"सौमित्र!" राम क्रोधपूर्वक लक्ष्मण से बोले: "अनार्य और क्रूरों से परिहास उचित नहीं है। देखा, सीता की रक्षा किस प्रकार की गई है?"

लक्ष्मण का मस्तक नत हो गया।

"पुरुषव्याघ्र!" राम ने क्रोधपूर्वक कहा: "कुरूपा, असती, महोदरी, उन्मादिनी राक्षसी को विरूप कर दो।"

महावली लक्ष्मण ने अविलम्ब खड्ग द्वारा शूर्पणखा के नाक-कान काट लिए। उसे विरूप कर दिया। रुधिर-धारा वह चली। उसने घोर आर्त्तगर्जन किया। अरण्य प्रकम्पित हो गया। जिस दिशा से आई थी उसी ओर रक्त वहाती, गर्जन करती भागी। रक्त-विन्दु भूमि पर गिरते चले गए।

:o: :o: :o:

जनस्थान में खर राक्षसों से घिरा वैठा था। रक्त से भीगी शूर्पणखा उसके सम्मुख पहुँची। भूमि पर गिर पड़ी। शूर्पणखा का विचित्र विरूप देखकर खर विस्मयापन्न हो गया।

"उठो !" खर ने क्रुद्ध स्वर से कहा : "मोह त्यागो ! बोलो ! किसने तुम्हें विरूप किया है ? किसने महाविषधर सर्प के विवर मे उँगली डाली है? किसने मोहवश कण्ठ मे काल-पाश डाल लिया है ? तुम पर प्रहार कर किसने विषपान कर लिया है? तुम बल-विक्रम-सम्पन्न कामगा हो, कामरूपिणी हो। यमराज-तुल्य हो। किसने तुम्हारी दुरवस्था की है ? किसने तुम्हे दु ख दिया है ? देव, गन्धर्व, भूत, ऋषि, महात्माओ मे कौन ऐसा महावीर्य है जिसने तुम्हे विरूप किया है ? इस लोक मे इन्द्र मे शक्ति नही है कि वह अप्रिय कर सके। विश्व मे ऐसा किसी को शक्तिशाली नही देखता जो हमारा अप्रिय कर सके। हंस जल मिश्रित दूध मे दूध पान कर लेता है, वैसे ही मेरे बाण भी अपराधी के शरीर से प्राण हरण कर लेंगे। मेदिनी किसका फेनयुक्त गर्म रुधिर पान करना चाहती है ? मेरे द्वारा आहत रण मे किसके मांस का भोजन पक्षिगण करंगे। देव, गन्धर्व, पिशाच तथा राक्षस भी नही रोक सकेंगे। अपनी संज्ञा उपलब्ध कर उसका नाम बताओ जिसने इस वन मे बल का प्रयोग कर तुम्हें पराजित किया है ?"

"सुनो !" शूर्पणखा रोती हुई बोली "तरुण, रूप-सम्पन्न, सुकुमार, महाबली, पुण्डरीक-विशालाक्ष, चीर कृष्णाजिनाम्बरधारी, फल-मूल-भोजी, जितेन्द्रिय, दो तपस्वी ब्रह्मचारी दण्डकारण्य में आए हैं। दशरथ के वे पुत्र हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं। वे गन्धर्वराज की प्रतिमा-तुल्य हैं। राजगुण-सम्पन्न हैं। वे देव हैं अथवा दानव हैं, मैं अनुमान द्वारा नही कह सकती।

"सर्वाभरण-भूषिता, रूप-सम्पन्ना, एक तरुणी उन लोगों के साथ है। उसका मध्य भाग अतीव सुन्दर है। उसी के कारण उन दोनों ने अनाथा, असती-स्वरूपा मेरी दुर्गति कर दी है। उस स्त्री तथा उन दोनों पुरुषों का फेनयुक्त गर्म रक्त मै पीना चाहती हूँ। रणभूमि में उनका रक्त-पान कर सकूँगी ? क्या तुम मेरी इच्छा पूरी करोगे ?"

खर क्रोध द्वारा रक्तवर्ण हो गया। नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। गर्जता हुआ बोला :

"राक्षसो ! शस्त्र-सम्पन्न, कृष्णाजिनाम्बरधारी दो मनुष्यों का दण्डकारण्य में आगमन हुआ है। सर्वप्रथम उन दोनों की हत्या करो। तत्पश्चात्,

दुराचारिणी स्त्री को मारो। मेरी प्रिय भगिनी की इच्छा पूर्ण करो। मेरी प्रसन्न बहन उनका रक्तपान करेगी।"

महान् कोलाहल हुआ। सिहगर्जन करते चौदह सहस्र राक्षसो ने राम की हत्या के निमित्त पंचवटी की ओर अभियान किया।

:o: :o: :o:

राक्षसों ने देखा :

रामचन्द्र पर्णशाला मे सीता सहित बैठे थे। लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे थे। राम ने शूर्पणखा के साथ राक्षसों की सेना देखी। वे सतर्क हो गए।

"सौमित्र !" राम ने कहा : "मुहूर्त्तमात्र सीता के पास ठहरो। मैं शूर्पणखा के साथ आए राक्षसो का वध करूँगा।"

लक्ष्मण ने नत-मस्तक आज्ञा शिरोधार्य की।

राम ने अपना महच्चाप उठाया। राक्षसों के समीप पहुँच गए।

"निशाचरो !" राम ने कहा : "हम दशरथ के पुत्र है। राम-लक्ष्मण भाई-भाई हैं। सीता सहित भयंकर दण्डकारण्य मे आए है। फल-मूल हमारा आहार है। हम तपस्या मे संलग्न हैं, ब्रह्मचारी है। शान्तिपूर्वक दण्डकारण्य मे निवास कर रहे हैं। हमें मारकर क्यों हिसा करना चाहते हो ?"

राक्षस राम की बात सुनकर भैरव नाद करने लगे। उनके रूप भयंकर हो गए। उन्होने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"निशाचरो ! तुम लोग पापात्मा हो। महात्माओं की हत्या करते हो। ऋषियों की रक्षा के निमित्त मैंने धनुष-बाण धारण किया है।

"राक्षसो ! यदि केवल युद्ध से तुम्हें तुष्टि मिलने वाली है, तो ठहरो अन्यथा प्राण-भय से चले जाओ।"

राक्षस गर्ज उठे !

"महात्मा खर को तुमने क्रोधित किया है। युद्ध में हम लोगों द्वारा तुम्हारी हत्या होगी। हम लोग बहुत है। तुम युद्ध में नही ठहर सकते। हम लोगों के परिघों, शूलों, पट्टिशादि के प्रहार द्वारा तुम्हारा धनुष टूट जायगा। तुम्हारा प्राणान्त हो जाएगा।"

राक्षसों ने राम पर घोर आक्रमण कर दिया। राम की प्रत्यंचा पर उत्सुक बाण चढ़ने लगे। राक्षस धराशायी हो गए।

समरांगण में राक्षसी शूर्पणखा ने राक्षसों का भयंकर अन्त देखा। वह मूच्छित होने लगी।

:o: o :o:

आर्त्त शूर्पणखा अपने भाई खर के सम्मुख भूमि पर गिरी थी। नाक और कान का खून सूख गया था। वह गोंदयुक्त लता-तुल्य प्रतीत होती थी। प्रभाहीन हो गई थी। शोकार्त्त शूर्पणखा अश्रुपात करती महान् रुदन करने लगी।

"बहन!" खर ने सक्रोध भूमि पर पड़ी शूर्पणखा की ओर देखकर कहा: "तुम्हारे इच्छानुसार मैंने चौदह सहस्र वीर राक्षसो को नियुक्त किया था। वे किसी के द्वारा मारे नही जा सकते थे। मेरे आदेशों का उन्होंने पालन किया। तुम पुनः सर्प-तुल्य पृथ्वी पर लोटती हो। अनाथ-स्वरूप तुम्हारे विलाप का क्या कारण है? उठो, क्लीव मत हो!"

"निशाचर!" शूर्पणखा उत्तेजित होकर बोली—"राम का महान् पौरुष देखकर भयभीत हो गई हूँ। उद्विग्न हो गई हूँ। विषादग्रस्त हो गई हूँ। राम ने चौदहों सहस्र राक्षसों को मार डाला!"

खर स्तम्भित हो गया।

"निशाचर!" शूर्पणखा की वाणी मे तेज था: "तुम्हारी शरण आई हूं। मैं शोकग्रस्त हूँ। क्या तुम्हें मुझ पर दया आती है? क्या उन दिवंगत राक्षसों के लिए तम्हारे हृदय में स्थान है? दण्डकारण्य मे राम राक्षसो के लिए कण्टक है? यदि तुम मे शक्ति तथा तेज है तो राम का वध करो।

"भाई!" शूर्पणखा करुण स्वर मे बोली: "यदि तुमने राम का वध नहीं किया तो मै अपने प्राण दे दूँगी।"

खर गम्भीर हो गया।

"निशाचर!" शूर्पणखा क्रोधपूर्वक बोली: "मैं देख रही हूँ। तुम सबल होने पर भी राम से युद्ध नही कर सकते। तुम वास्तव मे शूर नही हो। शूर होने की मिथ्या धारणा कर ली है। यदि समरागण मे राम का वध नही कर सकते तो कलंक-कालिमा मुख मे पोतकर जनस्थान से सम्बन्ध-विच्छेद कर पलायन कर जाओ।"

खर का मुख लाल हो उठा।

"मूढ़ !" शूर्पणखा चिल्ला ही उठी : "युद्ध में राम को मारो। राम और लक्ष्मण जैसे मनुष्य को नही मार सकोगे तो तुम्हारे समान बलहीन, अल्पवीर्य कैसे दण्डकारण्य में स्थिर रह सकेगा ? राम तेजस्वी हैं। उनके तेज द्वारा तुम्हारा शीघ्र ही नाश हो जायेगा।"

शूर्पणखा छाती पीट-पीट कर विलाप करने लगी। खर के सम्मुख संज्ञा-शून्य हो गई। तिरस्कृत वचनों ने खर को क्रोधित कर दिया।

"राक्षसी !" खर ने राक्षसो की ओर देखते हुए कठोर स्वर मे कहा : "तुम्हारा अपमान हुआ है। अपमान के कारण मुझे स्वयं क्रोध उत्पन्न हो गया है। राम को मै वीर्यवान् नहीं गिनता। वह क्षीणजीवी है। दुष्कर्मो के कारण उसे प्राण-त्याग करना पडेगा। आँसुओं को रोको। व्याकुलता त्यागो। मै राम और उसके भ्राता को यम-सदन भेजूँगा। मन्दप्राण राम मेरे परशु द्वारा भूतल पर लुण्ठित होगा। राम का तुम गर्म रक्त पान करोगी।"

शूर्पणखा का मुख खिल गया। वह खर की प्रशंसा करने लगी।

"दूषण !" खर ने अपने सेनापति से कहा : "चौदह सहस्त्र भीम राक्षसो को युद्ध निमित्त तैयार करो। सौम्य ! धनुष-वाण, रथ, खड्ग, विविध प्रकार की शक्तियों का संग्रह करो। पौलस्त्य-वंशी राक्षसों की सेना के आगे दुर्विनीत राम के वध निमित्त मै स्वयं चलूँगा।"

राक्षसी सेना प्रलयकालीन आँधी के समान राम के आश्रम की ओर बढ़ी।

:o: :o: :o:

"लक्ष्मण !" राम ने कहा : "भयंकर गर्जन करती, उत्पात मचाती राक्षस-सेना आश्रम के समीप आ गई।

"आपत्ति-काल की सूचना के निमित्त प्राकृतिक कुलक्षण तथा उत्पात दिखाई दे रहे है। आकाश में गन्धर्व समान धूसर वर्ण मेघ उमड़ आए हैं। उनसे रुधिर-धारा बरस रही है। पक्षियों के नाद द्वारा मेरा कुशल तथा राक्षसों के नाश का काल उपस्थित मालूम होता है। मेरी दक्षिण भुजा बारंबार स्फुरण कर रही है। तुम्हारी मुख-मुद्रा प्रसन्न तथा कान्तियुक्त है। युद्ध-काल

में उदास मुख आयु-नाश का द्योतक है। आपत्तिकाल से पहले रक्षा का प्रवन्ध कर लेना चाहिए। पादप-संकुल शैल-गुहा में सायुध सीता सहित आश्रय लो।

"निस्संदेह तुम शूर हो, वलवान् हो; किन्तु इन निशाचरों को मैं स्वयं निहत करना चाहता हूँ। वत्स! प्रतिकूल कार्य करने की इच्छा मत करो। तुम्हे मेरे पदों की शपथ है। तुम शीघ्र यहाँ से जाओ।"

रामचन्द्र के विवश करने पर लक्ष्मण ने सीता सहित शैल की दुर्गम गुफा का आश्रय लिया।

राम ने प्रसन्नतापूर्वक अग्नि के समान प्रकाशवान् कवच धारण किया। वे अग्नि-तुल्य प्रतीत होने लगे। धनुष-वाण लेकर युद्ध निमित्त उद्यत हो गए। उनकी प्रत्यचा की टंकार द्वारा दिगन्त गूँज गया।

:o: :o: :o:

राम के चारों ओर राक्षस सैनिको का दल उमड़ पड़ा। रथारूढ खर राम के सम्मुख आया। उसके पार्श्व में उसके मन्त्री आ गए। खर को घेर कर राक्षस खड़े हो गए।

राक्षसो ने राम पर आक्रमण किया। समुद्र में मिलने वाली नदियों तुल्य उन अस्त्रों को राम आत्मसात् करने लगे। उनके शरीर से किंचित् रक्त-धारा निकलने लगी। वे सन्ध्याकालीन मेघो मध्य भास्कर-तुल्य लग रहे थे।

राम के मण्डलाकार धनुष से छूटे वाणो द्वारा राक्षस हताहत होने लगे। दूषण ने अपनी सेना का भयंकर संहार देखा। पाँच सहस्र राक्षसो को आक्रमणार्थ भेजा। स्वयं सेना का संचालन करने लगा। फिर राम के सम्मुख युद्ध करने आया।

तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ।

राम ने दूषण के रथ के अश्वो को मारा। उसके सारथी का मस्तक-विच्छेद कर दिया। दूषण के वक्ष.स्थल पर तीन वाण छोड़े।

दूषण परिघ लेकर राम की ओर दौड़ा। राम ने वाणो से उसके दोनों हाथ काट दिए। हाथ कटते ही दूषण पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दूषण को धराशायी देखकर राक्षस-सेना हतोत्साह हो गई। सेना का मनोबल रखने के लिए शेष वीर आगे वढे। सेनाग्रणी महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथी

आगे बढ़े । महाकपाल ने विशाल शूल लिया । स्थूलाक्ष ने पट्टिश लिया । प्रभाची ने परशु उठाया । महाकपाल का मस्तक बाणों द्वारा छिन्न होकर भूमि पर गिर गया । प्रभाची असंख्य बाणों से मथ उठा । स्थूलाक्ष की आँखों में बाण भर गए । वे भूमि पर गिर पड़े । उनके मुख खुल गए । प्राण-पखेरू उड़ गये । दूषण के पाँच सहस्र राक्षसों ने महानिनाद के साथ स्वर्गारोहण किया ।

"सेनानायको !" खर ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा : "दूषण वीर साथियों के सहित निहत हुआ है । राम पर चारों ओर से आक्रमण करो । उसका वध आवश्यक है ।"

वरूह पराक्रमी राक्षस सेनापति, श्येनगामी, पृथुग्रीव, यक्षशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, वरुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य तथा रुधिराक्ष ने राम पर घोर आक्रमण किया । राम की बाण-वर्षा में वे भी बह गए । उनके अतिरिक्त राम ने कर्णि बाण से एक शत राक्षस तथा सहस्र बाणों द्वारा एक सहस्र निशाचरों का संहार किया ।

:o: :o: :o:

सारी सेना समाप्त हो गई । रणक्षेत्र में केवल खर, त्रिशिरा तथा राम शष रह गए । खर राम की ओर बढ़ा ।

"विक्रान्त !" सेनापति त्रिशिरा ने खर को रोक कर कहा : "मै राम को मारूँगा । यह काम मेरे लिए छोड़ दीजिए । आप मध्यस्थ-तुल्य मेरा और राम का युद्ध देखिए । मेरी मृत्यु के पश्चात् स्वयं युद्ध कीजिएगा । मुझे विश्वास है कि मै राम का वध कर सकूँगा ।"

खर की आज्ञा पाकर त्रिशिरा युद्ध-निमित्त वेगपूर्वक चला । त्रिशिरा और राम का भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया । त्रिशिरा ने राम के ललाट पर तीन बाणों द्वारा प्रहार किया । राम ने क्रोधपूर्वक कहा :

"अहा ! तुममे इतना ही वल है । तुम्हारे बाण मुझे फूल तुल्य लगे हैं । मेरा प्रहार सहन करो ।"

राम ने त्रिशिरा के वक्ष.स्थल पर चौदह बाणों द्वारा प्रहार किया । चार बाणों द्वारा रथ के चारों अश्वों को मार दिया । त्रिशिरा ने रथ त्याग

कर कूदना चाहा। राम ने उसी समय उसके वक्ष-स्थल को वेध डाला। त्रिशिरा जड हो गया। राम ने तीन वाणो द्वारा त्रिशिरा के मस्तक काट दिए। उसके छिन्न-मस्तक ग्रीवा से भाप सहित रुधिर-धारा निकलने लगी।

त्रिशिरा के छिन्न-मस्तक पृथ्वी पर लुण्ठित होते ही शेष राक्षस पलायित हुए। खर ने उन्हे रोका। राम पर आक्रमण निमित्त स्वयं चला। खर ने राम पर नाराच चलाया। रथारूढ खर अद्‌भुत रण-कौशल प्रदर्शित करने लगा। खर ने राम पर नालीक तथा विकीर्ण वाणो से प्रहार किया। राम के धनुष को मुष्टिदेश पर काट दिया। सात वाणो द्वारा राम के मर्म-स्थान पर प्रहार किया। राम का कवच टूट कर गिर गया। खर भयकर गर्जन करने लगा। राम युद्धभूमि मे धूम्रहीन अग्नि-तुल्य लगने लगे।

राम ने दूसरा धनुष धारण किया। प्रत्यचा चढाई। उन्होने अगस्त्य द्वारा प्रदत्त महान् वैष्णव धनुष से खर पर वाण-प्रहार किया।

राम ने खर के सुवर्ण ध्वज को खण्डित कर दिया। खर ने राम के मर्मस्थान पर चार वाणों से प्रहार किया। राम का शरीर रक्त से तरल हो गया। राम क्रोधित हो गए। एक वाण मस्तक, दो भुजा तथा तीन अर्ध-चन्द्राकार वाण खर के हृदय-प्रदेश पर लक्ष्य किया। शिला पर तेज किये गए तेरह वाण राक्षस खर पर छोड़े। एक वाण द्वारा रथ का युग्मक अर्थात् जूआ, चार वाणों द्वारा शवल अश्व मार दिया, छठवे वाण से खर के सारथी का वध कर दिया। तीन वाणो से रथ का त्रिवणु, दो वाणो द्वारा रथ का धुरा तथा वारहवे वाण से खर का धनुष काट दिया। तेरहवे वाण से खर को आहत कर दिया।

खर गदा लेकर रथ से कूद पड़ा।

"राक्षस!" राम ने गदाधारी खर से कहा. "अश्व, गज, रथ तथा बलान्वित होने पर भी तुमने लोकनिन्दित दारुण कर्म किया है। समाज को उद्विग्न करने वाला, क्रूर पापकर्मा यदि तीनो लोको का ईश्वर भी हो तो वह अधिक समय तक स्थायी नही रह सकता। लोक-विरुद्धकर्मा को दुष्ट सर्प-तुल्य मार डालना चाहिए। अप्राप्य वस्तु की इच्छा का नाम काम है। प्राप्त वस्तु की पुनः इच्छा का नाम लोभ है। काम और लोभ द्वारा प्रेरित जो कार्य करता है, उन पापों से निवृत्त होने की अपेक्षा उनसे प्रसन्न होता है, वह ब्राह्मणी नामक कीटाणु की तरह उपल-वृष्टि से नष्ट हो जाता है।"

खर की आँखें क्रोध से लाल थीं ।

"राक्षस ! राम ने कहा : "दण्डकारण्य-निवासी धर्माचारी तपस्वियों की हत्या कर तुमने क्या फल पाया है ? पापकर्मा, क्रूर, लोकनिन्दित पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करने पर नदी-तटवर्ती खोखले वृक्ष की तरह बहुत दिनों तक टिक नहीं सकते । समय आने पर पादप स्वतः पुष्पित होते है । पापी समय पर अवश्य पाप फल भोगता है ।"

राम ने गम्भीरतापूर्वक कहा : "विषाक्त भोजन का परिणाम अविलम्ब मिलता है । पाप का फल उसी प्रकार मिलता है । तुम जैसे पापाचारी से लोक की रक्षा निमित्त पिता राजा दशरथ ने मुझे वन मे भेजा है । धर्मात्मा तपस्वियों का तुमने दण्डकारण्य मे संहार किया है । उनके अनुगमन करने का तुम्हारा समय आ गया है । जिन महर्षियों की तुमने हत्या की है वे तुम्हें नरक मे देखेंगे । कुलाधम ! पूर्ण शक्ति द्वारा प्रहार कर । निश्चय समझ, तेरा मस्तक निस्संदेह ताल-फल-तुल्य भूमि पर आज गिरेगा ।"

"दशरथात्मज !" रक्त-लोचन खर ने हँसते हुए कहा : "साधारण राक्षसो को मार कर आत्मप्रशंसा क्यों करते है ? आप प्रशंसा योग्य नही ह । विक्रान्त, वलवन्त एवं तेजस्वी आत्मश्लाघा नही करते । कृतजन, अकृतात्मा, क्षत्रिय-कलक निरर्थक आत्म-प्रशंसा उसी प्रकार करते है जैसे तुमने अपने मुख से की है । मृत्यु-स्वरूप युद्ध-काल में कौन अपनी स्तुति स्वय करना चाहेगा ? सुवर्णरूप पीतल तपने पर अपनी लघुता प्रकट करता है । उसी प्रकार तुमने समरांगण मे मिथ्या प्रशंसा कर लघुत्व प्रकट किया है ।"

राम खर की वात नि.श्चल खड़े सुन रहे थे ।

"राम !" खर ने गम्भीर होते हुए कहा · "मुझ गदाधारी को देखो । विविध धातुओं तथा पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत-तुल्य अविचल तुम्हारे सम्मुख स्थिर खडा हूँ । में अकेला तुम्हारा तथा त्रैलोक्य का सामना करने की सामर्थ्य रखता हूँ । तुम्हारे विषय में वहुत कुछ कहा जा सकता है । सूर्यास्त हो रहा है । युद्ध रुक जायगा । चौदह सहस्र राक्षसों का तुमने वध किया है । उसका प्रतिकार मे करूँगा ।"

खर ने राम पर गदा-प्रहार किया । राम ने मुहूर्त्तमात्र में गदा को आकाश में नष्ट कर दिया ।

अपनी गदा कटती देखकर खर चकित हुआ। राम हँस पड़े :

"राक्षसाधम! तुम्हारा यही वल है। इसी वल-प्रदर्शन की तुम प्रशंसा कर रहे थे। जिस गदा पर तुम विश्वास करते थे, वह गदा भूतल पर छिन्न-भिन्न गिरी है और तुम्हारी प्रगल्भता प्रमाणित कर रही है।

"तुमने कहा था, मेरा वध कर तुम राक्षसों के आँसू पोंछोगे। तुम्हारी वातें मिथ्या हुईं।"

खर उदास हो गया।

"नीच!" राम ने तिरस्कारपूर्वक कहा. "क्षुद्रशील!! मिथ्यावृत्त!!! तुम्हारे प्राणो का तुम्हारे शरीर से उसी प्रकार हरण करूँगा जिस प्रकार देवताओ ने अमृत का अपहरण किया था। तुम्हारा मस्तक छिन्न करूँगा। आज पृथ्वी फेन-बुदबुद-युक्त उष्ण रक्त पान करेगी। तुम्हारा शरीर धूलि-धूसरित हो जायगा। तुम्हारी दोनों भुजाएँ कटकर पृथ्वी पर गिरेगी। दुर्लभ-प्रमदा-तुल्य पृथ्वी का आलिंगन कर अनन्त काल के लिए शयन करोगे।"

खर की आँखो मे भय की छाया जमने लगी।

"राक्षस!" राम ने ओजस्वी स्वर में कहा "प्रवृद्धनिद्रा मे तुम शयन करोगे। दण्डकारण्य शरणार्थियो का आश्रम होगा। जनस्थान मे तुम्हारा निवास-स्थान नष्ट करूँगा। उस समय चारो ओर मुनिगण स्वतन्त्रापूर्वक विचरण करेंगे। भयभीत करने वाली राक्षसियाँ वन्धु-बान्धवों के नष्ट होने पर स्वय दीन होकर भाग जाएँगी। पापी पति वालो की पत्नियाँ शोक का स्वाद लेंगी। नृशस! क्षुद्र!! ब्राह्मण-शत्रु!!! भयग्रस्त मुनि हवन नहीं करते थे। वे अव नि शक यज्ञ मे आहुति देंगे।"

"तुम!" खर कठोर स्वर से बोला. "निश्चय तुमम अहकार भर गया है। भय के समय तुम निर्भय वनना चाहते हो। मृत्यु-छाया-ग्रस्त नहीं जानता कि क्या कहना और करना चाहिए। कालपाशप्रक्षिप्त मनुष्यो को कर्त्तव्य का ज्ञान नही रहता। उनकी इन्द्रियो की शक्तियाँ नष्ट हो जाती है।"

खर ने क्रोधपूर्वक चारों ओर देखा। प्रहार निमित्त कुछ खोज रहा था। समीप से साल वृक्ष उखाड लिया। क्रोधपूर्वक राम पर फेंकते हुए कहा : "तुम गिरे!"

राम ने बाणों से वृक्ष को मार्ग ही में काट दिया। राम के शरीर से पसीना निकलने लगा। रोष-रक्तान्त-लोचन राम के धनुष से निकले सहस्रों बाण खर को भेदने लगे। शरीर से रुधिर-धारा बह निकली। फेनिल रक्त गन्ध द्वारा खर उन्मत्त हो गया। वह सवेग राम की ओर दौड़ा।

भयंकर वेगपूर्ण खर को आते देखकर राम दो-तीन पद पीछे हट गए। राम ने ब्रह्मदण्ड तथा अग्नि-तुल्य इन्द्र द्वारा प्रदत्त बाण धनुष पर चढ़ाया। प्रत्यंचा की टंकार हुई। वायु में सनसनाहट हुई। हृदय में बाण तरल कच्ची मृत्तिका में गिरते लोष्ठ की तरह प्रवेश कर गया। विशाल शरीर भूमि पर हाहाकार करता गिर पड़ा। घोर गर्जना के साथ प्राणों ने शरीर का त्याग किया।

दण्डकारण्य राक्षसहीन हुआ। तपस्वी प्रसन्न हुए। पर्वत की गुहा से निकलकर सीता और लक्ष्मण आए। राम ने उनके साथ आश्रम में प्रवेश किया।

लक्ष्मण ने राम की पूजा की। प्रसन्न सीता ने आलिंगन किया।

—और दूर पर भागती जा रही थी, उद्विग्न, व्याकुल शूर्पणखा।

:o: :o: :o:

प्रलयकालीन प्रदीप्त अग्नि तुल्य तेजस्वी रावण को मन्त्रियो के मध्य भयविह्वला शूर्पणखा ने देखा। दिव्य वस्त्राभरण तथा दिव्य मालाओं से वह सुशोभित था। विरूप शूर्पणखा की दयनीय अवस्था देखकर रावण की आँखें लाल हो गईं।

"निरंकुश!" शूर्पणखा ने कठोरतापूर्वक कहा : "कामभोग में लिप्त हो गये हो। तुम प्रमत्त हो। तुम्हे इस बात का ज्ञान होना चाहिए था कि राक्षसों के ऊपर किस प्रकार की घोर विपत्ति आई है। क्षुद्र कामवृत्त तथा भोगी महीपति स्वेच्छाचारी तथा लोभग्रस्त हो जाता है। श्मशान की अग्नि-तुल्य प्रजा उसका आदर करना त्याग देती है। पार्थिव! अपने कार्यों को समय पर सम्पादन नही करने वाला राजा अपने राज्य तथा कार्यों सहित स्वयं नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार हाथी नदी के पंक का त्याग करता है, उसी प्रकार अयुक्ताचारी, दुर्दर्श, निरकुश राजा का त्याग लोग कर देते हैं। जिस प्रकार

समुद्र में जलमग्न पर्वतों की वृद्धि नहीं होती। उसी प्रकार विषय-स्वच्छन्द नराधिप एव अधीनस्थ भूखण्ड-रक्षा-विरत राजा की वृद्धि नही होती। देवता, गन्धर्व, दानवो से तुमने विरोध किया है। तुम्हारे पास गुप्तचरों का सग्रह नही है। तुम चपल हो। अतएव तुम कैसे राजा वने रह सकोगे?"

शूर्पणखा ने पुन कहा . "राक्षस! तुम वाल-स्वभाव हो। तुम वुद्धिहीन हो। ज्ञातव्य वातों का तुम्हे ज्ञान नही है। तुम राजा कैसे वने रहोगे?"

रावण एकटक अपनी वहन की ओर देख रहा था। अपना तिरस्कार सुनकर भी चुप था। परिषद् नीरव थी। किसी को वोलने का साहस नही हुआ।

"राक्षस!" शूर्पणखा पुनः वोली "जिन राजाओ का गुप्तचर, कोश एव अपनी नीति पर अधिकार नही होता वे प्रकृतिजनो के समान है। राजा को दीर्घचक्षु कहा गया है। वह चरो द्वारा वाते जान लेता है। तुम्हारे सचिव मूर्ख है। गुप्तचरो की नियुक्ति नही की गई है। जनस्थान मे हत वन्धु-वान्धवो की भी तुम्हें कुछ सुध-वुध नहीं है? भीमकर्मा चौदह सहस्र राक्षसों के साथ खर तथा दूषण राम द्वारा मारे गए है। जनस्थान नष्ट हो गया है।"

रावण का मस्तक झुक गया।

"राक्षस!" शूर्पणखा कहती गई "राम ने ऋषियों को अभयदान दिया है। दण्डकारण्य को क्षेमयुक्त किया है। जनस्थान को नष्ट कर, दण्डकारण्य को कष्ट-रहित वना दिया है। तुम लुब्ध, प्रमत्त और पराधीन हो। विषयरत हो। तुम्हारे राज्य मे जो कुछ हुआ है, उसका तुम्हें ज्ञान नही है। तीक्ष्ण-स्वभाव कर्मचारियो को स्वल्प वेतन देने वाले प्रमत्त, शठ, अहंकारी राजा का विपत्ति मे लोग साथ नहीं देते। अत्यन्त मानी, आग्रही, क्रोधी, अपने सव उत्तम समझने वाले राजा की विपत्ति में स्वजन हत्या कर देते हैं। कर्त्तव्य-च्युत, भयरहित राजा शीघ्र ही राज्यच्युत होकर दीन हो जाता है।"

रावण उदास हो गया।

"रावण!" शूर्पणखा बोली · "शुष्क काष्ठ, लोष्ठ तथा धूलि से काम लिया जा सकता है किन्तु राज्यभ्रष्ट राजा से किसी प्रकार की भी कार्यसिद्धि नही होती। जिस प्रकार उपभुक्त वस्त्र और माला निरर्थक हो जाती हैं, उसी प्रकार समर्थ होने पर भी राज्यभ्रष्ट राजा निरर्थक हो जाता है। अप्रमत्त,

सवज्ञ, विजितन्द्रिय, कृतज्ञ, धर्मशील राजा चिरकाल तक स्थित रहता है। स्थूल नयनों द्वारा सुप्त किन्तु नीति-चक्षु से सर्वदा जागृत, क्रोध एवं प्रमाद का फल प्रकट करने वाला राजा लोक द्वारा पूजित होता है। तुम दुर्बुद्धि हो। राजोचित गुणों से हीन हो। तुम्हारे गुप्तचरों द्वारा बांधवों के वध का पता (त)क नहीं लग सका। तुम दूसरों का अनादर करने वाले हो। तुमने अपनी (ब)ुद्धि का प्रयोग नहीं किया है। तुम विपन्न होंगे। विपत्ति उटाओगे। राज्य-भ्रष्ट होगे!"

शूर्पणखा की ओजस्वी बातें रावण ने सुनीं। दोष-गुण की मन-ही-मन समीक्षा करने लगा। धन, दर्प और बल-समन्वित रावण चिन्तित हो गया।

"मनोज्ञांगि!" रावण ने क्रोधपूर्वक पूछा: "राम कैसा है? उसका वीर्य, पराक्रम एवं रूप कैसा है? सुदुस्तर दण्डकारण्य में उसके प्रवेश का क्या कारण है? राम ने राक्षसों, खर, दूषण और त्रिशिरा को किन आयुधों द्वारा परास्त किया है? बोलो! तुमको किसने विरूप किया है?"

"रावण!" क्रोधमूर्च्छिता शूर्पणखा बोली: "राम दीर्घबाहु, विशालाक्ष चीर कृष्णाजिनाम्वरधारी हैं। कंदर्प-तुल्य सुन्दर राम दशरथ के आत्मज हैं। सुवर्णमण्डित चक्र के समान धनुष को खींचकर विषधर सर्प के समान बाणों को छोड़ते हैं। राम को वाण लेते, धनुष पर चढ़ाते और छोड़ते कोई देख नही पाता। हाँ, उनकी वाणवर्षा से मरे हुए लोगों को देखा जा सकता है। ओले की वर्षा से जिस प्रकार इन्द्र हरी-भरी पूरी खेती नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार राम ने भीम-पराक्रम चौदह सहस्र सेना के साथ खर-दूषण को तीन घण्टे के अन्दर मार डाला। ऋषियों को अभय प्रदान किया। दण्डकारण्य को विघ्न-रहित कर दिया।

"राक्षसेन्द्र!" शूर्पणखा की वाणी कोमल हो गई थी: "स्त्री-वध के भय से महात्मा राम ने केवल मेरा अपमान करके छोड़ दिया। गुण-विक्रम में राम के ही समान उनका कनिष्ठ भ्राता महावली लक्ष्मण है। वह वीर्यवान् राम का भक्त है। वह तीक्ष्ण बुद्धि, अमर्षशील, दुर्जय, विजयी तथा वल-विक्रम-समन्वित है। वह राम का दक्षिण वाहु है, वाह्य प्राण है।

"रावण!" शूर्पणखा रावण की ओर देखती हुई वोली. "राम की धर्मपत्नी सीता है। उनके साथ वन मे रहती है। पूर्णेन्दु-तुल्य सुन्दर मुख है।

वह विशालाक्षी है। भर्त्ता के प्रिय हित मे संलग्न रहती है। सुकेशी है। सुरूपा है। सुन्दर नासिका है। सुन्दर उरु है। वह यशस्विनी दूसरी श्री-समान वन-देवी प्रतीत होती है। वह तप्त काचन-वर्णा है। उसके रक्तिम नख है। उस वरारोहा का नाम सीता है। वह विदेह की पुत्री है। देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर मे सीता तुल्य सुन्दर नारी मिलना कठिन है। उससे अधिक रूपवती मैने भूतल पर नही देखी है। भार्या-स्वरूप जिसका आलिगन करती है, उसका जीवन पुरन्दर से अधिक सुखमय है। वह भुवन की रूप-प्रतिमा है। सुशील है। शरीर सुन्दर है। तुम्हारे अनुरूप भार्या है। तुम उसके अनुरूप पति हो।

"राक्षसेन्द्र !" शूपणखा स्नेह से बोली · "विस्तीण जघन यौवनोत्तु-गपयोधर-युक्त वरानना सीता को तुम्हारी भार्या निमित्त लाने के लिए मैं वहाँ गई थी। अतएव महाक्रूर लक्ष्मण ने मुझे विरूप कर दिया। तुम पूर्ण-चन्द्रनिभानना सीता को देख मन्मथ का आश्रय लोगे। यदि तुम उसे अपनी भार्या वरण करना चाहते हो तो तुरन्त अपना दक्षिण पग अग्रसर करो।

"राक्षसेश्वर !" यदि मेरी बाते तुम्हें रुचिकर प्रतीत होती हो तो नि शंक मेरे कथनानुसार कार्य करो। राम असमर्थ है, अशक्त है। तुम महाबली हो। सीता को अपनी भार्या बनाओ। राम ने जनस्थान-निवासी निशाचरों, खर एव दूषण को मारा है। विचार करते हुए तुम कर्त्तव्य निश्चित करो।"

रावण मुहूर्त्त मात्र विचार करता रहा। तत्पश्चात् मन्त्रियों से विचार-विनिमय करने लगा। वह सीता-हरण की योजना बना रहा था। उसने कार्य के गुण-दोष एवं बलाबल का निश्चय किया। अन्ततोगत्वा सीताहरण निमित्त तत्पर हो गया।

वह उठा। यान-शाला की ओर चला। रथ तैयार करने के लिए आदेश दिया। मन्त्री गम्भीर हो गए। शूर्पणखा मुस्करा उठी।

—०:—

---

वाल्मीकीय रामायण : अरण्य काण्ड : १७–१९, ३३, ३४
सुन्दर काण्ड : २४, ४३
उत्तर काण्ड १२, २४
महाभारत वनपर्व : २७६, २७८

## जटायु और रावण

"आर्य ! जटायु !! देखो !!! पापकर्मा राक्षस मेरा हरण कर रहा है। क्रूर राक्षस को आप रोक नही सकते। दुर्मति आयुधयुक्त है। वली है। दुस्साहसी है। यदि रक्षा नही कर सकते तो राम-लक्ष्मण से अपहरण का समाचार कृपया कहिएगा।"

जटायु निद्रामग्न थे। करुण-ध्वनि सुनी। जागृत नयनो से देखा अपहृत होती सीता को।

"दशग्रीव !" जटायु जी वृक्ष-शिखर से बोले : "मै सनातन धर्म में स्थित हूँ। मै सत्यप्रतिज्ञ हूँ। मै महावली गृद्धराज हूँ। बन्धु !! तुम्हे निन्दित कार्य शोभा नहीं देता।

"महेन्द्र तथा वरुण के सदृश पराक्रमी लोकहितरत दशरथात्मज श्रीराम की ये यशस्विनी धर्मपत्नी सीता है ?"

दशग्रीव ने जटायु की ओर उपेक्षापूर्वक देखा।

"महावल !" धर्म मे स्थित कोई राजा कैसे पर-स्त्री का स्पर्श कर सकता है ? राजा के लिए यह दुष्कृत्य शोभनीय नही है। राज-पत्नियों की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए। पर-दारा-दर्शन द्वारा प्राप्त होने वाली नीच गति से दूर रहना अच्छा है। अपनी स्त्री-तुल्य ही पर-दारा की रक्षा करना वांछनीय है।"

दशग्रीव चुप था।

"पौलस्त्यनन्दन !" जटायु ने घृणापूर्वक कहा : "धर्म, अर्थ अथवा काम-सम्बन्धी वे कार्य, जिनका उल्लेख शास्त्रों में नही मिलता, उन्हे राजा को करते देख श्रेष्ठ पुरुष भी वैसा ही करने लगते हैं। राजा धर्म तथा कामादि का केन्द्र है। केन्द्र के दूषित होने पर दोष फैल जाता है। राजा प्रजा के साथ नष्ट होता है। देश नष्ट होता है। राजा धर्म एवं काम का प्रवर्त्तक है। द्रव्य की निधि है। धर्म, सदाचार तथा पाप का मूल राजा है।

"राक्षसश्रेष्ठ ! तुम पाप-स्वभाव चपल हो। फिर बोलो, तुम्हे देवताओ के विमान-तुल्य एश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया ? काम-स्वभाव-प्रधान मानव के स्वभाव का परिमार्जन नही किया जा सकता। दुष्टात्माओ के आवास-स्थल में बहुत दिनो तक पुण्य का आवास नही होता।

"रावण !" गृद्ध ने दृढ स्वर में कहा. "क्या तुम्हारे देश तथा नगर मे राम ने कोई अपराध किया है ? बोलो ! ! पुन तुम उन्हें क्यो दुःख देते हो ? यदि शूर्पणखा की प्रेरणा से, खर ने प्रतिहिंसा-भाव से, राम पर आक्रमण किया तथा राम ने युद्ध मे उसका वध किया, तो तुम्ही निर्णय करो, इसमें राम का क्या दोष हो सकता है ? क्या इसी प्रतिशोध की भावना से तुमने उनकी पत्नी का हरण किया है ? रावण ! राम को समाचार मिलने से पूर्व जानकी को मुक्त कर दो, अन्यथा राम तुम्हारा उसी प्रकार वध करेगे जैसे इन्द्र ने वृत्र का किया था।

"तुमने अपने वस्त्रों में विषधर सर्प बाँध लिया है। यमराज की फाँसी गले मे लगा ली है। उतना भार वहन करना चाहिए जितना किया जा सके। उतना ही भोजन करना चाहिए जितना पच जाय और व्याधि से दूर रखे।"

"राक्षसेन्द्र ! यश, कीर्ति एवं धर्म जिन कार्यो द्वारा प्राप्त नही होते है और जिनसे केवल कष्ट मिलता है, बोलो ! ऐसे कार्य को कौन करना पसंन्द करेगा ?"

रावण चलने के लिए आतुर दिखाई पड़ा।

"दशानन !" जटायु की वाणी गूँजी "पूर्वजों द्वारा प्राप्त पक्षिराज-पद का मैने साठ हजार वर्ष विधिवत् पालन किया है। वृद्ध हूँ। तुम युवा हो। कवचधारी हो। शर एवं चाप सहित रथारूढ़ हो। तथापि वैदेही को मेरी आँखों के सामने लेकर नही जा सकते ?

"रावण ! यदि शूरवीर हो तो मुहूर्त मात्र ठहरो। युद्ध करो। खर-तुल्य तुम्हारा वध होगा। दैत्यदानव-विनाशक चीरधारी राम के द्वारा तुम्हारा शीघ्र नाश होगा। खेद है; राम यहाँ नही है। तुम स्वयं भयग्रस्त हो, अन्यथा सीता का चोरी से अपहरण नही करते।"

रावण की भृकुटियो में बल आने लगा।

"रावण ! मै जीवित हूँ। मेरा कर्त्तव्य है, मै मैत्री धर्म का पालन करूँगा।"

"दशग्रीव !" जटायु गरज उठे "मुहूर्त्त मात्र ठहरो। युद्ध द्वारा तुम्हारा आतिथ्य-सत्कार करूँगा। वृक्षशाखा से पतित फल तुल्य तुम्हें रथ से गिराऊँगा।"

:o: :o: :o:

शुद्ध सुवर्ण-कुण्डल-धारी रावण तथा जटायु का रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हो गया। रावण क्रोध से फूत्कार कर रहा था। रावण ने नालीक, नाराच, तथा विकर्णी अस्त्रों द्वारा प्रहार किया। गृद्ध अपने नखों से रावण के शरीर को क्षत-विक्षत करने लगा। रावण ने भयंकर रौद्ररूप धारण किया। काल-दण्ड-तुल्य दस वाण धनुष पर रखकर छोड़े। गृद्धराज आहत हो गए।

वैदेही रथारूढ अश्रु बहा रही थीं। उस करुण मूर्ति को देखकर जटायु ने पाद-प्रहारद्वारा रावण के धनुष को नष्ट कर दिया। रावण क्रोध-मूर्च्छित हो गया। उसने अविलम्व दूसरा धनुष उठाया और वाण-वर्षा द्वारा जटायु को घेर लिया। जटायु घोंसले मे बैठे पक्षी-तुल्य दिखाई देने लगे।

जटायु ने पंखों से वाण-प्रहार व्यर्थ कर दिया और पाद-प्रहार से धनुष पुनः तोड़ दिया। रावण का प्रभायुक्त शर अग्नि-तुल्य प्रज्वलित गृद्ध-राज ने प्रहार द्वारा तोड़ दिया। पिशाच के वदन तुल्य गदहों को जिनके वक्षस्थल पर सुवर्ण कवच बँधे थे, गृद्धराज ने नष्ट कर दिया। त्रिवेणु सम्पन्न पावक-तुल्य रथ भी भग्न कर दिया। रावण के सारथी, छत्र तथा चँवरधारी सेवकों को भी मार डाला।

रावण व्याकुल हो गया। सीता को अंक मे लिए रथ से भूमि पर गिर पड़ा। गृद्धराज शिथिल हो गये थे। उसका शैथिल्य रावण की रक्षा तथा हर्ष का कारण हुआ। रावण वैदेही को लेकर आकाश मे उड़ा। उसके पास केवल एक खड्ग शेष रह गया था। जटायु आकाश-मार्ग द्वारा रावण के सामने पहुँच गए।

"रावण !" महातेजस्वी जटायु क्रोधपूर्वक बोले "अल्पबुद्धे !! तृषित व्यक्ति-तुल्य तुम मित्र, वन्धु, वान्धव, मंत्री, सेना सहित विषपान कर रहे

हो । तुम्हें कर्म-फल दिखाई नहीं दे रहा है । मछली के सदृश तुमने सुन्दर मासयुक्त वंशी-रूप सीता का अपहरण किया है । सर्वनाश के लिए तत्पर हो गए हो । तुम कायर हो । तुम भीरु हो । तुमने तस्कर-वृत्ति ग्रहण की है । विनाश को सप्रेम आमन्त्रित किया है ।

"राक्षस ! तुम्हारी मुक्ति नही हो सकती । तुमने कभी विचार किया है ! अपराजित राम-लक्ष्मण यह अपमान सहन नही कर सकेंगे । कायर ! ! तुमने जो लोक-निन्दित कार्य किया है, उससे वीरो की शोभा नहीं वढेगी । अज्ञानवश मनुष्य मृत्यु-समय विनाश-निमित्त कार्य करता है, उसी प्रकार तुमने यह अधर्म कार्य किया है । जिस कार्य का परिणाम पाप होता है, उस कार्य को लोकाधिपति शक्र तथा भगवान् भी नही डरते । पुनरपि तुमने साहस किस प्रकार से किया ?"

जटायु वेगपूर्वक आकाशगामी रावण की पीठ पर बैठ गए और नखों द्वारा उसका शरीर विदारित करने लगे । क्लेश से रावण पीड़ित हो गया । रावण ने वाम अंक में वैदेही को ले लिया । उसने गृद्धराज को मारना चाहा । सीता की मुक्ति के निमित्त रावण की वाम भुजा गृद्ध ने काट गिराई, किन्तु भुजा पुनः निकल आई । रावण ने सीता को उतार दिया । गृद्धराज को मुष्टि तथा पाद प्रहार से मारने लगा ।

आहत रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर खड्ग निकाल लिया । जटायु के पंख, पाद तथा पार्श्व भाग काट डाले । जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े । रावण सवेग जटायु का मर्दन करने लगा । सीता जटायु को पकड़कर रोने लगी ।

जटायु ने अपनी जर्जर, शुष्क, रक्तहीन काया के साथ, पूर्णवेग एवं क्रोध से रावण पर आक्रमण किया ।

:o. :o: :o:

"लक्ष्मण !" राम ने पक्षिश्रेष्ठ जटायु को खून से लथपथ तथा पंख-विहीन देखकर सक्रोध कहा : "निस्सन्देह इसी ने सीता को हरण किया है । यह राक्षस है । गृद्ध का रूप धारण कर लिया है । सीता का अपहरण कर सुखपूर्वक वैठा है । यह मेरे वाणो का लक्ष्य बनेगा ।"

राम जटायु के समीप पहुँच गये।

धनुष पर बाण रखा। फेन सहित रुधिर वमन करता हुआ गृद्धराज दीन स्वर से बोला :

"दशरथात्मज! ओषधि-तुल्य वन में देवी सीता को खोज रहे हो? देवी और मेरे प्राण दोनों का हरण रावण ने किया है। आपकी अनुपस्थिति में महाबली रावण आया। सीता-हरण करना चाहा। मैंने रोकने की चेष्टा की। सहायता करना चाहता था। फलस्वरूप युद्ध हुआ। वह देखो रावण के छत्र, भग्न धनुष और बाण वहाँ पड़े हैं। देखो, उसका लुठित रथ वहाँ पड़ा है। मेरे द्वारा हत सारथी का शव पड़ा है। शिथिल होने पर रावण ने खड्ग द्वारा मुझे आहत किया। मै स्वयं राक्षस द्वारा मारा गया हूँ। आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं?"

शुभचिन्तक गृद्ध की दशा देखकर राम विकल हो गए। धनुष-बाण फेंक दिए और जटायु से लिपट गए। रोने लगे। लक्ष्मण की हिचकियाँ बँध गईं।

"लक्ष्मण! राज्य से भ्रष्ट हुआ। वनवास हुआ। सीता-हरण हुआ। सहायक जटायु मर रहे हैं। वाणी बन्द हो रही है। व्याकुलता बढ़ती जा रही है।"

शोकार्त्त राम ने कहा : "जटायो! यदि बोल सकते हो तो बोलो। सीता का क्या हुआ? तुम्हारा वध किस प्रकार किया गया? सीता का मन उस समय कैसा हो गया था? तुमसे सीता ने क्या कहा था? उस राक्षस का रूप तथा बल कैसा है? वह क्या करता है? उसका निवास कहाँ है?"

राम जटायु को पकड़े हुए उनके शरीर पर शोक से गिर गए।

"लक्ष्मण!" राम ने पुनः कहा : "अवश्य सीता की रक्षा का प्रयास गृद्धराज कर रहे थे। उनकी श्वास-गति विलीन होती जा रही है। स्वर विलीन हो रहा है। शरीर में क्षीण प्राण कहीं अटके हैं। विप्लव काल-सदृश यत्र-तत्र दीख रहा है।"

राम ने जटायु से पूछा : "यदि तुम बोल सको तो बोलो। सीता का क्या हुआ? आपका वध किस प्रकार राक्षस ने किया? आर्या सीता का

किन कारणो से हरण किया गया ? रावण का मैने क्या अपराध किया था ? किसलिए उसने सीता का हरण किया है ? सीता का शशिमुख तुमने देखा था ? उसका मुखमण्डल कैसा हो गया था ? सीता ने क्या कहा था ? तात, कृपाकर कहो ! रावण का रूप कैसा है ? कर्म कैसा है ? उसका निवास-स्थान कहाँ है ?"

अनाथवत् राम का विलाप देखकर जटायु ने स्फुट स्वर मे कहा .

"राम ! दुरात्मा रावण ने माया द्वारा आँधी तथा पानी का सर्जन कर सीता-हरण किया है। वृद्धावस्था के कारण युद्ध मे परिक्लान्त हो गया हूँ। मेरे पंख उसने छिन्न कर दिए। उसने सीता के साथ दक्षिण दिशा की ओर गमन किया है।

"राघव ! मुझे दृष्टि-भ्रम हो रहा है। प्राण रुद्ध हो रहे है। वृक्षादि सुवर्ण रंग के मालूम पड़ने लगे है। प्रतीत होता है कि वृक्षो पर खशो जैसे केश निकल आए है।

"राम ! 'विन्दु' मुहूर्त्त में रावण ने सीता हरण किया है। इस मुहूर्त्त में खोई वस्तु पुन प्राप्त हो जाती है। सीता हरनेवाला वशी पकडनेवाली मछली के समान नष्ट हो जायगा। रावण ने इस मुहूर्त्त का ध्यान नही किया। राम ! तुम शोक मत करो। रावण पराजित होगा। सीता को पुनः ग्रहण करोगे। रावण विश्रवा का पुत्र एव कुबेर का भाई है।"

राम गृद्धराज से कुछ कहना चाहते थे कि जटायु ने रुधिर-धारा के साथ मास वमन किया। उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। राम कहते ही रह गये : "और क्या हुआ, कहिए।"

:o: :o: o:

"लक्ष्मण !" राम ने कहा : "सीता की रक्षा के निमित्त गृद्धराज ने प्राण दिए है। महायशस्वी श्रीमान् पूज्यपिता दशरथ जिस प्रकार हमारे मान्य हैं, उसी प्रकार मान्य पितृ-मित्र पूजनीय जटायु है। सौमित्र ! काष्ठ एकत्र करो। मै मथकर अग्नि उत्पन्न करूँगा। मृत्यु-प्राप्त जटायु का स्वय दाह-संस्कार करूँगा।"

सुन्दर पवित्र चिता रची गई। राम ने लक्ष्मण की सहायता से जटायु का शव चिता पर रखा। मथ कर उत्पन्न की गई अग्नि से राम ने चिता में आग दी। बान्धर्व-सदृश जटायू का दाह-संस्कार किया।

राम लक्ष्मण के साथ वन में गए। स्थूल मृग की हत्या की। पृथ्वी पर तृण विछाया। मृग का मांस निकाल गोला वनाकर रमणीय हरित-हरित घास पर पक्षी के लिए रखा। मृत-आत्मा की शान्ति के निमित्त ब्राह्मण जिन मन्त्रों का उच्चारण करते है, राम ने उन मन्त्रो का जप किया।

अनन्तर राम और लक्ष्मण गोदावरी तट पर गए। स्नान किया। शास्त्रीय विधि से जटायु को जल दिया। पुन. लौट चले पश्चिम दिशा की ओर।

---

वाल्मीकीय रामायण अरण्य काण्ड ४९, ५०, ५१, ५२, ६७ . २३
६८ १२, २६–३६
किष्किन्धा काण्ड . ५३–२३
५६ ४
५८ ३३–४५
आनन्द रामायण सार काण्ड ७
महाभारत आदि पर्व ६५, ६६
वन पर्व २७९, २८९
पुराण ब्रह्माण्ड ३–७–४४

## कबन्ध

नीले तोयद-तुल्य काले वक्षःस्थल में ललाट था। ललाट मे प्रज्वलित ज्वाला सदृश भयंकर नेत्र थे। पलकें विशाल थी। आँखें भूरी थीं। कटि मोटी थीं। महा मुख से सर्प-तुल्य लपलपाती जिह्वा वाहर निकलती थी और इधर-उधर मुख-मण्डल पर डोलती चाट लेती थी। उसके भोजन ऋक्ष, सिंह, हंस आदि पशु तथा पक्षी थे। उसकी भुजाएँ एक योजन लम्वी थीं। फैली विशाल भुजाओं द्वारा भक्षण निमित्त ऋक्ष, पशु-पक्षी, मृगयूथों को पकड लेता था। अनिच्छित जन्तुओं को हाथों से पृष्ठभाग में ढकेल देता था।

उसकी फैली वाहुओ के वृत्त मे राम-लक्ष्मण आ गए। स्थिर बुद्धि राम अधीर नही हुए। लक्ष्मण व्याकुल हो गए। वे करुण स्वर से बोले :

"वीरवर! मैं राक्षस के पाश में आ गया हूँ। मुझे इसके आहार निमित्त त्याग कर आप सुखपूर्वक चले जाइए। वैदेही शीघ्र प्राप्त होगी। पिता-पितामह द्वारा पालित पृथ्वी का पालन कीजिए। मेरा भी कभी स्मरण कर लीजिएगा।"

श्रीराम ने धीर स्वर में कहा. "सौमित्र! भयभीत मत हो। तुम्हारे-जैसे शूरवीर विषाद नही करते।"

क्रूरकर्मा कवन्ध ने पूछा 'वृषभ-स्कन्धीय, महा खड्ग एवं धनुर्धारी तुम्हारा परिचय क्या है? मेरी आँखो के सम्मुख इस भयंकर वन मे आने वाले तुम कौन हो? बोलो, यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है? मै क्षुधार्त्त खड़ा था। मेरे भोज्य पदार्थ-सदृश तुम लोग स्वत: सम्मुख आ गए। तुम्हारा बचना कठिन है।"

परिशुष्क मुख से राम ने लक्ष्मण से कहा : "सत्य विक्रम! हम लोग दु:ख में अनायास पड़ गए। प्रिय सीता प्राप्त नही हुई। नवीन विपत्ति आ गई।"

राम ने गम्भीरतापूर्वक पुनः कहा : "लक्ष्मण ! काल-प्रभाव से कोई अप्रभावित नहीं रह सकता। नर-व्याघ्र ! काल-प्रभाव से हम लोग विपत्तिग्रस्त हुए हैं। बालू का पुल वर्षा में नष्ट हो जाता है। शूर-वीर बलवान् अस्त्र-शस्त्र-वेत्तागण युद्ध में अनायास काल के ग्रास बन जाते हैं।"

"क्षत्रिय-श्रेष्ठ !" कबन्ध बोला : "मुझे क्षुधा-पीड़ित देखकर भी तुम लोग खड़े हो। दैव ने मेरे भोजन निमित्त तुम्हें यहाँ भेजा है। दैव ने तुम्हारी बुद्धि हर ली है।"

मृत्यु सामने देख लक्ष्मण ने पराक्रम का आश्रय लेना श्रेयस्कर समझा। राम से बोले : "गुरुवर ! राक्षस हमे भक्षण करे उसके पूर्व ही खड्ग प्रहार द्वारा इसके वाहु छिन्न कर देने चाहिए। महाकाय राक्षस महा-भीषण है। इसकी भुजाओं में वल है।"

लक्ष्मण ने कबन्ध की ओर देखकर पुनः कहा : "निशाचरों का वध करना राजाओं के लिए उसी प्रकार उचित कहा गया है, जिस प्रकार आए हुए यज्ञिय पशु का।"

राम-लक्ष्मण का वार्त्तालाप सुनकर कबन्ध क्रोधित हो उठा। उसका भयंकर मुख खुला। उसने भयंकर गर्जन किया। राम-लक्ष्मण को खाने के लिए उद्यत हो गया।

राम ने शीघ्रतापूर्वक कबन्ध का दक्षिण तथा लक्ष्मण ने वाम बाहु काट दिया। बाहुओं के कटते ही भयंकर घोर चीत्कार करता कबन्ध भूमि पर गिर पडा।

कबन्ध ने कातर स्वर से पूछा : "आप लोग कौन है ?"

लक्ष्मण ने रघुकुल-वंशावली का ललित भाषा मे वर्णन किया।

कवन्ध चकित हो गया।

लक्ष्मण ने पूछा : "कबन्ध, तुम्हारा परिचय क्या है ? कबन्ध तुम इस भयंकर वन में क्यों पड़े हो ? तुम्हारी जंघाएँ टूटी हैं। वक्षःस्थल में मुख है। निश्चेष्ट-से पड़े हो।"

"नर-व्याघ्र !" कबन्ध ने प्रसन्नतापूर्वक कहा : "आप लोगों का स्वागत करता हूँ। आप लोगों को देखकर प्रसन्न हूँ। मैं इसलिए भी प्रसन्न

हूँ कि मेरी वाहें कट गई । ये क्रूरकर्मा हो गई थी। ये हत्या करती थी। वे मेरे लिए वन्धन थे।"

"तुम्हे यह रूप कैसे प्राप्त हुआ ?"

कवन्ध ने उत्तर दिया . "मेरी उद्दण्डता के कारण।"

"किस प्रकार ?" राम ने पूछा।"

"महावाहु राम ! मै महावली था। महापराक्रमी था। त्रैलोक्य-विश्रुत् था। शशि सदृश सुन्दर था। रूपवान् होने पर भी विचित्र रूप धारण करता था। ऋषियो को भयभीत करता था। स्थूलशिरा ऋषि को कवन्ध अर्थात् मस्तकहीन शरीर धारण कर क्रोधित कर दिया। वे वन मे क्षुधा-तृप्ति निमित्त फल-फूल एकत्र कर रहे थे। मेरा विकट रूप देखकर उन्होने शाप दिया ."दुरात्मन् ! सर्वदा तेरा ऐसा ही निन्दित तथा क्रूर रूप रहेगा ? शाप सुनते ही मै विकल हो गया। मुनि से क्षमा-याचना की, शाप के प्रतिकार निमित्त वे वोले · "तुम्हारी दोनो वाहुओ को छिन्न कर राम तुम्हे विजन वन में फूँक देंगे, फिर तुम्हे पूर्वकालीन शोभा-सम्पन्न रूप प्राप्त होगा।

"अनन्तर राक्षस होने पर मैंने उग्र तपस्या की। तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए। मुझे दीर्घजीवी होने का वर दिया।

"दीर्घायु वर पाकर मै पुन अहकार मे भूल गया। मैने समझ लिया, मेरा कोई कुछ विगाड़ ही नही सकता। इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा। इन्द्र ने वज्र-प्रहार किया। ब्रह्मा के वर के कारण मै मर नही सका। किन्तु वज्र-प्रहार से जाँघ और मस्तक शरीर मे चले गए।

"मै अत्यन्त दयनीय स्थिति को प्राप्त हुआ। इन्द्र से निवेदन किया कि जाँघ, मस्तक, मुख टूट जाने के कारण किस प्रकार आहार ग्रहण करूँगा ?

"प्रार्थना इन्द्र ने स्वीकार की। भुजाएँ जीवनयापन निमित्त लम्बी दीं। भयकर दाढोवाला मुख उदर मे वना दिया। लम्बी भुजाओ से वनचरो को खीच कर खाने लगा।"

राम ने कहा · "कवन्ध ! मेरी भार्या यशस्विनी सीता का पता वता सकते हो ?"

"राम !" कुशल वाक्पटु कबन्ध बोला : "मेरा दिव्य ज्ञान लुप्त हो गया है। अग्नि द्वारा भस्म होकर अपना पूर्व रूप जब तक नही प्राप्त कर लेता हूँ, तब तक कुछ बताना सम्भव नहीं है। इस रूप के पश्चात् दूसरा रूप प्राप्त होते ही मै उचित परामर्श दे सकूँगा।"

"पूर्व रूप किस प्रकार प्राप्त करोगे ?"

"राम ! सन्ध्या के पूर्व गड्ढा खोदकर मुझे गड्ढे में भस्म कर दीजिए। तत्पश्चात् पूर्वरूप प्राप्त करने पर देवी सीता कैसे प्राप्त होंगी, तथा आपके सहायक कौन हो सकते हे, सब वताऊँगा।"

राम और लक्ष्मण ने पर्वत के एक गड्ढे मे कवन्ध को डाल दिया। लक्ष्मण ने चिता मे उल्का द्वारा चारों ओर से आग लगाई। अग्नि-ज्वाला धू-धू कर जलने लगी। कबन्ध का चर्बीपूर्ण शरीर घृत-पिण्ड तुल्य भस्म होने लगा।

चिता कम्पित हुई। धूम्रहीन अग्नि-तुल्य उज्ज्वल दो वस्त्र तथा दिव्य पुष्प-माला धारण किए हुए कवन्ध निकला। वह सर्वालंकृत था। आचरण दिव्य थे। हंस के सुन्दर विमान पर आरूढ़ था। दशों दिशाएँ उसकी कान्ति से कान्तिमय हो गईं।

वह अन्तरिक्ष में स्थित हो गया। सीता किस प्रकार प्राप्त होगी, राम को क्या करना है, सुग्रीव से किस प्रकार मित्रता होगी, आदि विस्तार-पूर्वक कहने लगा।

---

वाल्मीकीय रामायण अरण्य काण्ड ६९ ७०, ७१, ७२, ७३।
महाभारत वन पर्व २७९।

"पुरुषर्षभ ! पम्पा-तीर पर मैंने विविध फल-फूलों का संचय किया है। ग्रहण कर अनुगृहीत कीजिएगा ?"

"तपोधने !" राम ने कहा : "कबन्ध ने तुम्हारे गुरुजन महात्माओं के प्रभाव का वर्णन किया था। मैं उस प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। तुम अतीत, अनागत की ज्ञानशीला हो। यदि तुम हमारी बात मान्य करो, तो तुम्हारे उस ज्ञान को हम प्रत्यक्ष देखना चाहते है।"

शबरी ने राम को महावन दिखाते हुए कहा : "मेघ के समान श्याम तथा नाना प्रकार के पशु-पक्षियों से पूर्ण वन देखें। इस वन का नाम मतंग है।

"यहाँ पर मेरे पवित्रात्मा गुरुगण निवास करते थे। उन्होंने गायत्री द्वारा पवित्र शरीर का त्याग किया। यज्ञ में उन्होंने काया की हवि दी थी।

"यह प्रत्यक् स्थली देवी है। यहाँ मेरे गुरुओं ने श्रम-प्रभाव द्वारा कम्पित हाथों में देवताओं को पुष्प द्वारा बलि समर्पित की थी।

"रघूत्तम !" शबरी कह चली : "उनके तप-प्रभाव द्वारा अतुलनीय प्रभा वाली वेदी आज भी सब दिशाओ को तेजोमय करती है। उपवास द्वारा दुर्बल एवं अशक्त हो जाने पर केवल चिन्तन मात्र द्वारा सात समुद्रों का जल वृद्ध गुरु के पास आ जाता था।

"रघुनन्दन ! स्नान कर उन्होंने वृक्षो पर वल्कल वस्त्र टाँग दिए थे। वे अब भी सूखे नही है। देवताओ के पूजा-निमित्त गुरुजनों ने कमल सहित पुष्पमाला बनाई थी। वे आज भी किंचिन्मात्र मलीन नहीं हुई है। वन मे जो कुछ श्रोतव्य था, द्रष्टव्य था, उसे मैंने आपको सुना दिया, दिखा दिया।"

राम वन-श्री तथा ऋषियों के स्मारक-चिह्नों में तन्मय हो गए।

शबरी ने कहा : "मै इस शरीर का परित्याग करना चाहती हूँ।"

"क्यों ?"

"मैं उन भावितात्माओं के समीप जाना चाहती हूँ, जिनका यह आश्रम है। जिनकी मै परिचारिका रही हूँ।"

"आश्चर्य !" विस्मयापन्न राम बोले।

शबरी गम्भीर थी। मुख पर स्वर्गीय शान्ति छिटक रही थी।

# किष्किन्धा काण्ड



☆

# हनुमान्

सुन्दर शैल-शिखर पर सुन्दर नारी थी। सुन्दरता उसकी सहचरी थी। यौवन उसकी श्री थी। माधुर्य्य उसका जीवन था। पुष्पित माला वक्ष:स्थल पर सुरभित थी। चीनांशुक में वर्षाकालीन-मेघ सदृश पर्वत पर वह आसीन थी। विशालाक्षी पीताम्बर-वेष्ठिता थी। पीताम्बर का किनारा रक्त वर्ण था।

उसके उरु वृत्तवत् थे। शरीर सुसंयत था, गठित था, पुष्ट था। युगल पीन स्तन मिले थे। उनसे निकल रही थी यौवन-कान्ति।

मुख-मण्डल पर लावण्य की विचित्र सज्जा थी। सर्वाङ्ग सुन्दरी, आयत-श्रोणि, क्षीण कटि, यशस्विनी एकान्त मे यौवन-श्री को बटोरे बैठी थी। मरुत् ने देखा। यौवन उमंगित हुआ। काम मुस्कराया। मन चंचल हो गया।

मरुत् का दीर्घ भुजाओं में आ गई सुन्दरी। आलिंगन में अनिन्द्य सुन्दरी कम्पित हुई। उसने देखा कामार्थी आर्त्त वायु को।

"अंजने!" मरुत् ने सस्नेह कहा: "मैं तुम्हें कष्ट देना नही चाहता। सुश्रोणि!! भयभीय मत हो।"

अंजना लज्जित थीं।

"यशस्विनी! मेरे मानसिक परिरम्भन द्वारा तुम्हें वीर्यवान् बुद्धि-सम्पन्न पुत्र होगा।

:o: :o: :o:

सूर्य के प्रताप से मेरु पर्वत सुवर्ण-वर्ण हो गया था। वहाँ का राजा केशरी था। उसकी प्रियतमा पत्नी का नाम अंजना था। अंजना के गर्भ से गिरि-गुहा में विश्व का प्रथम दर्शन हनुमान् ने किया।

:o: :o: :o:

माता ने देखी शिशु की कान्ति। उसका रंग शिशिर ऋतु के शालि-तुल्य पिंगल वर्ण था।

०　　　:०.　　　.०.

माता अजना ने एक दिन फल निमित्त वन मे प्रवेश किया। क्षुधा-पीडित शिशु हनुमान् रुदन करने लगे। महावन मे बालक हनुमान् ने देखा, जपा पुष्प-वर्ण वालरवि आकाश मे उदय हो रहा था। उसे प्रतीत हुआ, किसी वृक्ष मे फल लगा है। वालजन्य चपलता में वालक कूदा। वालसूर्य-हनुमान् सूर्य-निमित्त आकाशगामी हुए। वायु ने पुत्र को सूर्य्य के समीप जाते हुए देखा। शीतल पवन सहित पुत्र-रक्षार्थ पीछे चले। हनुमान् सूर्य्य के समीप पहुँच गए।

अमावस्या का दिन था। राहु सूर्य्य को ग्रहण करना चाहता था। राहु सूर्य के रथ पर आ गया था। हनुमान् ने रथ का स्पर्श किया। राहु भयभीत हो गया। वह भाग खडा हुआ।

.०.　　　:०:　　　.०:

"वासव!" राहु ने कहा. "आज मेरे सूर्य-ग्रहण का दिन था। दूसरे राहु ने सूर्य का ग्रहण किया है। वह कैसी अव्यवस्था?"

"इन्द्र विकल हो गए। इन्द्र-सभा में खलवली मच गई। इन्द्र ने सभा-स्थल का त्याग किया।"

ऐरावत हाथी आया। इन्द्र आरूढ हुए। उनके आगे-आगे चला राहु। वेगपूर्वक राहु इन्द्र से वहुत आगे निकल गया।

इन्द्र ने देखा, पर्वत-शिखर तुल्य दौडते विशाल हनुमान् को। हनुमान् ने राहु को फल समझा। सूर्य्य का ध्यान त्याग दिया। राहु की ओर वेग से दौडे।

मुखशेष अर्थात् राहु हनुमान् को अपनी ओर आता देखकर डर गया। वह पीछे लौटा। हनुमान् को पीछा करते देखकर सिंहिका-पुत्र राहु चिल्लाया: "इन्द्र! इन्द्र!!"

राहु का करुण स्वर सुनकर इन्द्र ने उसे सान्त्वना दी. "भय मत करो। मै अभी मारता हूँ।"

केसरी के क्षेत्रज तथा वायु के औरस पुत्र हनुमान् ने ऐरावत को फल समझा। वेग से ऐरावत की ओर दौड़ पड़े। भयंकर रूप हनुमान् को वेगपूर्वक आते इन्द्र ने देखा। प्राण-भय हुआ। हनुमान पर वज्र-प्रहार किया।

वज्राघात से हनुमान आहत हुए। पर्वत पर गिर पड़े। उनका वाम हनु किंचित् टेढ़ा हो गया।

वायु ने देखा गिरते अपने पुत्र को। इन्द्र का व्यवहार अच्छा नहीं लगा। पुत्र के साथ वायु पर्वतीय गुहा मे चले गए। वायु ने अपनी शक्तियाँ समेट लीं। वायु का चलना बन्द हो गया। प्रजा में आतंक फैल गया। मल-मूत्र लोगों का बन्द हो गया। वायु का संचरण अवरुद्ध होने के कारण प्राणिमात्र काष्ठवत् हो गए। लोगों की श्वास-क्रिया बन्द होने लगी। शरीरों की सन्धियाँ टूटने लगी। विश्व क्रियाहीन हो गया।

:o: :o: :o:

गन्धर्व, देवता, असुर तथा मानव ने पितामह ब्रह्मा के चरणो मे प्रणाम किया। सब वर्णन किया : प्राण का अवरुद्ध होना, व्याप्त जड़ता, प्रकृति में फैली अव्यवस्था। देवताओं के उदर वायु अवरुद्ध होने के कारण फूल गए थे। वे बोले :

"भगवन् ! सृष्टि-रचना काल में आपने आयु का अधिपति वायु को बनाया है। पवन प्राणेश्वर है। क्या कारण है कि अन्तःपुरीय स्त्रियों-तुल्य शरीर के अन्दर प्राण-सचार रुक गया है। प्रजापते ! वायु-रोध के भयंकर कष्ट को दूर कीजिए।"

"इसका कारण है," : ब्रह्मा ने कहा : "वायु ने क्रोध किया है। वह क्षमा-योग्य है। क्रोध निष्कारण नहीं है। इन्द्र ने राहु के कारण वायुपुत्र पर क्रोध किया था। वायु प्राण है। वायु सुख है। वायु वीर्य है। वायु

विना शरीर शुष्क काष्ठवत् है। समस्त ससार वायुमय है। वायु त्याग करने पर आयु समाप्त हो जाती है। वायु शरीरधारी नही है। किन्तु वह शरीर मे निवास करता है। उसकी रक्षा करता है। उस शक्ति देता है।

"अदिति-पुत्रो! वायु के पास चलना चाहिए अन्यथा विनाश हो जायेगा" ब्रह्मा ने कहा।

ब्रह्मा जी देवता, गन्धर्वादि के साथ वायु के समीप आए। वायु पुत्र हनुमान् के घायल होने के कारण दु खी था।

पितामह को वायु ने देखा। वायु सादर खडा हो गया। आहत पुत्र के साथ पितामह के सम्मुख आया।

वायु के कानों मे कम्पित कुण्डल थे। शरीर पर स्वर्ण-आभूषण थे। मस्तक पर मुकुट था। कण्ठ में माला थी। पितामह को तीन वार उपस्थान कर चरणो में प्रणाम किया। ब्रह्मा ने आभरण-भूषित भुजाओं से वायु को उठाया। हनुमान् का स्पर्श किया। वर्षा के कारण जैसे सूखती खेती लहलहा उठती है, उसी प्रकार हनुमान् कमलयोनि ब्रह्मा के कर-स्पर्श द्वारा पुनः जीवित हो गए। पुत्र को जीवित देख कर वायु प्रसन्न हो गए। पुनः प्राण का संचार विश्व में हो गया।

ब्रह्मा ने देवताओ की ओर देखकर कहा : "इस शिशु के द्वारा देवताओ के अनेक शुभ कार्य होनेवाले है। आप लोग वर दीजिए।"

इन्द्र आनन्दित होकर कमल-माला पहनाते हुए बोले : "मेरे वज्र द्वारा इनका हनु टेढा हो गया है। अतएव शिशु की सज्ञा हनुमान् होगी। ये वज्र द्वारा अवध्य होगे।"

सूर्य्य बोले . "मै अपने तेज का शताश हनुमान् को देता हूँ। बोध होने पर मै शास्त्रो का ज्ञान दूँगा। ये वाग्मी होगे। इनकी भाषा शुद्ध होगी। अतुलनीय होगे।"

वरुण ने कहा . "वर्षा और पाश द्वारा इनकी लाखों वर्ष बीतने पर भी मृत्यु न होगी ।

काल बोले : "मै कालदण्ड से हनुमान् को मुक्त करता हूँ । ये विषाद-रहित होंगे ।"

पिंगल वर्ण एकाक्ष कुबेर ने कहा : "हनुमान् को युद्ध में विषाद नही होगा । मेरी गदा युद्ध में इनका वध नही कर सकेगी ।"

महादेव ने मुस्करा कर कहा : "यह मुझसे और मेरे आयुधों द्वारा अवध्य होगा ।"

विश्वकर्मा बोले : "मेरे वनाए जितने अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य तथा चिरंजीवी होंगे ।"

ब्रह्मा ने सबकी ओर देखकर कहा :"हनुमान् दीर्घायु होगा । महात्मा होगा । समस्त ब्रह्म दण्डो से अवध्य होगा ।"

वायु का मुख खिल गया ।

"मरुत् !" ब्रह्मा ने वायु से कहा : "तुम्हारा पुत्र मारुति अमित्रों के लिए भयंकर, मित्रों के लिए अभयंकर होगा। अजेय होगा । यह इच्छा-गामी होगा । इच्छानुसार रूप धारण करेगा । इसकी गति नहीं रुकने वाली होगी । कीर्तिमान् होगा ।"

:o: :o: :o:

वायु अपने पुत्र हनुमान् को लेकर देवी अंजना के पास आए । देवताओं के वरदान की वार्ता बताई । तत्पश्चात् अपने स्थान को चले गए ।

हनुमान् वरों के कारण महाबली हो गए । आश्रमों में चले जाते थे । निर्भय उपद्रव करते थे । स्रक्, स्रुवा, आदि तोड़ देते थे । वल्कल वस्त्रों को विच्छिन्न तथा भग्न कर दिया करते थे । मुनिगण वरों के कारण भयभीत रहते थे, कुछ बोलते न थे । केसरी तथा वायु ने हनुमान् को रोकने की चेष्टा की । हनुमान् पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा । भृगु और

# बाली

बालि-सेवित किष्किन्धा नगरी थी। नगरी ने देखा रावण को। किष्किन्धा के नागरिकों ने देखा बल-गर्वित बलशाली दशानन को। और देखा उसके सामन्तो को।

दशानन ने ललकारा। हमें मालाधारी बाली का दर्शन नहीं हुआ। राक्षसेन्द्र चकित हुआ।

युद्धार्थी रावण की घोर गर्जना से किष्किन्धा नगरी गूँज उठी। दशानन राज-पथों मे उन्मत्त वल-प्रदर्शन निमित्त घूमने लगा।

बाली के विनम्र मत्री और सामन्त लकेश के सम्मुख आए।

"वाली कहाँ है ?" रावण ने शक्तिमुद्रा प्रदर्शित करते हुए कहा।

"राक्षसेन्द्र ! राजा नही है।"

"मै युद्धार्थ आया हूँ।" रावण मेघगर्जन करता हुआ बोला।

"राजन् ! महात्मा बाली बाहर गए है।"

"यहाँ और कौन बली है, मेरा आह्वान कौन स्वीकार करता है ?" रावण ने क्रूर दृष्टि से देखते हुए कहा।

सव लोग नीरव थे।

गर्वपूर्वक रावण गरजने लगा।

'राजेन्द्र ! आप यहाँ विश्राम कीजिए। चारों समुद्रों में सन्ध्योपासना निमित्त महाराज बाली गए हैं। उनके आगमन पर आप अपनी मनोकामना पूरी कीजिएगा।

रावण गम्भीर होने लगा।

"लंकेश, शंख के समान अस्थियों का वह समूह आप देख रहे है ?" मंत्री ने चंचल नेत्रों से अस्थि-समूह की ओर उँगली निर्देश करते हुए कहा।

"किसकी अस्थियाँ है ?" रावण की दृष्टि अस्थि-समूह पर केन्द्रित होने लगी।

"यहाँ आए युद्धार्थियों की है। राजा बाली के बल और तेज की प्रतीक है।"

रावण नीरव हो गया।

"राक्षसेन्द्र ! अमृत रसपान करने पर भी राजा बाली से बचकर आप नही जा सकते।"

मन्त्री ने स्वर पर बल देते हुए कहा। रावण मन्त्री के मुख की ओर देखने लगा। मन्त्री ने पुनः कहा :

"विश्रवा-सुत ! अद्भुत संसार को भर आँखो देख लीजिए। आपके जीवन-दीप का तेल क्षीण होता जा रहा है।"

"बाली है कहाँ ?" रावण ने स्थिर होते हुए कहा।

"राक्षसेन्द्र ! यदि आप मृत्यु का शीघ्रतापूर्वक आलिगन करना चाहते है तो दक्षिण समुद्र-तट पर पहुँच जाइए। अग्नि-तुल्य तेजस्वी बाली सन्ध्योपासना-रत आपको मिल जाएँगे। वहाँ मृत्यु आपका अभिनन्दन करेगी।"

रावण का मुख लाल हो गया।

अगद आदि की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखता हुआ वह घूम पड़ा। पुष्पक-विमान खडा था। आरूढ़ होकर दक्षिण दिशा की ओर वेग से चल पड़ा।

:o: :o: :o:

रावण ने देखा। समुद्र-तट पर सन्ध्योपासना-निरत बाली को। वह हेम-गिरि-तुल्य उन्नत था। तरुणार्क सदृश सुन्दर था। रावण ठिठक गया, तेजोमय सुन्दर मानव-मूर्ति देखकर।

रावण पुष्पक से उतरा। कज्जलगिरि-सदृश बाली की ओर चुपचाप बढा। विलक्षण बाली ने देखी, आगन्तुक की रहस्यमय गति। वह सिंह-तुल्य निश्चिन्त बैठा रहा। समझा कोई शशक-शावक आ रहा है। सर्प दर्शन से गरुड किंचिन्मात्र चिन्तित नही होता। बाली भी मुहूर्त्त मात्र के लिए सभ्रान्त नही हुआ।

रावण बिल्ली की तरह दुबकता अत्यन्त समीप पहुँचा। गरुड-तुल्य बाली ने काले सर्प रावण को झपटकर पकड लिया।

रावण राजा बाली के बगल मे दब गया। बाली चला। रावण के सहयोगी, अमात्य घबरा गए। स्वामी की मुक्ति निमित्त चिल्लाते हुए बाली का अनुकरण करने लगे। बाली की गति तीव्र हुई।

राक्षसेन्द्र के अमात्य दौड़े। बाली की गति नही पा सके। शिथिल होकर बैठ गए।

रावण के साथ बाली पश्चिम समुद्र-तट पर आया। सन्ध्योपासन समाप्त किया।

अनन्तर पश्चिम समुद्र से बाली उत्तर समुद्र पहुँचा। वहाँ उसने दैनिक सन्ध्योपासन पूर्ण किया।

तत्पश्चात् पूर्व-समुद्र तट पर सन्ध्योपासन समाप्त कर राजधानी किष्किन्धा में प्रवेश किया। उसकी बगल में रावण था। उसने रावण को छोड़ दिया। रावण लज्जित था। वह नमस्तक खड़ा हो गया।

"आगन्तुक ! तुम्हारा क्या परिचय है ?--बाली ने मुस्कराते हुए पूछा।

"महेन्द्राभ ! रावण के नेत्र चंचल थे। मुद्रा विस्मयापन्न थी। नम्रता-पूर्वक कहा : "मै रावण हूँ। युद्धार्थ आया था। मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई। आप में अद्भुत बल-वीर्य है। गाम्भीर्य है। मुझे पशु-तुल्य चारो समुद्र के तटों पर घुमाया है। आपने किंचित् मात्र श्रान्ति का अनुभव नही किया। जगत् में आपके अतिरिक्त इस प्रकार मुझे और कौन घुमा सकता है। आपके समान वल केवल मन, वायु तथा गरुड़ में पाया जा सकता है।"

बाली के सम्मुख रावण अत्यन्त छोटा लग रहा था।

"हरीश्वर !" रावण ने कहा--"आपका बल देख लिया। आपके साथ सुस्निग्ध चिर सख्य-भाव स्थापित करना चाहता हूँ। अग्नि को साक्षी देकर बात कहता हूँ। हरिपुंगव ! हमारी सन्तान, दारा, नगर, राष्ट्र, भोग, आच्छादन, भोजन सब कुछ हमलोगों के अविभक्त तुल्य रहेंगे।"

बाली ने मस्तक हिलाकर स्वीकार किया। अग्नि प्रज्वलित की गई। बाली एवं रावण ने अग्नि को साक्षी माना। भ्रातृ-बन्धन मे बँध गए। प्रेम से मिल गए। प्रेमालिंगन मे आगन्तुक युद्धार्थी ने पाया प्रेम।

:o: :o: :o:

"समुद्र ! मैंने तुम्हारा अतिक्रमण किया है। मैं युद्धार्थी हूँ।" सहस्र हाथियो का वल रखने वाले महिष-रूप दुन्दुभि से महासमुद्र पार करने के पश्चात् समुद्र देवता ने कहा :

"युद्ध-विशारद । तुमसे युद्ध करने की क्षमता मै नही रखता ।"

"किन्तु मै युद्ध चाहता हूँ ।"

"तुमसे युद्ध मे समर्थ एक व्यक्ति है ।"

"शीघ्रतापूर्वक बताओ । मै वही जाऊँगा ।" गर्व से दुन्दुभि ने कहा ।

"दुन्दुभि ! भगवान शकर के श्वशुर शैलराज हिमवान् है ।"

"ठीक है । मै वही जाता हूँ ।"

दुन्दुभि गर्जना करता हिमवान् की ओर चल पडा ।

"मेरा कौन सामना कर सकता है ? मै युद्धार्थी हूँ ।" दुन्दुभि ने हिमवान् के समीप पहुँच कर कहा ।

श्वेताम्बुदाकार, सौम्य, प्रीतिकराकृति, शिखर-स्थित हिमवान ने कहा

"धर्म-वत्सल दुन्दुभि ! ! मै क्लेश का पात्र नही हूँ । रण-कौशल से अनभिज्ञ हूँ । केवल तपस्वियो को आश्रय देना मेरा कार्य है ।"

"यदि तुम भयभीत अथवा युद्ध मे समर्थ नही हो, तो मुझे उस वीर का नाम बताओ, जिससे मै युद्ध कर सकूँ !" दुन्दुभि ने कहा ।

वाक्य-विशारद हिमवान् क्रोधपूर्वक बोले · "किष्किन्धा का राजा वाली है । इन्द्र का पुत्र है । प्रतापवान् है । बुद्धिमान् है । इन्द्र ने नमुचि को युद्ध का अवसर दिया था । तुम वाली के साथ युद्ध करो । वह समर्थ है, महाप्राज्ञ है, युद्ध-विशारद है । वह किसी युद्धार्थी को वापस नही लौटाता ।"

हिमवान् की बात सुनकर दुन्दुभि गर्व से झूमा । उत्साहपूर्वक उसने किष्किन्धा की ओर प्रस्थान किया

:o: :o: .o

किष्किन्धा नगरी का द्वार-देश था । कोई भयकर गर्जन कर रहा था । वह महिषरूप था । उसके शृंग तीक्ष्ण थे । वह वर्षाकालीन जलपूर्ण-मेघ-तुल्य लगता था । वह द्वार-देश को गज तुल्य भंग करने लगा ।

अन्त.पुर-स्थित वाली ने भैरव नाद सुना । क्रोधित हो गया । नारियो से घिरा हुआ उठा । अन्तःपुर से बाहर निकला । वाली द्वार-देश पर पहुँचा । उन्मत्त दुन्दुभि का भयंकर रूप देखा । उसने सक्षेप किंतु सुसंयत संस्कृत वाणी में कहा :

"महाबली दुन्दुभि ! मैं तुम्हें जानता हूँ। इस नगर का द्वार क्यो रुद्ध कर रहे हो ?"

श्रीमान् वाली की बात सुनकर, दुन्दुभि क्रोध से उग्र हो गया। सगर्व रक्तलोचन असुर बोला :

"नारियो के मध्य स्थित होकर तुम्हें इस प्रकार की बातें शोभा नही देतीं। मैं युद्धार्थी हूँ। चुनौती देता हूँ। यदि चाहो तो रात्रिपर्यन्त इन रानियों के साथ विलास कर लो। प्रातःकाल युद्ध करना !"

वाली दुन्दुभि की गर्वोक्ति सुनकर गम्भीर हो गया। किंतु किंचित्-मात्र विचलित नही हुआ।

"वाली !" दुन्दुभि ने व्यंगपूर्वक कहा :

"मैं क्रोध का रात्रि पर्यन्त शमन करूँगा। मित्रो को सन्तुष्ट कर लो। प्रियजनो को आलिंगन कर लो। सुहृदों को जो कुछ देना हो दे दो। किष्किन्धा नगरी को भर आँखे देख लो। अपने पुत्रादि का राज्याभिषेक कर दो। तत्पश्चात् मैं तुम्हारा गर्व चूर्ण करूँगा। मत्त, प्रमत्त, भग्न, शस्त्रहीन, कृश तथा रमणियों से घिरे तुम पर आक्रमण करना इस समय उचित नहीं है। शास्त्र इसे भ्रूण-हत्या कहता है।"

वाली के मुखमण्डल पर मन्द हास्य-रेखा उभडने लगी।

वाली ने तारा आदि स्त्रियों को संकेत किया। स्त्रियाँ वहाँ से हट गईं। वाली ने सक्रोध हँसकर कहा :

"युद्ध से भय नही है। स्त्रियो के साथ नही हूँ। स्त्रियों का मेरा यह साथ युद्ध-निमित्त वीरपान मात्र है।"

वाली ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त कांचन माला कण्ठ मे डाल ली। गुँथ गया दुन्दुभि से। दुन्दुभि पृथ्वी पर गिर पडा। उसके कानो से रक्त बहने लगा।

क्रोधी वाली ने पृथ्वी पर पटक-पटक कर दुन्दुभि को मार डाला। फिर उसे उठाकर सवेग एक योजन दूर फेक दिया।

:o: :o: :o:

मतंग ऋषि का पवित्र आश्रम था। ऋषि तपरत थे। अकस्मात् आश्रम में रक्त-बूँदें गिरीं। पवित्र आश्रम में रक्तबिन्दु गिरते देखकर ऋषि क्रोधित हो गए।

उन रक्त-विन्दुओ का रहस्य जानने के लिए ऋषि ने आसन का त्याग किया। आश्रम के वाहर निकल आए।

दूर पर देखा, मृत दुन्दुभि। ऋषि मतंग ने तपोवल से जान लिया सब कुछ। ऋषि बोले :

"वाली ने उत्तम कार्य नही किया। दुन्दुभि को फेंककर आश्रम के पादपों को तोड दिया है। आश्रम में रक्त बूँदें गिरा कर इसे अपवित्र किया है। अतएव वाली अथवा उसके सामन्तादि यहाँ नही आ सकेंगे। आने पर वे नष्ट हो जायेंगे। यदि उसका कोई सचिव हो तो उसे तुरन्त आश्रम त्याग देना चाहिए, अन्यथा उसको भी शाप दूँगा। मैंने सन्तान-तुल्य वन की रक्षा की है। इस वन के फल-फूल तथा आश्रम को जो नष्ट करना चाहेगा उसको मै शाप दूँगा। भविष्य मे वाली के पक्ष का जो कोई भी यहाँ आवेगा, अनेक वर्षो के लिए पत्थर हो जायगा।"

मतग मुनि की शाप-ध्वनि समाप्त होते ही वाली पक्ष के प्राणी वन से बाहर निकल गए। मब वाली के पास चले।

वाली ने उनकी विप्लवावस्था देखकर पूछा "क्या बात है ?"

प्राणियो ने कहा : "ऋष्यमूक पर्वत तथा वन में आपके पक्ष का जो कोई जायगा, नष्ट होगा। आपने मतग का आश्रम अपवित्र किया है।"

वाली घबराया। मुनि के पास गया। प्रार्थना की। क्षमा माँगी। किन्तु मुनि वाली की ओर विना देखे ही अपने आश्रम मे चले गए। वाली शाप से व्याकुल हो गया। उसने ऋष्यमूक पर्वत प्राण-भय से त्याग दिया।

:o. .o 'o.

घोर रात्रि थी। किष्किन्धा नगरी निद्रा-मग्न थी। अकस्मात् किष्किन्धा के द्वार-देश पर भयकर गर्जन सुनाई पडा। लोगो की आँखें खुल गई। युद्ध निमित्त कोई वाली का आवाहन कर रहा था। वाली की आँखे खुली।

वाली ने सुनी गर्जना, सुना आह्वान। चुनौती उसके लिए असह्य थी। वह निकल आया अन्त.पुर से। उसने देखा, दानव के पुत्र मायावी को। वह दुन्दुभि का भाई था। परिचित था। स्त्री के कारण मायावी से उसका द्वेष हो गया था।

वाली को रोका अन्त पुर की स्त्रियों ने। उसे रोका सुग्रीव ने। वाली के पैर रुके नहीं। आगे बढ़ते गए।

महावली बाली और उसके अनुवर्ती सुग्रीव को मायावी ने देखा। साहस जाता रहा। जीवन-मोह प्रिय लगा। मायावी वेगपूर्वक भागा।

पलायित मायावी को बाली ने ललकारा। मायावी रुका नही। दौड़ पड़ा। मायावी के पीछे बाली दौड़ रहा था। बाली के पीछे सुग्रीव था।

शशि उदय होने लगा। देखने उनकी दौड़। शुभ्र बढ़ता प्रकाश सहायक हुआ मायावी का पीछा करने में। प्रकाश के कारण मायावी कही छिप नही सका।

तृण द्वारा आवृत एक दुर्गम विवर था। उसमे प्रवेश कठिन था। प्राणमोह की तीव्र कामना के कारण मायावी विवर में प्रवेश कर गया।

बाली और सुग्रीव विवर-द्वार पर ठहर गए। बाली अपना प्रयास विफल होता देखकर क्रोधित हो गया। उसकी इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो गईं।

वाली ने सुग्रीव से कहा : "सुग्रीव ! तुम विवर-द्वार पर ठहरो। मै प्रवेश कर मायावी से युद्ध करूँगा।"

"मै भी साथ चलूँ !"

"नही जब तक मैं लौटूँ नही सावधानीपूर्वक यही रहना।"

वाली ने विवर में प्रवेश किया।

सुग्रीव द्वार पर बैठ गया।

:o: :o: :o

समय बीतता गया। एक वर्ष बीत गया। सुग्रीव चुपचाप विवर के द्वार पर बैठा रहा।

विवर से निकली फेनिल रक्त-धारा। सुनाई पड़ी दानव-गर्जना। सुग्रीव काँप उठा। कान लगाकर सुनने लगा। भाई का स्वर किंचित् मात्र सुनाई नही पड़ा। सुग्रीव ने समझा, बाली मारा गया।

सुग्रीव ने विवर-द्वार शिला-खण्डो द्वारा बन्द कर दिया। विवर से किसी का बाहर निकलना कठिन हो गया। शोकार्त्त भाई को उसने जलांजलि दी।

सुग्रीव लौटा किष्किन्धा, वाली की मृत्यु के समाचार के साथ। नगरी शोकाकुल हो गई। वास्तविकता पर सुग्रीव ने परदा डाला। राजा विना राज्य चलना कठिन था। मन्त्रिगण ने मिलकर उसे बाली के स्थान पर किष्किन्धा का राजा बना दिया।

०   ०:   .०:

"देखो!—राजा!!" नागरिको मे कोलाहल हुआ।

"कौन?"

'बाली!" विस्मयापन्न लोगो ने देखा।

किष्किन्धा का राजपथ हर्षध्वनि से गूँज उठा। नागरिको ने देखा प्रिय राजा बाली को। प्रसन्नता की लहर उठी। मन्त्रिगण आनन्दित हो गए। किन्तु सुग्रीव ने देखा, महाबली बाली के रूप मे आता अपने असहनीय दुःख को।

वाली ने सुग्रीव के मन्त्रियो को पकड लिया। कठोर वचनो का प्रयोग किया। सुग्रीव प्रत्युत्तर नही दे सका। राज-मुकुट वाली के चरणों पर रख दिया। उसका अभिनन्दन किया।

बाली की गम्भीर मुद्रा मे क्रोध प्रवेश कर रहा था।

"नाथ!" सुग्रीव बोला· "अनाथ के आप नाथ है। शत्रु मानमर्दन कर विजय आपने प्राप्त की है। हम लोगो के लिए इससे अधिक आनन्द की और क्या बात हो सकती है! अनेक शलाकाओ-युक्त उदित पूर्ण चन्द्र तुल्य शोभनीय छत्र धारण कीजिए।"

वाली के अधर किंचित् खिच उठे।

"विवर-द्वार से रक्त-धारा निकलती, मैने देखी। आपकी कोई वाणी सुनाई नही पड़ी। मै मूढ हो गया था। मैने समझा, आप पराजित हो गए है। विवर-द्वार मैने बन्द कर दिया। राज्य-कार्य निमित्त मन्त्रियो ने राज्य-सिंहासन पर जबर्दस्ती अभिषेक कर दिया। सिंहासन अपनी इच्छा से ग्रहण नही किया है। राज्य आपका है। उसे ग्रहण कीजिए। पूर्ववत् आपकी सेवा करता रहूँगा।"

"लज्जा नहीं आई ? विवर मे प्रवेश करना दूर रहा, उस पर शिला-खण्ड लगा दिया कि यदि मै जीवित बच भी जाऊँ तो न निकल सकूँ ।" वाली ने सक्रोध कहा ।

सुग्रीव ने नम्रतापूर्वक कहा—"शत्रुनिषूदन । आपका राज्य मेरे पास न्यास-स्वरूप था । सचिव, प्रजादि युक्त, शत्रुहीन राज्य भोग कीजिए । सौम्य ! ! आप व्यर्थ क्रोध करते है । पुरवासियों ने जबरदस्ती राजा बनाया था, अराजकता तथा शत्रु-आक्रमण के भय से ।"

"सुग्रीव ! धिक्कार है ।" वाली ने घृणापूर्वक कहा—'मन्त्रिय ! तुम्हारा कार्य निन्दनीय कहा जायेगा ।"

प्रकम्पित सुग्रीव के भयाकुल लोचन नत थे ।

"सुनो !" बाली ने जनसमूह को सम्बोधित किया, "विदित है कि शत्रु मायावी का मैंने पीछा किया था । यह दुष्ट भाई सुग्रीव मेरे साथ गया था । इसे समझा दिया था । विवर-द्वार पर जब तक मै नहीं लौटूँ, प्रतीक्षा करे । मैंने विवर में प्रवेश किया । मायावी को मारा । उसके साथियों को मारा । मरणासन्न आर्त्त असुर दुःख से चिल्लानें लगे । उनकी आहत काया तथा मुख से रुधिर-धाराएँ निकल पड़ीं । पृथ्वी आर्द्र हो गई । रक्त-धारा विवर से बाहर निकली । शत्रुओं को परास्त किया । विवर-द्वार ढूँढ़ने लगा । द्वार नहीं मिला । विपत्ति में पड़ गया । अथक परिश्रम के पश्चात् द्वार मिला । उस कष्ट का क्या वर्णन करूँ । किस प्रकार विवर से शिलाखण्ड हटाकर मुक्ति पाई है ! 'सुग्रीव, सुग्रीव,' मै भीतर से चिल्लाता रहा । मुझे कोई उत्तर नहीं मिला । यह कहता है, मै इसका भाई हूँ ।"

सुग्रीव के प्रति सबकी आँखों में घृणा उतर आई । कठोर पापी तथा निर्लज्ज-तुल्य सुग्रीव खड़ा रहा ।

वाली ने प्रजा को सम्बोधित किया : "भ्रातृ-प्रेम त्याग कर, स्नेह को तिलांजलि देकर, राज्य-लोलुप सुग्रीव ने मेरी हत्या को सुखद समझा । राजा बनने की योजना वनाई । मेरी हत्या-निमित्त विवर-द्वार शिलाओ से अवरुद्ध कर दिया । नागरिको ! यह क्रूरकर्मा है । मानव-जीवन का

मूल्य जानता नही। यह लोभ-निमित्त, स्वार्थ-निमित्त सब कुछ कर सकता है। मै इसे निर्वासित करता हूँ।"

जनता प्रसन्न हो गई। सुग्रीव ने देखा, कल तक उसके लिए प्राण देने वाले वाली की जय-जयकार कर रहे है।

सुग्रीव के पास एक वस्त्र था। वह किष्किन्धा नगरी से निर्वासित मलिन चल पडा।

:o: :o: :o:

किष्किन्धा के द्वार-देश पर नागरिकों ने पुन. सुना युद्ध का आह्वान।

लोगो ने देखा। शत्रु नही था। कोई दानव नही था। ललकारा था, एक भाई ने। ललकारा था सुग्रीव ने।

वाली निकल आया, सुनकर युद्धार्थ आह्वान। वह हँसा, देखकर सुग्रीव को। बुध एवं मंगल ग्रहो के आकाशीय युद्ध-तुल्य दोनों भाई गुँथ गए।

शिथिलप्राय सुग्रीव की आँखें रह-रहकर वृक्ष-समूहों की ओर उठ जाती थी। व्याकुल चारो ओर देखता था। कही से सहायता की अपेक्षा कर रहा था।

नागरिक वाली का पराक्रम देखकर हर्षनाद करने लगे। सुग्रीव की निन्दा होन लगी। सुग्रीव का शरीर रक्त से आर्द्र हो गया। प्राण-पखेरू उड़ते दिखाई देने लगे। जीवन-रक्षार्थ पलायन किया।

वाली पीछे दौड़ा। पलायनशील सुग्रीव ऋष्यमूक की तरफ भागा।

सुग्रीव के प्राणों की रक्षा मतग के शाप ने की। वाली वन की सीमा पर खड़ा हो गया। क्रोधावेश मे उबलने लगा।

:o: :o: :o:

सुग्रीव खून से लथपथ भूमि पर पड़ा था। उसके समीप राम, लक्ष्मण, हनुमान् तथा वानर-समूह एकत्र था। सुग्रीव ने दु खपूर्वक राम से कहा :

"आपने मुझे आहत करवा दिया। अपने वचन का पालन नही किया। वाली का शिरच्छेद बाणो से नही किया। यदि आपने वचन नही दिया होता, तो मै उसके समीप जाने का प्रयास नही करता।"

सुग्रीव की करुण वाणी सुनकर श्रीराम ने कहा : "सुग्रीव ! सुनो !! क्रोध संवृत करो। प्रत्येक कार्य कारण होता है। तुम दोनो भाई एक-रूप हो। तुम्हारी वेशभूषा भी एक-रूप थी। मैं निश्चय नही कर सका कि तुममे कौन बाली है। सम्भव है, मेरे बाणों से तुम आहत हो जाते। तुमको मैंने अभयदान दिया है। मैं महान् पातक का भागी होता।"

सुग्रीव शान्त होने लगा।

राम ने पुनः कहा : "तुम्हारी शंका निराधार है। तुम्हें कोई चिह्न धारण कर लेना चाहिए, जिससे मैं तुम्हे संघर्ष में पहचान सकूँ।"

सुग्रीव ने राम की ओर देखा।

राम ने लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण ! प्रफुल्लित गज-पुष्प-लता-माला सुग्रीव को पहना दो।"

लक्ष्मण ने गिरि-तट से गज-पुष्प-लता उखाड़ी। सुग्रीव के कण्ठ में डाल दी। माला सुग्रीव के वक्षःस्थल पर सन्ध्याकालीन मेघयुक्त आकाश में वक-पंक्ति-तुल्य शोभा देने लगी।

:o: :o: :o:

किष्किन्धा के विशाल द्वार पर पुनः सुन पड़ी ललकार। नगर भयंकर क्रूर गर्जना से काँप गया। स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। गर्जना मे नवीनता थी। निश्चयात्मक ध्वनि थी। फल की मधुर आशा थी।

बाली अन्तःपुर में था। दुःसह गर्जना सुनी। क्रोधित हुआ। कनक-प्रभ बाली का शरीर क्रोध से तमतमा गया। वह राहुग्रस्त सूर्य-तुल्य प्रभा हीन हो गया। वह उस सरोवर-तुल्य शोभा-हीन हो गया, जिसके कमल शुष्क हो गए हों, केवल मृणाल शेष रह गया हो। वह बाहर चला।

तारा बाली से लिपट गई। उसने मार्ग रोक लिया। वह भयभीत थी। उसके मुखमंडल पर व्याकुलता थी।

उसने कहा :" सहसा नदी में उठते वेग-तुल्य इस क्रोध का त्याग कीजिए। रात्रिकालीन कुम्हलाई माला की तरह क्रोध फेंक दीजिए। आप प्रातःकाल युद्ध कीजिएगा। यह काल शुभ नही प्रतीत होता।

"क्यो ?"

"सुग्रीव शत्रु है । राज्य चाहता है । उसने युद्धार्थ एक बार आपको निमन्त्रित किया था । पराजित हुआ । अपमानित हुआ । भाग गया । पुन. उसका युद्धार्थ आह्वान करना रहस्य से खाली नही है ।"

"वह कायर है ?"

"शीघ्रतापूर्वक अहकार की उत्पत्ति, घोर युद्ध के लिए आह्वान, गर्जन मे गम्भीर भयकरता, ध्वनि मे आत्मविश्वास, केवल सुग्रीव के वल का द्योतक नहीं है । उसे किसी की सहायता प्राप्त हो गई है, अन्यथा वह नही आता । किसी वली से उसके वल की परीक्षा कर उसने मित्रता की है ।"

"उसका मित्र कौन हो सकता है ?"

"नरेन्द्र ! कल्याण की वात कहती हूँ । कुमार अंगद एक दिन वन मे गए थे । ऋष्यमूक पर्वत आपके शत्रुओं का केन्द्र है । वहाँ आपके पक्ष का कोई नही जा सकता । वहाँ षड्यन्त्र किया गया है । अंगद ने मुझसे कहा था, इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राम-लक्ष्मण का वन में आगमन हुआ है । वे महावीर हैं । अयोध्यापति दशरथ के पुत्र है । सुग्रीव के सहायक है । सुग्रीव उसके वल पर युद्धार्थ आया है । सुग्रीव से मैत्री कर लेनी चाहिए । यही नीति है । सुग्रीव पर प्रहार और राम पर प्रहार माना जायगा ।"

वरानने ! उस भाई का गर्जन कैसे सहन किया जा सकता है, जिसे पराजित कर चुका हूँ । जिसकी बात का, आचरण का विश्वास नही है । युद्ध मे पराजित नही हुआ हूँ । युद्ध से मुख नही मोड़ा है । ललकार सुनकर छिपकर बैठा नहीं रहा हूँ । मै कैसे शान्त रह सकता हूँ ? इस समय ललकार सुनकर, चुप होकर बैठ रहना, मृत्यु से अधिक दु:खदायी होगा । मै समझता हूँ, राम धर्मज्ञ है । कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उन्हे ज्ञान है । वे पाप किस प्रकार करेगे ?"

वाली ने तारा की और स्नेह दृष्टि से देखते हुए कहा :

"प्रिये ! तुम स्त्रियों के साथ लौट जाओ । तुमने सौहार्द एवं भक्ति प्रकट की है । व्याकुलता का परित्याग करो । मै सुग्रीव से युद्ध करूँगा । उसका प्राण नही लूँगा । उसके इच्छानुसार रण-क्षेत्र में व्यवहार करूँगा । तुम्हे मेरी शपथ है । तुम लौट जाओ । मै निश्चय सुग्रीव को जीतूँगा ।"

प्रियवादिनी तारा ने मन्द रुदन करते हुए बाली की प्रदक्षिणा की। स्वस्ति-वाचन किया। शोकाकुल अन्तःपुर की ओर चली।

:o: :o: :o:

"सुग्रीव!" वाली ने क्रोध से कहा: "मेरी नियतागुलि-मुष्टिका प्रहार से बचकर तुम नहीं जा सकोगे।"

हेम-पिंगलवर्ण सुग्रीव का शरीर प्रज्वलित अग्नि-तुल्य तेजोमय था। बाली ने लँगोट कस कर बाँध लिया। सुग्रीव हेम-मालाधारी बाली पर मुष्टिका-प्रहार निमित्त तत्पर हो गया। बाली ने सक्रोध कहा:

"मेरा मुष्टिका-प्रहार तुम्हारी जीवन-लीला समाप्त करेगा।"

बाली का क्रूर प्रहार सुग्रीव सहन नहीं कर सका। उसके मुख से रक्त-धारा निकल पड़ी। सुग्रीव ने एक शाल वृक्ष उखाड़ लिया। बाली पर प्रहार किया। वाली काँप गया। दोनों क्रुद्ध भाई भयंकर युद्ध में गुँथ गए।

राम द्वारा प्रदत्त नागपुष्पी माला-धारी सुग्रीव का शरीर रक्तपूर्ण हो गया। वह शिथिल होने लगा। जीवन-लीला समाप्त होना चाहती थी। बाली के प्रहारों से बचता था। इधर-उधर देख रहा था। सहायता का अपेक्षी था। शाल वृक्ष की ओर से किसी वस्तु के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। वांछित सहायता नहीं आ रही थी। सुग्रीव दुःखी हो गया।

प्रत्यंचा की क्रूर ध्वनि हुई। सनसनाता बाण चला। भयंकर बाण ने वायु-तुल्य प्रवेश किया बाली के वक्षःस्थल में। वह अन्धड़ से उखड़े वृक्ष की तरह चीत्कार करता गिर पड़ा। विस्मयापन्न उसके नेत्र चारों ओर ढूंढ़ने लगे वधिक को। उसके शीश से जल-तुल्य रक्त-धारा बह चली। वह श्रीहीन हो गया। नेत्रों में अश्रुकण छलछला आए।

:o: :o: :o:

राम ने देखा बाली का भूमि पर लुठित रक्तमय शरीर। महात्मा बाली को सारथी उसके चिरसखा, शोभा, प्राण, तेज एवं पराक्रम उसका साथ नहीं त्याग रहे थे। इन्द्र द्वारा प्रदत्त रत्न-जटित स्वर्ण माला, उसके विशाल वक्षःस्थल पर अपनी कान्त शोभा द्वारा वाली के प्राण, तेज एवं पराक्रम

की रक्षा कर रही थी। सुवर्ण-माला-युक्त वाली सध्यानुगत रक्तिम मेघ तुल्य प्रतीत होता था। प्रभाहीन अग्नि, तथा क्षीणपुण्य ययाति तुल्य वह लगता था। प्रलयकालीन भूखण्ड पर पतित सूर्य-सदृश प्रकट हो रहा था। श्री राम लक्ष्मण के साथ वृक्षो के ओट से निकले। वाली के समीप आए।

महावीर्य राम वाली के पास पहुँचे। उसने उनका महावीर-समान सम्मान किया। वाली ज्वालारहित अग्नि-तुल्य पृथ्वी पर पड़ा था। अपने वधिक को चुपचाप देख रहा था।

'बोलिए!'—वाली ने धर्म-विनय-युक्त कठोर स्वर से पूछा—"आप प्रियदर्शन नराधिप दशरथ के पुत्र हैं। मै आप से युद्ध नही कर रहा था। मैं दूसरे के साथ युद्धरत था। उस समय छिपकर प्रहार द्वारा मेरा वध कर, आपने किस गुण का परिचय दिया है? क्या यश प्राप्त किया है? मेरे वध का क्या कारण है? मैंने आपका क्या अपराध किया था?

"कुलीन, सत्त्व-सम्पन्न, तेजस्वी, चरित्रवान्, करुणामय, प्रजाहित-रक्षक, दयालु, महा-उत्साही, समयज्ञ, दृढ़व्रत, आदि गुणो से लोग आपका गुणगान करते है। दम, शम, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम, अपराधियों को दण्ड देना, राजाओं के गुण है। प्रिय तारा के निषेध करने पर भी मै आया था।

"आपके कुल-गौरव तथा सद्गुणो के कारण सचेत करने पर भी तारा की बातों पर ध्यान नही दिया था। मुझे विश्वास था कि युद्ध-नियम, राज्य-नियम, लौकिक नियमानुसार दूसरे के साथ युद्ध मे रत, मेरे वध का प्रयास आप नही करेंगे। असावधान अवस्था में प्रहार निषिद्ध माना गया है। मुझे दुःख है। मेरे विश्वास ने, आपके प्रति मेरी श्रद्धा ने, मेरा साथ नहीं दिया।

"राम!"—वाली के स्वर मे तेज था, "मै अब आपको विनिहत-आत्मा मानता हूँ। धर्मध्वज धारण करने वाले वास्तव में आप अधार्मिक हैं। आपका आचार पापपूर्ण है। तृणाच्छादित कूप-तुल्य आप भयानक हैं। आप संत-वेषधारी पापी है। भस्म से ढकी अग्नि-तुल्य आपके वेष के भीतर आपका वास्तविक रूप छिपा है। मुझे नही मालूम था, आपने छलन के लिए धर्म का आश्रय लिया है।

"मै," वाली की वाणी मे ओज आता गया! "पूछता हूँ। आपके देश मे, आपके नगर मे मैने कोई पाप किया है? मैने आपका तिरस्कार नही किया

है। पुनरपि आपने मुझे क्यों मारा ? मैं आपसे युद्ध नहीं कर रहा था। मेरा ध्यान आपकी ओर नहीं था। मेरा परिचय भी आपसे नहीं था। मैं दूसरे से युद्ध कर रहा था। पुनः मुझ निरपराध पर आपके हाथों ने कैसे शस्त्र उठाया।

राम गम्भीर हो गए। बाली ने पुनः राम को सम्बोधित किया :

"आप राजा के पुत्र हैं। प्रिय-दर्शन हैं। विश्वास-योग्य है। आपमें धर्म-चिह्न वर्तमान हैं। फिर क्षत्रिय-कुलोत्पन्न श्रुतवान्, नष्टसंशय, धर्म-लिंग-प्रतिच्छन्न कौन ऐसा क्रूर कर्म करेगा ? आप रघुकुल में उत्पन्न हुए हैं। धर्मवान् नाम से विश्रुत हैं, तथापि आप अभव्य हैं। यह भव्य रूप धारण कर पृथ्वी पर क्यों विचरण कर रहे हैं ?"

राम बाली के मुख की ओर देखने लगे।

"साम, दान, क्षमा, धर्म, सत्य, धृति, पराक्रम एवं अपराधियों को दण्ड देना राज-गुण है। भूमि, स्वर्ण एवं रूप विग्रह के कारण हैं। बोलिए ! उनका यहाँ नितान्त अभाव है। अतएव आपने मेरी क्यों हत्या की ? नय, विनय, निग्रह तथा अनुग्रह राजधर्म है। इनके पालन का समय होता है। राजा का धर्म स्वेच्छाचार नहीं है।

"आप काम-प्रधान हैं। आप क्रोधी हैं। मर्यादा में स्थिर न होकर चंचल हैं। आप राज-धर्म-ज्ञानहीन हैं। धर्म में आपकी श्रद्धा नहीं है। अर्थ-साधन में आपकी बुद्धि स्थिर है। आप इन्द्रियों के वशीभूत स्वेच्छाचारी हैं।"

राम की मुद्रा विचारशील हो गई।

"काकुत्स्थ !" बाली बोला—"निरपराध की हत्या आपने की है। इस घृणित कर्म के विषय में संतों को आप क्या उत्तर देंगे ? अपने इस निन्दित कर्म का समर्थन आप क्या कहकर करेंगे ?

"राजा, ब्राह्मण, गौ-हत्यारा, प्राणिवधरत, नास्तिक, परिवेत्ता सब नरकगामी होते हैं। सूचक, कदर्य, पितृघाती, गुरु-स्त्री-गामी निस्संदेह पापियों के लोक में जाते हैं।

"राम ! मेरा चाम भी आपके काम नहीं आ सकता। हमारी अस्थि, हमारा मांस भोजन वर्जित है।

"ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को पंच-नख वाले जीवों में गेंडा, साही, गोह, खरहे तथा कछुए का मास खाने का विधान नहीं है। आपने मुझ पच नख को मारकर किस लाभ की कामना की थी ?

"ओ! हो!!" बाली ने शोक-स्वर मे कहा—"मेरी भार्या तारा सर्वज्ञ है। मैंने उसके हितकर वचनो पर ध्यान नही दिया। उसकी बातो को नही माना। उसी का फल भोग रहा हूँ। आप जैसे स्वामी को पाकर यह पृथ्वी कैसे सनाथ कही जा सकेगी ?

"आप जैसे शठ, अपकारी, क्षुद्र, मिथ्याचारी को राजा दशरथ ने कैसे उत्पन्न किया ? चरित्र की मर्यादा जिसने छिन्न कर दी है, संतों के धर्म का जिसने उल्लंघन किया है, धर्मांकुश का जिसने त्याग किया है, उस राम-नामक व्यक्ति के हाथों में मारा गया हूँ। अशुभ, अनुचित एवं संतो द्वारा निन्दित कर्म करने पर तुम संतों से मिलने पर क्या कहोगे ? उदासीन प्राणी पर जिस विक्रम का प्रदर्शन किया है, आपको अपने अपकारियो के प्रति उसी विक्रम का प्रदर्शन करते हुए मै नही देख रहा हूँ। मुझे आपने उसी प्रकार मारा है जैसे निद्रामग्न को सर्प काटता है। आपनें छिपकर मुझे मारा है। खुलकर युद्ध करने में आपको मृत्यु का आलिंगन करना होता। सुग्रीव के हितार्थ जिस अभिप्राय से आपने मुझे मारा है, यदि आप मुझसे वही अभिप्राय प्रदर्शित करते, तो मै एक दिन में सीता को ला देता। मेरे स्वर्गारोहण पर सुग्रीव यह राज्य-प्राप्त करेगा। यह उचित है। किन्तु अधर्म से मेरा वध नितान्त अनुचित है। काल के अधीन जगत् का होना अनिवार्य है। मृत्यु मेरी होती। मै अमर नही था। इसके लिए मुझे दु:ख नही है। यदि छिपकर मारना उचित कर्म हुआ है, तो कृपया उसका उत्तर दीजिए।"

वाली का मुख सूख रहा था। उसे मर्माहत वेदना हो रही थी। वह प्रभाहीन सूर्य, जलहीन मेघ तथा बुझी अग्नि के समान प्रतीत हो रहा था।

"वाली!" राम बोले : "शैल, वन, कानन सहित यह पृथ्वी इक्ष्वाकु-वंशियों की है। पशु, पक्षी, मानवादि पर दया करना तथा उन्हें दण्ड देने का उन्हें अधिकार है। सत्य-पराक्रम राजा भरत इस समय पृथ्वी का पालन कर रहे है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के वे ज्ञाता है। निग्रह तथा अनुग्रह मे रत है। नय, विनय, विक्रम आदि राजोचित गुण देश-कालवित्

राजा भरत में स्थित हैं। हमें तथा अन्य राजाओं को आदेश है कि धर्म-वृद्धि-निमित्त राजा के संरक्षण में धार्मिक कृत्यो को देखते रहें। इसलिए पृथ्वी का भ्रमण करते हैं। धर्म-वत्सल-नृपशार्दूल भरत के पृथ्वी-पालन के समय कौन धर्म-विरुद्ध कार्य कर सकता है? स्वधर्म में स्थित रहकर, हम मार्ग-विनष्ट लोगों का राजा भरत की आज्ञा से धर्मपूर्वक विचार करते है। तुमने धर्म का अतिक्रमण किया है। तुम्हारे कर्म निन्दित हैं। राजतंत्र में स्थित होने की अपेक्षा कामतंत्र-प्रधान हो गए हो। ज्येष्ठ भ्राता अथवा विद्यादान करने वाला, पिता के समान होता है। कनिष्ठ भ्राता, गुणी शिष्य तथा पुत्र ये तीनों पुत्र-तुल्य हैं। यह धर्म है, परम्परा है। सन्तों का धर्म सूक्ष्म होता है। वह परम दुर्ज्ञेय है। प्राणियों में हृदय-स्थित आत्मा शुभाशुभ जानता है। जन्मान्ध के साथ बात कर दूसरा जन्मान्ध क्या जान सकेगा? अतएव तुम्हारे जैसा अस्वस्थ, चपलचित्त धर्म का रहस्य कैसे समझ सकता है? मै अपनी बातों को पुनः स्पष्ट करता हूँ। केवल क्रोध के कारण तुम्हें निन्दा नही करनी चाहिए।

"बोली!" राम ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"सनातन धर्म का तुमने परित्याग किया है। कनिष्ठ भ्राता की भार्या का उपभोग किया है। अतएव अपराध किया है। सुग्रीव की जीवित अवस्था में पुत्रवधू-तुल्य उसकी भार्या के साथ तुमने पाप-कर्म किया है। धर्म-परित्याग कर तुमने स्वेच्छाचरण किया है। कन्या, बहन, लघु भ्राता की स्त्री को उपभोग करने का शास्त्रीय दण्ड वध है। लोक-विरुद्ध, लोकाचार-विरुद्ध-सज्जनों द्वारा निन्दित कर्म के लिए दण्ड के अतिरिक्त और क्या प्रायश्चित्त हो सकता है? मै क्षत्रिय हूँ। तुम्हार पापाचरण असहनीय है। भरत राजा है। हम उनके आज्ञा-पालक है। धर्म की मर्यादा का तुमने अतिक्रमण किया है। तुम्हें क्षमा कैसे किया जा सकता है? स्वेच्छाचारियों को दण्ड देने के लिए मै तैयार रहता हूँ। लक्ष्मण के समान सुग्रीव से मेरी मित्रता है। वे मेरे कल्याण के लिए कटिबद्ध हैं। मैंने प्रतिज्ञा की है। मैं प्रतिज्ञा का अतिक्रमण कैसे कर सकता हूँ? सभी धर्मानुकूल महान् कारण एक साथ उपस्थित हो गए है। अतएव उक्त कारणों से मैंने तुम्हारी हत्या की है। इस लोक-नीति का तुम स्वयं समर्थन करोगे।

"वालिन् ! धर्म की दृष्टि से मैंने तुम्हारा वध किया है। मित्र का उपकार करना धर्म है। पापी राजदण्ड भोग कर निर्मल हो जाता है, स्वर्ग प्राप्त करता है। यह मनु का वचन है। शारीरिक दण्ड अथवा निर्वासन द्वारा तस्करादि पापी मुक्त होते है। यदि राजा अपराधियो को दण्ड नही देता तो वह स्वयं अपराधियों के अपराधों के पाप का भागी होता है। तुम्हारे जैसा एक श्रमण पापी था। मेरे पूर्वज मान्धाता ने शास्त्रानुसार उसे कठोर दण्ड दिया था। अन्य राजाओं ने भी पाप करने पर पापियो को दण्ड दिए है। जिन लोगो ने दण्ड द्वारा प्रायश्चित्त किया है उनके पाप दूर हो गए है। अतएव तुम्हें पश्चात्ताप नही करना चाहिए। तुम्हारा वध शास्त्रीय है। मैंने तुम्हारी हत्या नहीं की है, क्योंकि हम लोग स्वयं ,अपने अधीन नही हैं। हम राजा के अधीन हं और राजकीय नियम तुम्हारी हत्या का समर्थन करता है।

"वालिन् ! तुम्हारे वध का एक दूसरा कारण है। उसे भी तुम्हे जान लेना चाहिए। तुम मेरी निन्दा करते हो। मैंने तुम्हें छिप कर मारा है। उसके लिए मुझे पश्चात्ताप नही है, दुःख नही है, जाल, पाश तथा नाना प्रकार के कपट द्वारा मनुष्य पशुओ एवं पक्षियो को पकड़ते है; परन्तु इसे कोई दोष नही मानता। राजा मृगया निमित्त जाते है। अतएव मृगया-स्वरूप तुम्हारा वध किया है। तुम मुझसे चाहे युद्ध करते अथवा नहीं, मैं तो तुम्हे मारता ही। तुम शाखा-मृग हो।"

वाली की अवस्था बिगड़ रही थी। वह बोला :

"मुझे दुःख तारा के लिए नही है, बान्धवों के लिए नही है। मुझे दुःख है सुवर्ण अंगदधारी अंगद के लिए। वह बालक है। आपको उसकी रक्षा का ध्यान रखना चाहिए। सुग्रीव एवं अंगद पर आपका समान भाव होना उचित है।"

"वालिन् !" राम ने शान्तिपूर्वक कहा : "तुम्हे चिन्ता नही करनी चाहिए। राजा दण्डनीय को दण्ड देता है। दण्डनीय दण्ड पाता है। कार्य-कारण सिद्ध होनें के कारण दोनों दुःखी नही होते। अतएव दण्ड पा जाने के कारण तुम्हारा पाप नष्ट हो गया। दण्ड द्वारा तुमने धार्मिक गति पाई है। शोक, मोह एव भय का तुम सर्वथा त्याग कर दो।"

:o: :o: :o:

विद्युत्-सदृश समाचार किष्किन्धा में फैल गया कि वाली का वध हो गया। बाली के समर्थकों में आतंक छा गया। वे भागने लगे। उन्हें जीवन-भय उत्पन्न हो गया। जिन लोगों ने सुग्रीव को विफल-मनोरथ करने में बाली का साथ दिया था, वाली के पश्चात् सुग्रीव के राज्य में उनकी जीवन-रक्षा नहीं हो सकेगी, इस भय ने उन्हें व्याकुल कर दिया। वे भागने लगे।

शोकार्त्त तारा ने दुनिया का पलटता रूप देखा। वह उनसे कह उठी—"क्रूर भाई ने यदि राजा की हत्या की है, तो आप लोग क्यों भयभीत होते हैं?"

किसी ने ध्यान नहीं दिया। तारा बढ़ चली पति के वध-स्थल की ओर।

तारा को रोकते हुए लोग कहने लगे—"देवि, वहाँ मत जाओ। लौट चलो। पुत्र अंगद की रक्षा करो। सेना राजा की मृत्यु के कारण यत्र-तत्र भाग रही है। वीरों के साथ, शूरों के साथ नगरी की रक्षा और अंगद का राज्याभिषेक करो। हम राज्यारूढ़ बाली के पुत्र अंगद के अधीन रहेंगे। उन्हें राजा मानेंगे। उनकी आज्ञा का पालन करेंगे। सुग्रीव-पक्ष के लोगों का शीघ्र यहाँ आगमन होगा। उनका सामना करना चाहिए।"

तारा ने भयाकुल मित्रों की ओर देखा। वे समयानुकूल संतोषप्रद वचन कह रहे थे।

चारुहासिनी तारा बोली : "महाभाग पति की मृत्यु के पश्चात् राज्य से, पुत्र से, अथवा स्वयं अपने शरीर से क्या लाभ? मुझे पति के पास जाना है।"

दुखित तारा अंगद के साथ अपने पति के दर्शन निमित्त अग्रसर हुई।

वाली के भूमिशायी शरीर के पास धनुर्धारी राम धनुष का सहारा लिए खड़े थे। वहाँ लक्ष्मण और सुग्रीव थे। तारा वाली की मृत्यु-शय्या देखकर उद्विग्न हो गई, व्यथित हो उठीं, पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके करुण रुदन से दिशाएँ दु.खी हो गईं।

तारा के साथ अंगद को सुग्रीव ने देखा। उसकी आँखें झुक गईं। उसे विषाद हुआ।

:o: :o: :o:

शोक-विह्वल तारा पति से लिपट कर रोने लगी। उसने निश्चय किया, अन्न-जल त्याग कर प्राण-त्याग करूँगी।

तारा का अभिप्राय समझ कर हनुमान् ने कहा :

"देवि! गुण-दोष-कृत फल, स्वकर्म फल, शुभाशुभ कर्म का फल शान्ति-पूर्वक अन्य लोक में भोग किया जाता है। तुम दीनता के कारण स्वयं दीन हो गई हो। ऐसी अवस्था मे तुम क्या किसी के लिए शोक करोगी ? जीव शरीर में बुद्बुद तुल्य है। वह किसके लिए सोच करेगा ? देखो ! अंगद कुमार है। उसके पालन-पोषण का तुम्हे ध्यान करना है। जीव का जीवन-मरण अनिश्चित है। तुम्हारा कर्त्तव्य पारलौकिक शुभ कर्मों का प्रतिपादन है। रुदन, शोक आदि मिथ्या लौकिक कर्म हैं। राजा वाली राज-कर्म की फल-प्राप्ति निमित्त महाप्रस्थान कर रहे हैं। उन्होंने अन्तिम अध्याय वन्द किया है। उन्होंने साम, दाम एवं क्षमा का व्यवहार समयो पर किया है। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। वह धर्मात्माओ के लोक मे गए हैं। तुम अनाथ नही हो। अंगद और किष्किन्वा का साम्राज्य तुम्हारा है।

"भामिनि! शोक परित्याग कीजिए। शास्त्रों मे पुत्र निमित्त धर्म-विहित कार्यों का उल्लेख है। उन्हें तुम्हे करना चाहिए। राजा वाली के निमित्त उचित कर्त्तव्यों का पालन करना आवश्यक है। राजा वाली का संस्कार कीजिए। अंगद का अभिषेक कीजिए। आप राज-सिहासन पर अंगद को देखेगी, तो आपको शान्ति मिलेगी।"

"हनुमान्!" तारा बोली : अंगद के समान महान् पुत्र की अपेक्षा वीर पति का आलिगन मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है। मै किष्किन्धा की प्रभु नहीं हो सकती। अंगद राजा नहीं हो सकता। अगद का पितृव्य सुग्रीव समर्थ है। वही इसके अधिक निकटवर्ती है।

"हनुमान्! पुत्र का वास्तविक वन्धु पिता, तत्पश्चात् पितृव्य है; माता नही है। पति जिस शय्या पर शयन कर रहे हैं उससे उत्तम योग्य शय्या मेरे लिए त्रैलोक्य में और कौन हो सकती है ?"

वाली के ऊर्ध्व श्वास की गति तीव्र हो गई। उसकी आँखे कुछ देखने के लिए घूमने लगीं। उसने अपने सम्मुख सुग्रीव को देखा।

"सुग्रीव!" वाली ने सस्नेह स्पष्ट स्वर में कहा: "पूर्वजन्म के अवश्यम्भावी पाप के कारण मुझमें बुद्धि-मोह हो गया था। मेरे उन दोषों पर तुम्हें ध्यान नहीं देना चाहिए। हम लोगों के भाग्य में भ्रातृ-प्रेम और सुख एक साथ नहीं लिखा था। विपरीत घटनाएँ घटी हैं। मैं यम के साथ जा रहा हूँ। तुम्हें राज्य-भार ग्रहण करना चाहिए। जीवन, राज्य, विपुल श्री तथा अनिन्दित यश का मैं त्याग कर रहा हूँ। इस समय कुछ कहूँगा। उनका करना कठिन है, तथापि तुमको उनको करना चाहिए।"

विलखते अंगद की ओर देखकर वालि ने कहा: "सुख में वर्धित, आँसुओं से भरे, पृथ्वी पर पड़े इस वालक अंगद की ओर देखो। प्राणों से प्रियतर इसे अपने पुत्र के समान समझना। इसका प्रतिपालन करना। तुम्हीं इसके पिता, पितामह, परिभ्राता तथा भय के समय अभय देने वाले हो। यह तारा का श्रीमान् पुत्र तुम्हारे समान पराक्रमी है। वलवान्, तेजस्वी, तरुण तारा-तनय युद्ध में पराक्रम करेगा।"

शोक-विपन्न तारा की ओर देखकर वाली ने कहा: "सुग्रीव, सुषेण की पुत्री तारा सूक्ष्म विषयों एवं औत्पातिक सकेत निर्णय में निपुण है। उसकी सम्मति का परिणाम विपरीत नही होता। जिस कार्य में उसकी अनुमति होती है, वह कार्य अवश्य सिद्ध होता है। निःशंक होकर राम का अनुसरण करना, अन्यथा पाप के भागी होगे, तिरस्कृत होगे। राम तुम्हारा वध कर देंगे। यह दिव्य कांचन माला धारण करो। मृत्यु के पश्चात् मेरे साथ यह माला श्रीहत हो जायगी।"

सुग्रीव कान्तिहीन हो गया। राज्य-प्राप्ति का उत्साह जाता रहा। शोक-संतप्त हो गया। भ्रातृ-प्रेम ने जोर मारा। वैर का लोप होने लगा। मुख-मंडल राहु-ग्रस्त चन्द्रमा-तुल्य मलीन हो गया।

"अंगद!" वाली ने स्नेहपूर्वक कहा—देश, काल, प्रिय, अप्रिय का विचार तथा सुख-दुःख का सहन करते हुए सुग्रीव के अधीन रहो। मैंने तुम्हारा जिस प्रकार लालन-पालन किया है। उसकी अपेक्षा सुग्रीव से नहीं करनी चाहिए। यह स्वाभाविक है। सुग्रीव के शत्रु तथा उसके शत्रु के मित्र से मित्रता मत करना। कर्त्तव्य-परायण तथा जितेन्द्रिय वनकर सुग्रीव के अधीन रहना। अति प्रलाप अथवा प्रलाप का नितान्त अभाव न करके मध्यम भाव से कालयापन श्रेयस्कर होता है।

कहते-कहते वाली के नेत्र आकाश की ओर उठ गए। दाँत खुल गए। प्राण पखेरू उड़ गए।

तारा लोक-विख्यात पति का मुख सूँघती हुई रो उठी।

"आपने मेरी बातों का अतिक्रमण किया। आप विषम दु:खदायी वसुधा-तल पर शयन कर रहे हैं। क्या यह पृथ्वी मुझसे आपको अधिक प्रिय है? साहसप्रिय वीर! भाग्य ने सुग्रीव का साथ दिया है। अपने उपासक, मित्र, सहचर, पारिषद, सखा, अमात्यादि और अंगद का करुण विलाप सुनकर आप क्यो नहीं बोलते? विशुद्ध सत्य का साथ करने वाले, युद्धप्रिय, जिन शय्याओं पर आपने अपने शत्रुओं को शयन कराया था, आज उस पर स्वय क्यों शयन कर रहे हैं? मुझे एकाकी त्याग कर आप कहाँ चले? क्या वीरों के साथ स्त्रियो को विवाह नही करना चाहिए? शूर की हत्या के पश्चात् उसकी भार्या की यह अवस्था? मेरा सब कुछ नष्ट हो गया है। मै विधवा हो गई। राजरानी का अभिमान भंग हो गया। सत्कार जाता रहा है। सुखों का नाश हो गया। पतिहीन स्त्री, चाहे युवती हो, चाहे पुत्रवती हो, चाहे धन-धान्य-पूर्ण हो, सुख से घिरी हो, तथापि है विधवा। मेरा हृदय लौह-तुल्य है। आपकी शोचनीय अवस्था देखकर, उसके सैकड़ो टुकड़े नही हो जाते। आज मै आप का आलिंगन नही कर सक रही हूँ। इस दारुण वैर-कथा में सुग्रीव ही कृत-कृत्य हुआ है।"

जीवन की अनेक घटनाओं की सुखद स्मृतियाँ तारा की जिह्वा से प्रस्रवित होकर उसे शिथिल करने लगीं।

नील ने वाली के शरीर मे बिंधा वाण निकाल लिया।

वाण के निकलते ही रुकी रक्त-धारा बह चली।

रक्त को यत्न पूर्वक पोंछती हुई तारा अगद की ओर देखती हुई बोली: "पुत्र! अपने पिता की दारुण अन्तिम अवस्था देखो। प्राक्तन पापों द्वारा संचित वैर का आज अन्त हो गया। बाल-सूर्य्य के समान उज्ज्वल तन ने यम-सदन की ओर प्रस्थान किया। अगद! अपने पिता का अभिवादन करो।"

दु:खी अंगद पिता के चरणों पर गिर पड़ा। बोला "पितः! मै अगद हूँ।"

:o: :o: :o:

तारा तथा अंगद के दुःख-वेग, उनकी करुणावस्था ने सुग्रीव का हृदय पिघला दिया। मुख-मण्डल आँसुओं से तर हो गया। मानसिक कष्ट से व्याकुल हो गया। कान्ति मलिन हो गई। उसे संताप के साथ परिताप होने लगा। पश्चात्ताप के साथ वैराग्य उत्पन्न हो गया। वाली के समीप से उठा। भृत्यो के साथ शनैः-शनैः राम के समीप गया।

राम धनुष-बाण सहित बैठे थे। सुग्रीव शोक से बोला :

"नरेन्द्र ! आपने प्रतिज्ञा का पालन किया। प्रतिज्ञा का फल प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। किन्तु राजकुमार ! जीवन निन्दनीय हो गया है। भोगों से निवृत्त हो गया है।

"राम ! महिषी तारा का करुण विलाप सुन रहा हूँ। पुरजन का शोकार्त्त, दुःखपूर्ण, उदास मुख देख रहा हूँ। जीवन के संशय की भावना अङ्गद में देख रहा हूँ। मेरा मन राज्य-सुख से विरत हो गया है।

"ऐक्ष्वाकवर ! भाई के तिरस्कार के कारण मैं क्रोधित हो गया था। अमर्षवश भ्रातृवध की कामना की थी। वध के पश्चात् मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। भ्रातृवध का दुःख आजन्म मुझे संतापित करेगा। ऋष्यमूक पर्वत पर जीवन-यापन कर लेता। वह मेरे लिए कल्याणकर था। लेकिन मैं देखता हूँ। भाई की हत्या के पश्चात् स्वर्ग का राज्य भी श्रेयस्कर नहीं है। महात्मा वाली ने मुझसे कहा था : 'सुग्रीव, मैं तुम्हे मारना नहीं चाहता। मैं तुम्हें कष्ट नही देना चाहता।' इस प्रकार के गौरवपूर्ण वचन महान् वाली जैसे सत्य-पराक्रमी के ही अनुरूप थे। और छल से भाई का क्रूरतापूर्वक वध कराना हुआ मेरे अनुरूप। राज-सुख तथा भ्रातृ-वध के अनन्तर होने वाले दुःखों को विचारकर अत्यन्त स्वार्थी भाई भी मेरी शोचनीय अवस्था देखकर अपने भाई का कभी वध करवाना पसन्द नहीं करेगा।

"पुरुषोत्तम !" सुग्रीव ने रुद्ध कण्ठ से कहा :

"वाली ने अपने गौरव में कलंक के कारण मेरा वध करना नही चाहा था। मैं अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण उसका वध करने पर तुल गया। वाली ने वृक्ष की शाखा से मुझे मारा था। मैं कातर होकर आपको पुकारने लगा। भाई ने स्नेह से मुसकराकर कहा था—'सुग्रीव ! पुनः ऐसा काम मत करना। जाओ लौट जाओ।' वाली ने भ्रातृत्व, ममता तथा धार्मिकता का परिचय

दिया। मैंने प्रदर्शित किया क्रोध, काम और चपलता। अचिन्त्य, परिवर्जनीय, अनीप्सित, अनवेक्षणीय भ्रातृ-वध का पाप जिसे सोचना भी अनुचित है, मैंने कर डाला। मेरा पाप वृत्रासुर-वध-कर्त्ता इन्द्र के पाप-तुल्य है। इन्द्र के पाप को पृथ्वी, जल, वृक्ष तथा स्त्रियों ने इच्छापूर्वक बाँट लिया था किन्तु मेरे पाप का भागी कौन होगा? अधर्मयुक्त, वंशनाश-युक्त इस निन्दनीय कर्म द्वारा मैं प्रजा का सम्मान कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? राज्य पाने की बात कौन कहे, मैं यौवराज्य योग्य भी नही रह गया। क्षुद्रों के समान मैंने लोक-निन्दित कर्म किया है। जिस प्रकार मेघ-जलधारा वेगपूर्वक पृथ्वी के अधोभाग की ओर त्वरित गति से चलती है, उसी प्रकार चारों ओर से शोक एवं दुःख मेरी ओर दौड़ते चले आ रहे हैं। इस असह्य पाप से मेरे हृदय की साधु-वृत्ति नष्ट हो रही है।

"राघव!—अङ्गद के शोक-संताप का कारण मैं हूँ। वह स्थान समीप नही है जहाँ जाकर मैं वाली को देख सकूँ। मुझे उसने देश से निर्वासित किया था, मैंने उसका निर्वासन संसार से कर दिया है। अङ्गद शायद दुःख के कारण नही जी सकता। पुत्र तथा पति के दुःख के संताप के कारण तारा प्राण-विसर्जन कर देगी।

"वीरवर! मेरे लिए उचित है, भाई के साथ अग्नि-प्रवेश करूँ। अपनी लीला समाप्त कर दूँ। महात्मन्! मेरी मृत्यु के पश्चात् आपके कार्यों मे किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न न होगा। मेरे विश्वासपात्र मित्र तथा सखा सीता का अन्वेषण करेंगे। अतएव मुझ कुल-हन्ता, अयोग्य, अपराधी को आप मरने की आज्ञा दीजिए।"

सुग्रीव की करुण वाणी सुनकर राम के नेत्र भर आए। राम उदास हो गए। राम ने तारा को देखा। वह मृत पति के आलिंगन में अचेत पड़ी थी। राम मुहूर्त्त मात्र नीरव हो गए। महान् क्लेश का अनुभव करने लगे। राम वाली के समीप पधारे।

अमात्य तारा को पति से अलग करने लगे। वह पति से अलग नहीं होती थी। उसके शव से लिपट कर गिर पड़ती थी। व्याकुल और अस्थिर हो जाती थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि धनुष-बाणधारी, तेजस्वी, राज-लक्षण-

युक्त, राजीव लोचन, अपरिचित युवक पर पड़ी। तारा समझ गई, यह व्यक्ति पतिहन्ता राम है। वह दुःख-भार से दबी था। कम्पित थी। तीव्र वेग से राम के समीप आई। वह खोई-सी थी। उसे अपने स्त्रीत्व का ज्ञान नहीं था।

"राजन्!" तारा बोली : "आप अप्रमेय हैं। आप अजेय है। आप जितेन्द्रिय हैं। आप धर्मपालक हैं। आप विलक्षण है। आप अक्षीण-कीर्ति हैं, क्षमावान् हैं। आप किंचित् रक्तलोचन हैं। हाथों में धनुष-वाण हैं। आप महावली हैं। गठित शरीर हैं। मानव तथा दिव्य देहों द्वारा प्राप्त दोनों अभ्युदयों से युक्त हैं। क्रूर वाणों द्वारा आपने मेरे प्रिय पति की हत्या की है। कृपाकर उन्ही वाणों द्वारा मुझे पति के समीप पहुँचा दीजिए। सीता के विना ऋष्यमूक पर्वत-तट पर आप उदास रहते हैं। दुःखी रहते हैं। स्वर्ग में वाली क्या मेरे विना उदास और दुःखी नहीं होंगे? स्वर्ग की उत्तम वालाएँ, अप्सराएँ उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकेंगी। पत्नी विना पति कितना दुःखी होता है, इसका अनुभव आप स्वयं कर रहे हैं। मेरा वध कीजिए। स्वर्ग में विरह-दुःख से मेरे पति को वचाइए!"

राम का मस्तक नत था।

"राम!" तारा ने राम के नतमस्तक की ओर देखते हुए कहा : "आप स्त्री-हत्या से डरते है। स्त्री-हत्या पाप समझते हैं, तो मेरा वध वाली की आत्मा समझकर कीजिए। हत्या का पाप आपको नही लगेगा।

"पत्नी को शास्त्रीय कार्यों में, वैदिक कार्यो में श्रुतियों में पति से अभिन्न माना गया है। ज्ञानियों के लिए दारा-दान से वढ़कर किसी दूसरे दान का महत्व नहीं है। वीरवर! धर्म समझकर, आप मेरा वध कीजिए। वाली को आप मुझ दारा का दान करेंगे। पवित्र दान-प्रभाव द्वारा आपको स्त्री-वध का पाप नहीं लगेगा। मैं आर्त्त हूँ। अनाथ हूँ। पति-आलिंगन से विमुख हूँ। इस अवस्था में मुझे जीवित रहने देना उचित नही है। पति विना मैं वहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकूँगी। अतएव आपको मेरा वध करना चाहिए।"

"वीर भार्ये!" राम ने गम्भीरतापूर्वक कहा : "मृत्यु की कामना मत करो। विधाता ने सृष्टि की है। लोकों की रचना विधाता की रचना है।

उसी लोक-विधायक ने सुख और दु.ख से जगत् को संयुक्त किया है। त्रैलोक्य-निवासी विधाता के इस विधान को जानते हैं। विधाता के विधानों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। सुख-उपभोग पूर्ववत् करोगी। अंगद युवराज पद पर अभिषिक्त होगा। शूरों की पत्नियाँ विलाप नहीं किया करती।"

राम ने पुन. कहा : "शोक, संताप द्वारा मृतक का किसी प्रकार कल्याण नहीं होता। मृत्यु के अनन्तर विहित कर्मों का सम्पादन करने का उपक्रम करो। लौकिक व्यवहारों को इस समय करना चाहिए।"

राम ने गम्भीरतापूर्वक कहा : "नियति लोक का कारण है। नियति कर्म का साधन है। नियति सब भूतों को कार्यों मे नियुक्त करने का कारण है। कोई किसी को किसी कर्म मे नही लगाता। कोई किसी को काम देने मे समर्थ नही है। मानव स्वभाव के अधीन है। स्वभाव कर्म के अधीन है। काल अपनी बनाई व्यवस्था का स्वय अतिक्रमण नही कर सकता। काल कभी नष्ट नही होता। स्वभाव के अनुसार कार्य होते रहते हैं। काल बन्धनहीन है। काल के विरुद्ध पराक्रम व्यर्थ हो जाता है। मित्र, जाति, सम्बन्धी मिलकर काल से रक्षा नही कर सकते। ईश्वर जीव के अधीन नही है। साधुओं को काल के परिणाम को सावधानी से लक्ष्य करना चाहिए। धर्म, अर्थ एवं काम काल के अनुसार होते हैं। साम, दान तथा अर्थ के साथ बाली स्वर्ग गए हैं। यही उनका स्वभाव था। यही स्वभाव हम सब लोगों का है। उन्होंने अपने अर्जित धार्मिक कार्यों के कारण स्वर्ग प्राप्त किया है। सर्वश्रेष्ठ गति पाई है। शोक करना व्यर्थ है।"

"सुग्रीव!" लक्ष्मण ने सुग्रीव के समीप जाकर कहा : "बाली का अङ्गद तथा तारा के साथ रहकर प्रेत-कार्य सम्पादन करो। सेवकों को आज्ञा दो। दाह की व्यवस्था की जाय। दिव्य शुष्क काष्ठ, चन्दनादि मँगाए जायँ। तुम्हें स्वयं अचेत नहीं होना चाहिए। दीन अंगद को आश्वासन दो। किष्किन्धापुरी तुम्हारी है। उसे सम्हालो। इस समय किंकर्तव्य-विमूढ़ होना उचित नही है।"

"अङ्गद!" लक्ष्मण ने सस्नेह कहा : "तुम माला, विविध वस्त्र, घृत, तेल, सुगन्धित वस्तुएँ तथा अन्य आवश्यक सामग्री स्वय लाओ।"

"तारा !" लक्ष्मण ने कहा : "तुम शीघ्र शिविका लाओ। इस समय शीघ्रता करना आवश्यक है। वलवान् शिविका-वाहक होने चाहिएँ, जो वाली को शव-शिविका श्मशान ले जा सकें।"

:o: :o: :o:

शिविका आई। शिविका सुन्दर थी। रथ समान थी। शिविका मध्य राजा-योग्य आसन वना था। शिविका नाना प्रकार के वृक्षों एवं पक्षियों के कृत्रिम चित्रों से चित्रित थी। चित्र-स्वरूप पदातिक सैनिकों के चित्रों से भरी प्रतीत होती थी। वह सुन्दर, दर्शनीय शिविका सिद्धों के विमान-तुल्य थी। शिविका में खिड़कियाँ वनी थीं। खिड़कियों में जालियाँ लगी थीं। उनमें काष्ठ के क्रीड़ा-पर्वत वने थे। वह सुन्दर आभूषण तथा मालाओं से सजाई गई थी। गुहा-गहन-कानन के दर्शनीय प्राकृतिक चित्रों से चित्रित थी। रक्त चन्दन द्वारा विभूषित थी। नाना प्रकार के सुरभित पुष्पों से आच्छादित थी।

राम ने शिविका देखी। लक्ष्मण से कहा : "वाली को यहाँ से शीघ्र ले जाकर उसका अन्तिम संस्कार करना चाहिए।"

सुग्रीव अंगद के साथ वाली के समीप आए। अंगद की सहायता से वाली को सुग्रीव ने रोते हुए उठाकर शिविका में रखा। विविध अलंकारों, मालाओं एवं वस्त्रों द्वारा वाली को विभूषित किया गया।

सुग्रीव ने कहा : "और्ध्वदैहिक कार्य क्रियानुकूल किया जाय। विविध रत्न शिविका के आगे लुटाए जायँ। राजाओं का संस्कार जिस प्रकार होता है, उसी प्रकार किया जाय।"

क्रम से आगे-आगे रत्न लुटाते लोग चले। वान्धव चले। वाली की वशवर्ती स्त्रियाँ चलीं। और फिर तारा आदि स्त्रियाँ विलाप करती हुई चली।

शैल के पास, जलपूर्ण नदी के तटपर, एकान्त स्थान में, शिविका रखी गई। लोग चिता की रचना करने लगे। शव-यात्री एकान्त स्थान में वैठ गए। वाली का मस्तक अपनी गोद में लेकर तारा करुण विलाप करने लगी।

शोकाकुल रोते हुए अंगद ने सुग्रीव के साथ पिता के शव को चिता पर रखा। अपने पिता की चिरयात्रा का विचित्र प्रस्थान देख कर अंगद व्याकुल हो गया। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल होने लगीं।

अंगद ने चिता में अग्नि लगाकर वाईं ओर से चिता की प्रदक्षिणा की।

:o: :o: :o:

विधिपूर्वक अग्नि-संस्कार समाप्त हुआ। सब लोग शुभ जलवाली नदी के तट पर आए। अंगद को आगे कर सुग्रीव एवं तारा सहित लोगों ने प्रेत को जला दिया। सुग्रीव के समान ही दुखी राम ने प्रेत-कार्य सम्पादन करवाया।

---

वाल्मीकीय रामायण : किष्किन्धा काण्ड . ८–२५
उत्तर काण्ड : ३४
आनन्द रामायण
महाभारत सभापर्व . ६ . १४, ३८ . २६
वन पर्व २८१, १४७ : २८, २८० १८, ३०–३६, २८१, २८८ : १४
पुराण : ब्रह्माण्ड ३–७–२१४, २१८, २६४
भागवत : ६–१०–१३
पद्म पाताल खण्ड : १०७

# सम्पाती

"अंगद !" हनुमान् ने कहा—"लौट चलना चाहिए, यही नीति है।"

"नहीं, मैं नहीं जा सकूँगा। क्या मुख लेकर लौटूँगा ? जिस कार्य निमित्त हम नियुक्त किये गए थे, क्या उसे पूर्ण किया ? मै यहीं प्रायोवेशन करूँगा।"

कुमार अंगद की आँखों में अश्रु-कण थे।

वृद्धों का अभिवादन किया। कुशासन पर बैठ गए। कोई वहाँ से हटा नहीं। अंगद ने कहा :

"आप लोग जाइए। राम से कह दीजिए। मैं अन्न-जल त्याग करूँगा। अब इस शरीर का कोई उपयोग नहीं रह गया।"

किसी ने साथ नहीं त्यागा।

कोई हटा नहीं।

कोई हिचका नही।

सबने किया आचमन।

सब बैठ गए पूर्वाभिमुख अंगद को घेरकर।

समुद्र के उत्तर-तट पर पूर्वाभिमुख दक्षिणाग्र कुश बिछाकर बैठ गए।

:o: :o: :o:

वानरों का सामूहिक प्रायोवेशन था। सबने देखा आगन्तुक वृद्ध सम्पाती को। सम्पाती ने सुनी अंगद द्वारा वर्णित राम-कथा। जटायु का प्रकरण आया। सम्पाती चौंक उठा। देखने लगा, बोलते हुए अंगद की ओर एकटक दृष्टि से। वह बोला :

"मेरे भाई जटायु से किसका युद्ध हुआ था ?"

"रावण से।"

"कहाँ ?"

"जन-स्थान में।"

विस्मयापन्न सम्पाती का मुख सूख गया। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

अंगद ने कहा : "मान्यवर ! हमारे पितामह ऋक्षराज थे। उनके पुत्र वाली तथा सुग्रीव हुए। मैं बाली का पुत्र अंगद हूँ।

"पिता की मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव किष्किन्धा के राजा हुए। मै हुआ युवराज। हम लोग माता सीता के अन्वेषण मे निकले है। हमें एक अवधि दी गई थी। जिसके भीतर लौट जाना था। अवधि बीत गई।"—कहकर अंगद उदास हो गए।

"कहाँ-कहाँ अन्वेषण किया ?" सम्पाती ने पूछा।

"समस्त दण्डकारण्य खोजा। अनन्तर अज्ञानवश धरणी की एक बिल में चले गए। मय द्वारा निर्मित माया-विवर में एक मास बीत गया। राम, लक्ष्मण एवं सुग्रीव के क्रोध-सहन की क्षमता हममे नही है। अतएव प्रायोवेशन निमित्त बैठे हैं। यही हमे प्राण-विसर्जन करना है।"

"सुनो !" सम्पाती ने कहा "जटायु मेरा कनिष्ठ भ्राता था। भ्रातृवध का प्रतिशोध वृद्धावस्था के कारण नही ले सकता हूँ। अतएव अप्रिय वात श्रवण कर मैं बैठा हूँ।"

"पुरा काल में इन्द्र ने वृत्र का वध किया था। इन्द्र-जय की हमें इच्छा हुई। हम लोग रश्मिमाली सूर्य के पास पहुँचे।

"आकाश-मार्ग द्वारा स्वर्ग पहुँचना चाहते थे। मार्ग में सूर्य्य मिल गए। मध्याह्न काल था। जटायु जलने लगा। उसकी रक्षा के निमित्त मैंने उसे अपने पखो से ढक लिया। जटायु की रक्षा हो गई। मेरे दोनो पंख भस्म हो गए। मैं विन्ध्य पर्वत पर गिर गया। मुझे जटायु का कुछ पता नही मिल सका।"

"सम्पाती !" अंगद बोले : "आप जटायु के भाई है। अतएव आपसे सहायता अपेक्षणीय है। राक्षसाधम रावण का निवास-स्थान यदि ज्ञात हो तो कहिए।"

"मेरे पंख जल गए है। मै पंखहीन हो गया हूँ। शक्तिहीन हूँ। केवल मौखिक सहायता दे सकता हूँ। मै वरुण-लोक जानता हूँ।" वामना-

वतार में विष्णु ने जहाँ-जहाँ पद रखे थे, जानता हूँ। देवासुर-संग्राम तथा अमृत-मन्थन देख चुका हूँ। वृद्धावस्था ने मेरी शक्ति हरण कर ली है। मेरे अंग शिथिल हो गए है। किन्तु राम का कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है।"

'सम्पाती ने दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए कहा :

"रूपसम्पन्ना, सर्वाभरण-विभूषिता तरुणी सीता को दुरात्मा रावण हरण कर ले जा रहा था। मैंने देखा। भामिनी राम-राम, लक्ष्मण-लक्ष्मण रुदन करती आभूषणों को फेंकती गात्रों को पटक रही थी। राम नामोच्चारण के कारण उन्हें मैं सीता समझता हूँ।

"सुनो, सम्पाती ने शनैः-शनैः कहा : "वह राक्षस महर्षि विश्रवा का पुत्र तथा वैश्रवण का भाई है। लंका नगरी मे निवास करता है।

"यहाँ से सौ योजन दूर समुद्र मे एक द्वीप है। चारों ओर समुद्र से घिरा है।

"विश्वकर्मा ने स्वर्णमयी लंकापुरी वनाई है। आप लोग सीता को वहीं देखेंगे। नगरी के विचित्र द्वार है। हेम-प्रासाद है। सुवर्ण वेदिकाएँ हैं। नगर का प्राकार महान् है। वहाँ दीन सीता कौशेय वस्त्र धारण कर निवास करती है।"

"और?" विस्मयापन्न उत्सुक अंगद ने पूछा। वानर ध्यानपूर्वक सम्पाती की वातें सुनने लगे :

"रावण के अन्तःपुर मे वन्द है। राक्षस सुरक्षा-निमित्त नियुक्त है। लंका समुद्र द्वारा सुरक्षित है। एक सौ योजन समुद्र पार करने पर दक्षिण तट पर पहुँचोगे। वहाँ रावण का दर्शन मिल सकता है।"

"वहाँ कैसे पहुँचेगे?" अंगद ने जिज्ञासा की।

"मैं ज्ञान-दृष्टि से सीता को देख रहा हूँ। समुद्र पार करने में अपने पराक्रम का परिचय दो।

"आकाश का मार्ग कुलिंगों अर्थात् धान्यजीवी पक्षियों का है। द्वितीय मार्ग फलजीवी काक आदि का है। तृतीय मार्ग अर्थात् और ऊपर में भास, क्रौंच, कुट पक्षियों का है। चतुर्थ मार्ग श्येनगम्य है। पंचम मार्ग गृद्धों

का है। षष्ठ मार्ग वल-वीर्य-सम्पन्न रूप यौवनशाली हंसों का है। छठे मार्ग से ऊपर गरुड़ का मार्ग है। हम गरुड़ के वंशज हैं।

"मैं भोजन-जनित वल तथा स्वभाव से सौ योजन-पर्यन्त की वस्तु देख सकता हूँ। हमारी जीविका वृत्ति सुदूर स्थित वस्तु से होती है। लवण जल को पार करने का प्रयास करो। मुझे समुद्र-तट पर ले चलो। भाई को जलांजलि दूँगा।"

सीता का पता जान कर अंगदादि अत्यन्त प्रसन्न हुए। जामवन्त सम्पाती के पास आकर बोले :

"सम्पाति! आपने सीता को स्वयं देखा है?"

"नही। मेरा पुत्र सुपार्श्व है। मेरे भोजन का प्रवन्ध करता है। मेरे लिए भोजन लेने गया था। गन्धर्वो मे काम, सर्पो में क्रोध, मृगों में भय तथा गृद्धों में भूख तीव्र होती है। उसने देखा कि एक महाकाला पुरुष प्रातःकालीन सूर्य्यप्रभा सदृश स्त्री को लिए जा रहा था। सिद्धों ने कहा कि सीता जाती है। उन लोगों ने यह भी वताया था कि काला पुरुष रावण है।

"जनक-पुत्री आभूषण-रहित थी। रेशमी वस्त्र सिर से हट गया था। खुले केश थे। राम-राम, लक्ष्मण-लक्ष्मण पुकारती थी। सुपार्श्व सुनने पर भी शक्तिहीनता के कारण कुछ नहीं कर सका। आप लोग वली हैं, योग्य हैं। आप लोगों को विलम्ब नहीं करना चाहिए।"

सम्पाती ने स्नान किया। अपने भाई को जलांजलि दी। पर्वत पर गया। अंगदादि उसे चारों ओर से घेरकर बैठ गए। सम्पाती कहने लगा अपनी कहानी—

"निष्पाप अंगद! मै विन्ध्य पर्वत पर सूर्य्य किरणों द्वारा झुलस कर गिरा था। छह दिनों तक महान् कष्ट भोगा। बुद्धि विमोहित हो गई थी। वनादि अवलोकन पश्चात् बुद्धि स्थिर हुई। मै समझ गया। दक्षिण समुद्र तटवर्ती विन्ध्य पर्वत पर गिरा हूँ।

"पुराकाल में यहाँ एक आश्रम था। निशाकर नामक उग्र तपस्वी निवास करते थे। विन्ध्य शिखर से उतरा। कुशस्थली पृथ्वी पर आया। निशाकर ऋषि से मै मिलना चाहता था। उनसे मैं कई बार मिल चुका

था। आश्रम में पहुँचा। आश्रम का वायु-मण्डल सुरभित था। शायद ही कोई वृक्ष फल-फूल से लदा नहीं था। मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा। एक तरु-मूल में बैठ गया।

"तेज से जाज्वल्यमान् निशाकर का आगमन हुआ। वे स्नान कर चुके थे। उत्तर की ओर अग्रसर हो रहे थे। जिस प्रकार दाता के साथ याचक आते हैं, उसी प्रकार उनके साथ रिक्ष, व्याघ्र, गृद्ध, नाना प्रकार के जन्तु आ रहे थे। ऋषि के आश्रम में पदार्पण हुआ। वे जन्तु जैसे राजा को पहुँचा कर लौट गए। ऋषि ने मुझे देखा। मेरा कुशल-मंगल पूछा। मेरी करुण अवस्था पर उनको दया आई। मेरा वृत्तान्त पूछा।

"मैं अपनी कहानी कहने लगा। गर्व के कारण मैं भाई जटायु के साथ अपने पराक्रम की सीमा जानने के लिए आकाशगामी हुआ। कैलास पर्वत पर ऋषियों के सम्मुख हमने प्रतिज्ञा की थी। सूर्य के अस्ताचल पहुँचने के पूर्व ही उनके समीप पहुँच जाना चाहिए। हम आकाश में उड़े। ऊँचे उड़ते गए। आकाश से पृथ्वी के नगर पृथक्-पृथक् रथ के पहियों के समान दिखाई पड़ते थे। ऊपर के लोकों में कहीं वाद्यों का स्वर, कहीं भूषणों की ध्वनि, कहीं गाती हुई रक्ताम्वरा स्त्रियाँ दिखाई पड़ने लगीं। सूर्य-मार्ग में गमन करते हुए पृथ्वी की ओर देखा तो वन घास-तुल्य दिखाई पड़ते थे। पृथ्वी शैलों द्वारा आवृत एवं नदियों के सूत्र से लिपटी दिखाई देती थी।

"हिमालय, विन्ध्याचल, मेरु आदि पर्वत सरोवर में पड़े हाथी-तुल्य दिखाई पड़ते थे। हमें पसीना होने लगा। हम शिथिल और भयभीत हो गए। मूर्च्छा आ गई। दिशा-भ्रम हो गया। उस समय दक्षिण दिशा, अग्निकोण, पश्चिम दिशा का ज्ञान लुप्त हो गया। यह जगत् अग्नि-दग्ध-सा दिखाई देता था। सूर्य तेज के कारण दर्शन-शक्ति लुप्त हो गई थी। विशेप प्रयास द्वारा सूर्य का दर्शन हुआ। सूर्य का आकार पृथ्वी-तुल्य प्रतीत होता था। प्रलय-काल में जिन लोगों का जलना निश्चय है, उनको हम लोगों ने जलते देखा। हम लोगों ने बड़े परिश्रम से अपना मन और आँखें सूर्य पर लगाईं। जटायु विना मुझसे पूछे लौट पड़ा। मैंने उसे अपने शरीर से छिपाया। वह जल न सका। विन्ध्याचल में किसी जनस्थान मे गिरा।

"मैने गमन किया था वायु-मार्ग से होते हुए । मै पृथ्वी पर गिरा । मेरा शरीर जल गया था । मैं जड़ समान हो गया ।

"निशाकर मुनि से अत्यन्त दु.ख के साथ मैने सब [कुछ निवेदन किया । मेरी अवस्था पर मुनि ने करुणा की । मुनि ने कहा :

"तुम्हारी शक्ति आदि उस समय पुनः लौटेगी, जब श्री रामचन्द्र यहाँ अपने साथियो सहित पधारेंगे । तुम यही निवास करो । [तुम्हारा उपकार होगा ।"

"मै उस समय से यहाँ बैठा हूँ । आज राम-हितार्थ चिन्तन करने से में देख रहा हूँ कि जीवन में नवीन स्फूर्ति, बल तथा शक्ति उत्पन्न हो रही है । शरीर ठीक हो रहा है । युवा जैसा हो रहा हूँ ।"

सम्पाती के पंख निकल आए । वह हर्षित हो गया । प्रसन्नतापूर्वक बोला : "मित्रो ! मै अपनी शक्ति-परीक्षा निमित्त उडता हूँ ।"

---

वाल्मीकीय रामायण . किष्किन्धा काण्ड · ५६–६३

अध्यात्म रामायण किष्किन्धा काण्ड ८

महाभारत आदिपर्व . ६६ ७०–७१

वनपर्व . १४८ . ४६–५७, २८२ ४६–५७, २८३ : ४८–५३ ।

पुराण . ब्रह्माण्ड ३, ७, ४४६

वायु . २, ८, ३१, २, ८, ३६

पद्म सृष्टि खण्ड ६

# युद्ध काण्ड

# रावण का प्रयाण

युद्धस्थल था। रथ से पतित रावण की लुण्ठित काया भूमि पर पड़ी थी। हृदय-स्थल में मर्मभेदी बाण का आघात था। उसके कोमल हृदय-प्रदेश को प्राण निकलने के लिए जैसे खोल दिया गया था। मूर्धा पर से अभिषिक्त मुकुट हट गया था। जड़ काया सम स्थान में पड़ी थी। पाप, अत्याचार, क्रूरता, ऐश्वर्य, मद, मान, मत्सर, अहंकार, विजय-पराजय, उत्थान-पतन, घटनाबहुल कहानियाँ शेष हो चुकी थी।

सहोदर भाई मिलना कठिन है। सहोदर भाई अभिन्न मित्र होता है; और प्राणान्तक शत्रु भी होता है। खून कभी जोश मारता है। जननी का प्रेम-सूत्र उन्हें पास खीचता है। माता की स्मृति, शिशु-काल की सुहावनी स्मृति में द्वेष की कृत्रिम प्राचीर गिर पड़ती है। मानव हो जाता है केवल मानव।

रावण गिरा। विभीषण की आँखें भर आईं। उसके विलाप ने वज्र हृदय को हिला दिया। बाल्यकाल की स्मृतियाँ चारों ओर से घेरने लगीं। विह्वल हो गया। शत्रुता लजाकर भागी। भाई के पास आया। अर्ध-मूर्च्छितावस्था में करुण विलाप करने लगा। युद्धस्थल भ्रातृ-प्रेम, नैसर्गिक मोह देखकर नीरव हो गया। अब भूल गए अपने को। मुहूर्त्त मात्र पूर्व विभीषण भाई रावण के रक्त का इच्छुक था। उसकी मृत्यु का साधन था। उसका पतनाकांक्षी था।

"विभीषण!" राम ने शोकापन्न विभीषण से कहा: "यह चण्डविक्रम निश्चेष्ट होकर समर में विनष्ट नही हुआ है। उसमें अदम्य उत्साह था। कर्त्तव्यों का पालन किया है। मृत्यु से भयभीत नही था। दैवात् उसकी मृत्यु हुई है। क्षात्र धर्म पालन में दिवंगत लोगों के निमित्त शोक अशोभनीय है। सर्वदा किसी को विजय नहीं प्राप्त होती है। परलोक किंवा इस लोक में उन्नति किंवा उत्तम स्थान की प्राप्ति-निमित्त यदि युद्धक्षेत्र में वीर धराशयी हो जायँ, तो उनके लिए शास्त्र ने शोक का विधान नही बनाया

है। पूर्वकाल में रावण ने त्रैलोक्य-विजय की थी। आज काल-मुख है। उसके लिए शोक करना अनुचित है। युद्ध मे विजय निश्चित नही रहती है। पराक्रमी वीर शत्रुओं द्वारा आहत होता है अथवा शत्रुओं को मारता है। क्षत्रियों की यही गति है। क्षत्रियो की यह गति पूर्वसम्मत है। क्षत्रियों ने इस गति को उत्तम माना है। वीरगति-प्राप्ति पर शोक नही करना चाहिए। विभीपण! तुम उठो। भाई का सस्कार करो।"

"मेरे भाई को समस्त देवता तथा इन्द्र नही जीत सके थे। आपने उसे पराजित किया है। उसने याचको को दान दिया है। भोग भोगा है। भृत्यो का पालन किया है। मित्रो को धन दिया है। वैरियो को पराजित किया है। अग्निहोत्र धारण किया है। वह महातपस्वी था। वह वेदान्ती था। वह कर्म-पालन में अग्रणी था। मृत्यु हो जाने पर, प्रेत रूप होने पर भाई निमित्त निहित कर्त्तव्यो का पालन आवश्यक है। उन्हें आपके आज्ञानुसार करना चाहता हूँ," विभीषण ने दीनतापूर्वक कहा।

"विभीपण!" राम ने कहा—"रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया करो। मृत्यु के पश्चात् शत्रुता का अन्त हो जाता है। हमारा कार्य सिद्ध हो चुका है। रावण जैसा हमारा है, वैसा ही तुम्हारा है। उसके संस्कार का यथोचित प्रवन्ध करना आवश्यक है।"

०. .०: .०.

रावण की स्त्रियाँ नगर के उत्तर द्वार से विलाप करती निकली। भयकर रणक्षेत्र में राक्षसों के साथ आई। रावण के मृत शव पर गिर पड़ी। रणक्षेत्र मे करुणा गम्भीर हो गई।

"विभीषण!" राम ने कहा . "स्त्रियों को सान्त्वना दो। भाई का सस्कार करो।"

"राम!" विभीषण ने कहा·: "जिसने धर्मव्रत का त्याग किया था, जो क्रूर था, जो नृशस था, जो मिथ्यावादी था, जो परदारा-दर्शन का लोभी था, जो सवके अहित मे रत था; जो भ्राता-स्वरूप मेरा शत्रु था, वह ज्येष्ठ भ्राता के कारण लोकाचारानुसार पूजनीय है, किन्तु वास्तव में मेरी पूजा पाने योग्य नही है। दुनिया के लोग मुझे संस्कार नही करने पर नृशंस कहेगे, किन्तु रावण के दुर्गुणों को सुनकर वे मेरे विचारों का समर्थन करेगे।"

"राक्षसेश्वर!" राम ने प्रीतिपूर्वक विभीषण से कहा: "तुम्हारे प्रभाव से मैंने विजय प्राप्त की है। तुमसे उचित प्रीतिकर कार्य कराना है। तुम्हारे अनुरूप कार्य मुझे वताना चाहिए। तुम्हारा भाई तेजस्वी, वलवान् और संग्राम से विमुख होनेवाला नही था। मैंने सुना है, इन्द्रादि देवताओं से वह पराजित नहीं हुआ था। लोक-प्रसिद्ध तुम्हारा महात्मा भाई रावण वल-सम्पन्न था। मृत्यु के पश्चात् शत्रुता का अन्त हो जाता है। शत्रुता जीवन तक सीमित है। तुम संस्कार करो। रावण हमारा और तुम्हारा दोनों का है। विधिपूर्वक शीघ्र संस्कार होना चाहिए। तुम्हारा इस समय यही धर्म है। तुम्हारे यश की वृद्धि होगी।"

विभीषण ने लंकापुरी में प्रवेश किया। शीघ्रतापूर्वक रावण के अग्नि-होत्र को समाप्त किया। लोग शव-यात्रा की तैयारी में लग गए।

शकट, काष्ठ, अग्निहोत्र की अग्नि, याजक, चन्दन-काष्ठ, विविध प्रकार की लकड़ियाँ, अगर, सुगन्ध, गन्धमणि, मुक्ता, प्रवाल एकत्र किए जाने लगे।

:o: :o: :o:

विभीषण ने माल्यवान् के साथ दाह-संस्कार का आयोजन पूर्ण किया। रेशमी वस्त्र रावण को पहनाया गया। दिव्य सुवर्ण शिविका में शव रखा गया। अश्रुपूर्ण ब्राह्मण शव के पास खड़े हो गए। विविध पताकाओं तथा पुष्पों से शिविका सुगन्धित की गई थी। शिविका पर अनेक प्रकार के चित्र चित्रित थे।

विविध प्रकार के तूर्यो द्वारा रणस्थल घोषित हो उठा। स्तुतियाँ, अभिनन्दित प्रशस्ति-पाठ होने लगा। पताका, चित्र एवं सुमनो द्वारा सज्जित शिविका विभीषण आदि ने उठाई। दक्षिण दिशा की ओर मुख कर चले। लोगों ने सूखा काष्ट उठा लिया।

अग्निहोत्र की तीनों प्रज्वलित अग्नियाँ आगे चली। अन्त पुरीय नारियाँ रावण के पीछे-पीछे विलाप करती चलीं।

पवित्र स्थान पर रावण की शिविका रखी गई। वैदिकविधि के अनुसार कार्य सम्पन्न होने लगा। दु.खी विभीषणादि ने चन्दन, पद्म एवं खस की चिता रची। चिता पर राङ्कव (कुछ का कहना है कि वह मृगचर्म

था, कुछ कहते है कि दुशाला थी।) बिछा दिया गया। उस पर रावण का शव रखा गया।

रावण का पितृमघ विधिपूर्वक किया गया। यथास्थान दक्षिण-पूर्व वेदियाँ बनाई गई। उन वेदियो पर अग्नि स्थापित की गई। दही तथा घृत से पूर्ण स्रुवा रावण के कन्धे पर रखी गई। पाद पर शकट, उरु प्रदेश पर उलूखल रखा गया। दारुण पात्र, काष्ठ पात्र, अरणि, उत्तर, मूसल आदि यथास्थान रखे गए।

शास्त्र विधि तथा महर्षियों द्वारा विहित कार्य सम्पन्न किया गया। राक्षसेन्द्र के लिए मेध्य पशु का वध किया गया। पशु की वसा तथा घृत से चिता तरल कर दी गई।

दीन मन से शव को गन्ध-माल्य से अलंकृत किया गया। विभीषण के साथ लोगों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से रावण को अनेक प्रकार के वस्त्र पहनाए। चिता पर लाजा (लावा) की वर्षा की गई।

विधिपूर्वक विभीपण ने रावण को अग्नि दी। चिता प्रज्वलित हो उठी।

---

वाल्मीकीय रामायण . युद्ध काण्ड : १०८–१११

महाभारत : वनपर्व · १९०–३०

# उत्तर काण्ड

# वेदवती

हिमालय में एक वन था। वह घना और सुन्दर था। जनहीन था। तपस्वियो के आश्रम सदृश पवित्र था। कृष्ण मृग-चर्म पर बैठी थी एक सर्वाङ्ग-सुन्दरी युवती। युवती जटाधारिणी थी। तपस्या-रत युवती देवागनाओं तुल्य उद्दीप्त थी। रूपसम्पन्ना युवती महाव्रतशीला थी।

यौवन-शिखा तुल्य प्रभासित युवती को काम-दृष्टि से देख रहा था एक ऐश्वर्यशाली वीर पुरुष। समाधिस्थ युवती की रूप-माधुरी उसकी तृषित आँखें पी रही थी। रूप-आकर्षण मे खो गया था वह। उसकी आँखो मे यौवन-मद भर गया। छलकने लगा। ज्ञान ने साथ त्याग दिया। विवेक चुपचाप बैठा रहा। सहचर हो गया मुस्कराता काम।

"भद्रे।" आगन्तुक ने प्रसन्न मुद्रा मे पूछा : "यौवन-विरोधी तुम्हारा यह आचरण? सुश्रोणि!! तुम्हारे अनुरूप यह कार्य नहीं है। रूप के विरुद्ध तुम्हारी यह कैसी प्रतिक्रिया।

"भीरु!" आगन्तुक युवती के अत्यन्त समीप स्नेह से आकर बोला : "तुम्हारा रूप अनुपम है। तुम्हारा रूप कामोत्पादक है। तुम्हें तपस्या शोभा नहीं देती। मेरा हृदय यही निर्णय देता है।

आगन्तुक ने मधुर स्वर से कहा : "भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? वरानने!! तुम्हारा भर्त्ता कौन है? तुम्हे उपभोग करने वाला पुरुष भूलोक मे महान् पुण्य भागी है। यशस्विनि!!! क्या मै तुमसे पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि तुम इतना परिश्रम किस लिए कर रही हो?"

युवती ने अतिथि-स्वरूप आगन्तुक रावण की यथाविधि पूजा की। पूजा प्राप्त कर रावण प्रसन्न हो गया।

"श्रीमन्! अमितप्रभ ब्रह्मर्षि कुशध्वज की मै कन्या हूँ। मेरे पिता वृहस्पति के पुत्र थे। पिता ने बुद्धि वृहस्पति की पाई थी। वे महात्मा नित्य वेदाभ्यास करते थे। उन्हीं की वाङ्मयी कन्या मैं हूँ। मुझे लोग वेदवती कहते हैं।

"सुन्दरी तुम्हारा पति ?" रावण ने सस्मित पूछा।

"राक्षसेश्वर ! देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नगादि मेरा वरण करना चाहते थे। उन्होने इच्छा प्रकट की। मेरे पिता ने मेरा वरण उनमे किसी के साथ होने नही दिया।"

वेदवती ने शान्त, स्थिर वाणी मे कहा।

"कारण, भद्रे ?" रावण ने प्रसन्नता से पूछा।

"महापुज !" वेदवती बोली : "कारण कहती हूँ। मेरा पाणिग्रहण सुरेश्वर विष्णु के साथ मेरे पिता करना चाहते थे। उनका अभिप्राय जानकर दैत्यों का राजा शभु उन पर कुपित हो गया। पिताजी शयन कर रहे थे। पापी शंभु ने शयनावस्था मे पिता की हत्या कर दी।"

"ओह !" आगन्तुक रावण की कामपूर्ण हँसती आँखो ने छलपूर्ण संवेदना प्रकट की।

"महाभाग, मेरी दु खी माता को अत्यन्त दु ख हुआ। पिताजी के शरीर के साथ माता ने चितारोहण कर हव्यवाहन अग्नि में प्रवेश किया। मै अकेली रह गई।"

"फिर यह तपस्या क्यों ?" वेदवती का आश्रयहीन होना जानकर रावण की आँखों मे काम की लाली फैल गई। उसके वचनों में कृत्रिम मधुरता थी।

"पिता की इच्छा पूरी करना चाहती हूँ। उनका मनोरथ सत्य करने के लिए मै विष्णु को हृदय में धारण करती हूँ। उन्ही का ध्यान करती हूँ। और उन्हीं की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रही हूँ। पिता की प्रतिज्ञा के कारण मै कठोर तप कर रही हूँ। मेरे पति वे ही है। मै उनकी हूँ। मैं उन्हीं के आश्रय में हूँ। वे ही मेरे सर्वस्व है। उन्ही के चरणों में मेरा यह तप-व्रतादि सव कुछ अर्पित है। पौलत्स्य-नन्दन राजन् ! मै आपको जान गई हूँ। अपनी तपस्या द्वारा त्रैलोक्य की बात जान जाती ▌ ३.।प वृ ९।
कर जाइए।"

कामपीड़ित रावण सुन्दर विमान से उतरा।

"सुश्रोणि !" रावण के वचनों में दृढ़ता थी : "अहंकार के कारण तुम्हारी बुद्धि का यह विचित्र निश्चय है। मृगशावक-लोचने ! ! पुण्य

संचय वृद्धों की शोभा है, न कि त्रिलोक-शोभा अद्वितीय सुन्दरी तुम्हारी। तुम्हें इस प्रकार की बातें अच्छी नहीं लगतीं। तुम्हारा यौवन अनायास बीता जा रहा है।"

वेदवती की दृष्टि में संदेह की छाया झलक उठी।

"भद्रे !" रावण ने वेदवती की ओर लोभ-दृष्टि से देखा : "मैं लंकापति हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। तुम त्रैलोक्य-सुन्दरी हो। तुम्हारा यौवन-सौरभ सूख रहा है। तुम्हारी यह सुन्दर कोमल काया अपनी जीवन-श्री बिखेरती जा रही है। यह समय तुम्हारे लिए सुख का है। भोग का है। आनन्द का है। मेरी भार्या बनो। जीवन के भोगों का उपभोग करो। अपने सुख में, आनन्द में, स्वयं सुखी होकर, आनन्दित होकर दुनियाँ का आनन्दवर्धन करो।

वेदवती की मुद्रा गम्भीर हो गई।

"सुश्रोणि ! विष्णु कैसे हैं ? उनके विषय में तुम क्या जानती हो ? उन्होंने तुम्हारी तपस्या पर, तुम्हारी पूजा पर, क्या किंचित् मात्र ध्यान दिया ? अंगने ! तुम जिसकी कामना करती हो, क्या वह तपस्या, बल, पराक्रम, भोग तथा वैभव में मेरी समानता कर सकता है।"

"राक्षसेन्द्र ! ऐसा मत कहो। वे सर्व-लोक नमस्कृत हैं। त्रैलोक्याधिपति हैं। तुम्हारे अतिरिक्त भला ऐसा कौन है, जो बुद्धिमान् होकर इस प्रकार उनका अनादर करेगा ?"

"वेदवति !" रावण आगे बढ़ गया।

वेदवती हटना चाहती थी। रावण ने लपक कर वेदवती के केश पकड़ लिए। उसे अपनी ओर खींचा।

वेदवती रावण का कुत्सित अभिप्राय समझ गई। क्रुद्ध हो गई। उसने केश छुड़ाना चाहा। नहीं छूटा। उसने अपने हाथों केशों को काट दिया। वह मुक्त हो गई।

:o: :o: :o:

वेदवती रोष से प्रज्वलित हो गई। उसने काष्ठ एकत्र किया। अग्नि प्रज्वलित हुई। वह कृतसंकल्प थी। अग्नि-प्रवेश निमित्त उद्यत थी।

"रावण !" वेदवती दहकती अग्नि की ओर देखती रावण से बोली : "तुमने मेरा अपमान किया है। मुझे जीवन की इच्छा नही है। तुम देखो, मै अग्नि में प्रवेश करती हूँ। मै इस अपवित्र काया को तुम्हारे सम्मुख ही नष्ट करती हूँ। पापी पुरुष का वध स्त्रियाँ नही कर सकती। शाप द्वारा तपस्या नष्ट नहीं करना चाहती। पापात्मन् ! तुमने इस वन में मेरा अपमान किया है। तुम्हारे वध निमित्त मै पुनः जन्म ग्रहण करूँगी।"

रावण हतप्रभ हो उठा। काम-तृष्णा समाप्त हो गई।

"अग्ने !" वेदवती ने भगवान् को स्मरण करते हुए गम्भीर गगन की ओर देखकर कहा : "यदि मैंने कुछ धर्म, दान तथा हवन किया है तो मै साध्वी अयोनिजा कन्या-रूप मे किसी धार्मिक पिता की पुत्री बनूँ।"[1]

वेदवती अग्नि-आलिगन में लाल हो गई। दिव्य पुष्प-वृष्टि द्वारा स्थान सुरभित हो गया। रावण मृत्यु की उदासीन छाया मे जैसे लुप्त हो गया।

:o: :o: :o:

पद्म से पद्मप्रभा-तुल्य वेदवती ने कन्या-स्वरूप जन्म ग्रहण किया। वह तिलोत्तमा थी। अनुपम सुन्दरी थी।

कमल-गर्भ-आभा तुल्य उस कन्या को रावण अपने प्रासाद मे ले गया। उसने मन्त्रियों को कन्या दिखाई।

मन्त्री लक्षमणज्ञ थे। उन्होंने कन्या के लक्षण देखकर बताया : यदि कन्या आपके यहाँ निवास करेगी तो आपकी हत्या का कारण होगी। रावण भयभीत हो गया। उसने उस कन्या को समुद्र में फेंक दिया।

कन्या को भूमि ने ग्रहण किया। वह राजा जनक के यज्ञायतन मध्यवर्ती भूभाग मे पहुँच गई। राजा के हल के फल से भूमि जोतते समय वह कन्या सीता-स्वरूप में भूभाग से प्रकट होकर श्रीराम को ब्याही गई।

—:o:—

---

वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड : १७

पुराण ब्रह्मवैवर्त्त २ १४ ५२

नोट वेदवती सीता का जन्म धारण करके रावण के वध का कारण बनी थी। यही इस कहानी का प्रयोजन है।

## मरुत्

उशीरबीज देश था। राजा मरुत् की पवित्र यज्ञशाला थी। व देवताओं के साथ यज्ञ कर रहे थे। साक्षात् बृहस्पति-तुल्य धर्मज्ञ ऋषि संवर्त देवगणों के साथ यज्ञ करा रहे थे।

देवताओं ने देखा। राक्षसेन्द्र रावण का यज्ञशाला की ओर आगमन। भयभीत हो गए। सबने अपना रूप बदल लिया। तिर्यंग् योनियों में प्रवेश कर गए।

भय से इन्द्र मयूर हो गए। धर्मराज वायस अर्थात् कौआ हुए। कुबेर कृकल (गिरगिट) हुए। वरुण हंस बने। देवता विभिन्न तिर्यंग् रूपों में हो गए।

अपवित्र श्वान-स्वरूप रावण ने यज्ञ-मण्डप में प्रवेश किया। किन्तु राजा मरुत् दृढ़तापूर्वक आसन पर बैठे रह गए।

"राजन्!" रावण ने कहा: "युद्ध या पराजय स्वीकार करो।"

"आपका परिचय?" राजा मरुत् ने निर्भीक भाव से पूछा। उनमें किंचित् मात्र कौतूहल ने प्रवेश नही किया था।

रावण राजा की गम्भीरता से अवाक् हो गया। मुहूर्त्त मात्र राजा पर दृष्टिपात करता रहा। अनायास हँस कर बोला:

"राजन्! मैं कुबेर का कनिष्ठ भ्राता रावण हूँ। मुझे देखकर आपको किंचित् मात्र कौतूहल नहीं हुआ। भय नहीं हुआ। आश्चर्य है। मैं आपसे प्रसन्न हूँ।"

रावण ने सस्मित कहा: "या आप मुझे नहीं जानते? त्रैलोक्य में शायद ही कोई मेरा बल नहीं जानता होगा। कुबेर को जीता है। उनका विमान लाया हूँ।"

"दुर्मते!" राजा मरुत् ने कहा: "आप सचमुच धन्य हैं। ज्येष्ठ भ्राता को पराजित किया है। आप जैसा स्पृहणीय सम्भवत: त्रैलोक्य में

कोई नही होगा। अधार्मिक कर्म लोकों में श्लाघनीय नहीं होता। उसे लोक-सम्मत नही कहा जायगा।"

मरुत् ने शान्ति-मुद्रा मे पुन. कहा : "पूर्वकाल में क्या धर्म-कार्य किया था? किस प्रकार वर प्राप्त किया था? मैंने आज तक नही सुना। तुमसे कभी कोई धर्म कार्य हुआ है?"

रावण का मुख लाल हो उठा।

"दुमंते!" राजा ने क्रोधपूर्वक कहा : "खडे रहो। तुम्हारा जीवित लौटना सम्भव नहीं है। मेरे वाण तुम्हें यमालय निस्सन्देह भेजेंगे।"

क्रोधित राजा मरुत् ने आसन त्याग दिया। धनुष-वाण उठाए। महर्षि संवर्त राजा का मार्ग रोककर खड़े हो गए। राजा रुक गया।

"राजन्!" संवर्त सस्नेह वोले : "यदि तुम मेरी वात रखना चाहते हो तो प्रहार के स्थान पर क्षमा करो।"

मरुत् रुक गए।

संवर्त ने स्थिर वाणी में कहा : "यह माहेश्वर यज्ञ है। तुमने दीक्षा ली है। यदि यज्ञ पूर्ण नही हुआ तो तुम्हारा कुल-दाह कर देगा। यज्ञ-दीक्षित के लिए युद्ध तथा क्रोध दोनों वर्जित हैं। विजय म पराजय का संशय छिपा रहता है।"

गुरु-वचनो का मरुत् ने आदर किया। धनुष-वाण त्याग दिए। यज्ञीय आसन पर वैठ गए।

शुक ने राजा की क्षमा का दूसरा अर्थ लगाया। रावण की विजय और मरुत् की पराजय हर्ष-नाद के साथ घोषित कर दी। यज्ञस्थल ऋषियों के रक्त से तरल हो गया। यज्ञ-भूमि रक्त के चित्रो द्वारा चित्रित हो गई। रावण ने प्रसन्न-वदन यज्ञस्थान से प्रस्थान किया।

:o: :o: :o:

रावण के गमन पश्चात् इन्द्रादि देवता पुनः अपने मौलिक रूपों में प्रकट हो गए।

"धर्मज्ञ!" इन्द्र ने नील वर्ण मयूर से कहा : "मयूर! तुमसे मै स्नेह करता हूँ। तुम्हें भुजगादि से भय न होगा। मेरे सहस्राक्ष तुम्हारे पंखों

पर स्थित होंगे। मैं जल-वृष्टि करूँगा। स्नेह प्रदर्शन-स्वरूप तुम प्रसन्न होकर नृत्यशील होंगे।"

पूर्वकाल में मयूर का पंख नीला होता था। सुन्दर नहीं था। इन्द्र के वरदान के पश्चात् पंखों पर नेत्र बन गए। स्वरूप मनोहर हो गया।

प्राग्वंश पर स्थित वायस (काक) से प्रीतिकर वचन धर्मराज बोले : "विविध व्याधियों के कारण प्राणी पीड़ित होते हैं। मेरे स्नेह के कारण व्याधियाँ तुम्हें पीड़ा नहीं पहुँचा सकेंगी। विहंगम ! तुम मृत्यु-भय रहित होगे। बिना मारे गए तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

"यमलोक मे बुभुक्षा-पीड़ित मानव के निमित्त उनके बन्धु-बान्धव भोजन देंगे तो यमलोक में वह प्रेतात्माओं को प्राप्त हो जाएँगे।"

"हंस!" वरुण प्रेमपूर्वक बोले : "शशि-मण्डल तथा शुद्ध फेन-समान प्रभायुक्त तुम्हारा वर्ण होगा। तुम्हारा परम उज्ज्वल वर्ण सौम्य तथा मनोरम होगा। मेरे अंगभूत जल का आश्रय प्राप्त कर तुम्हें कान्ति तथा प्रसन्नता प्राप्त होगी।"

पूर्व काल में हंस का शरीर पूर्ण श्वेत नहीं था। पंखों का अग्र भाग नील तथा दोनों पदों का मध्य भाग नव दूर्वादिल के अग्र-भाग तुल्य कोमल तथा श्याम वर्ण होता था। वरुण का वर पाते ही हंस का शरीर पूर्णतया श्वेत वर्ण हो गया।

धनाध्यक्ष कुबेर ने पर्वतासीन कृकल से कहा :

---

वाल्मीकीय रामायण . बालकाण्ड . ४७ (१)
उत्तरकाण्ड . १८

महाभारत . आदिपर्व १ : २२७ ७ : १७
सभापर्व ८ . १६; १५ : १६
द्रोण पर्व ५५ : ३७–४६
शान्ति पर्व २६ : १६–२४
५७ : ७; १६८ : ७७; १३४ : २८

"मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम्हें सुवर्ण वर्ण देता हूँ । तुम्हारा शिरोभाग सर्वदा कांचन वर्ण रहेगा । सर्वदा अपरिवर्तनीय रहेगा । नष्ट नही होगा ।"

यज्ञोत्सव समाप्त हुआ । सब लोगों ने अपने-अपने भवन की ओर प्रस्थान किया ।

---
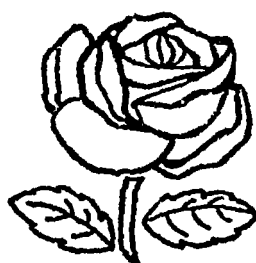
आश्वमेधिक पर्व ६ . ४-१० ; ६ : १५, १६ ; ६ : ३०-३३, ७ · ३-२३ ; ८ . ३२ ; १० : ६-७ ; १० : १६ ; १० : ३४-३५

उद्योग पर्व . ८३ : २७

पुराण . पद्म . सृष्टि खण्ड ७

पद्म : भूमि खण्ड २६

भागवत · ६-१८

मत्स्य १४६

स्कन्द : ६ . २४

विष्णु : १ : २१, ३ . ४०, १ : ३२ . ८, १ : ३९ : ४, ५

ऋग्वेद १ : १३३ · ६ ; १ · १६५ ; ५ . ५२ : ५२ ; ५ : ५२ १६ ; ५ ५२ : १७ ; ५ · ५३ · १ ; ५ : ५३-५४ ; ५ : ५७ . १ ; ५ : ५७ . २, ८ : ७ : ३१ ; ८ : ८ : ३२ ; १० : ८६ : ९

# कुम्भीनसी

रावण पुष्पक विमान से उतरा। दानवों की भयभीत नारियाँ गद्गद कण्ठ से रो रही थीं। वे देवता, दानव तथा राक्षस कुलों की रत्न थीं। वे शुभलक्षणा थीं। रावण ने उनका बलपूर्वक हरण किया था। रावण की उनमें आसक्ति देखकर धर्मात्मा विभीषण ने कहा :

"भाई! आपका आचरण यश, धन तथा कुल का नाशक है। आप स्वेच्छा-पूर्वक प्राणियों को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। वरांगनाओं के सम्बन्धियों की हत्या कर आपने उनका अपहरण किया है। राजन्! क्या आपको मालूम है, आपकी उपेक्षा कर, मधु ने आपकी मौसेरी बहन कुम्भनसी का अपहरण किया है?"

"विभीषण!" विस्मयापन्न रावण ने पूछा : "मधु कौन?"

"राजन्!" विभीषण ने सक्रोध कहा : "आपके पापों का फल हमें बहन के अपहरण से मिला है।"

"किन्तु यह कुम्भनसी कौन थी?" रावण ने साश्चर्य जिज्ञासापूर्ण स्वर में पूछा।

"हम लोगों के नाना सुमाली थे। उनके ज्येष्ठ भ्राता माल्यवान् हैं। वृद्ध एवं प्राज्ञ हैं। हम लोगों की माता के ज्येष्ठ पिता माल्यवान् की कन्या का नाम अनला है। अनला हम लोगों की मौसी थी। अनला की कन्या कुम्भीनसी है। हमारी, तुम्हारी तथा कुम्भकर्ण तीनों भाइयों की धर्मतः बहन है।"

"तुम कहाँ थे?"

"राजन्! मेघनाद यज्ञ में प्रवृत्त था। मै जल के अन्दर था।"

"मधु को किसी ने रोका नहीं?"

"मधु शक्तिशाली था। कुम्भीनसी अन्तःपुर में थी। सामन्तों ने सामना किया। मधु ने उन्हें मार डाला। हम लोगों का तिरस्कार करते हुए कुम्भीनसी का अपहरण कर लिया।"

रावण की मुद्रा गम्भीर हो गई ।

विभीषण ने कहा : "विवाह-योग्य कन्या होने पर विवाह कर देना चाहिए । हम लोगों का इसमे दोष था । बहन के अपहरण करने पर उसे मारा नहीं जा सकता । बहन का विधवा होना ठीक नही होता ।"

रावण विचार-मग्न हो गया ।

"महाराज !" विभीषण ने तिरस्कारपूर्वक कहा : "आपने उसे क्षमा कर दिया ?"

अपहृता स्त्रियों का करुण क्रन्दन, उनका विह्वल रूप रावण की आँखों के सम्मुख आने लगा । उसने विभीषण की बातों की ओर ध्यान नही दिया ।

"दुर्मते !" विभीषण ने सक्रोध कहा : "स्त्री-अपहरण का फल इसी लोक मे आपको मिल गया ।"

रावण क्रोधित हो गया । उसे बात लग गई । आरक्तलोचन बोला : "मेरा रथ लाओ ! शूर सज्जित हो । भाई कुम्भकर्ण तथा सभी प्रमुख निशाचर साथ चले । वाहिनी नाना प्रकार के आयुधों से सज्जित की जाय । मधु को मारकर मै निर्भय हूँगा ।"

:o: :o: :o:

चार सहस्र अक्षौहिणी सेना चली । सेना के अग्र भाग मे मेघनाद, पृष्ठ भाग में कुम्भकर्ण तथा मध्य भाग मे रावण चला । विभीषण लंका की रक्षा के लिए रह गया । खर, ऊँट, अश्व, शिशुमार, नागादि वाहनो पर आरूढ राक्षसगण मधुपुर की ओर सवेग चले ।

:o: :o: :o:

सेना मधुपुर पहुँची । नगर में प्रतिरोध नही हुआ । किसी सैनिक ने उनका स्वागत भी नहीं किया । राजा मधु ने सामना नही किया ।

केवल कुम्भीनसी थी । वह अकेली थी । वही मानो समस्त मधुपुर की ओर से रावण की प्रचण्ड शक्ति का सामना करने आई थी ।

भयत्रस्त कुम्भीनसी ने भ्राता रावण के चरणों पर मस्तक रख दिया । रावण ने स्नेह से उसे उठाया ।

"बहन!" रावण ने स्नेह से कहा: "भयभीत मत हो। बोलो तुम्हारे लिए क्या प्रिय कार्य करूँ?"

"महाभुज!" कुम्भीनसी ने कहा: "मेरे भर्त्ता की हत्या आपको शोभा नहीं देती। मानद!! कुल-वधू के लिए वैधव्य से बढ़कर कोई दूसरा भय नहीं हो सकता।"

रावण अपनी बहन की ओर देख अवाक् हो गया। युद्ध-निमित्त उत्साहित सेना उदास हो गई।

"राजेन्द्र!" कुम्भीनसी ने आर्त्त स्वर में कहा: "आप सत्यवादी हैं। आपकी वाणी सत्य है। मैं याचना कर पति की भीख माँगती हूँ। महाराज! आपने मुझे निर्भयता का आश्वासन दिया है।"

रावण का मुख अचानक खिल गया। प्रसन्नतापूर्वक बोला:

"बहन! मधु कहाँ है? शीघ्र लाओ। मैं उसके साथ देवलोक-विजय-निमित्त चलूँगा। तुम्हारी करुणा और सौहार्द के कारण उसके वध का विचार त्याग दिया है। उसको बुला लाओ।"

हर्षित कुम्भीनसी के उमंगमय पद अन्तःपुर की ओर बढ़े।

:o: :o: :o:

"उठो उठो!!"

"क्या है?"

"मेरे भाई महाबली दशग्रीव आए हैं।"

"मैं क्या करूँ?" मधु निद्राभिभूत था, उठते हुए बोला

"भाई देवलोक जीतने जा रहे हैं।"

"तब?"

"तुम बन्धु-बान्धव सेना सहित जाओ। सहायक के कार्य में सहायता देनी चाहिए।"

"सम्बन्ध! सहायक!!"

"हाँ, तुम्हें जामाता मान लिया, समझे?"

प्रसन्नतापूर्वक उछलकर मधु खड़ा हो गया।

:o: :o: :o:

मधु ने रावण का धर्मानुसार स्वागत तथा पूजन किया। रावण राजप्रासाद में आया। सेना-सहित रात्रि-वास किया। प्रातःकाल देवलोक-विजयार्थ रावण और मधु उत्साहपूर्वक निनाद करते चले। ✪

---

वाल्मीकीय रामायण: उत्तरकाण्ड २५, ६१।

# नलकूवर

कैलास पर्वत था। शर्वरी थी। सेना विश्राम कर रही थी। रावण शैल-शिखर पर बैठा था। देख रहा था। शशि का सुन्दर शर्वरी-सर्जन और शर्वरी पान करते पादपों की लोभनीय शोभा। तरु, पुष्पादि की शोभा, पर्वतीय वन-प्रान्त को उद्भासित कर रही थी। मधुर कण्ठ मदनार्त्त किन्नर कामिनियों के साथ गा रहे थे। उनके सम्मिलित शुद्ध कण्ठों द्वारा निकली समूह-संगीत-ऊर्मियाँ अनायास मनस्तुष्टि कर देती थीं।

मदरक्तान्त-लोचन, मदमत्त विद्याधरगण नारियों के साथ क्रीडा में प्रसन्न थे। कुबेर-प्रासाद से अप्सरा-गणों के मधुर स्वर द्वारा ऊर्जस्वित सुन्दर गीत-लहरियाँ घण्टा-नाद तुल्य सुनाई पड़ती थी।

मधु-माधव-गन्धित वायु के सहज थपेड़ों से शैल-शिखर पुष्प-वर्षा द्वारा भरकर सुवासित हो उठा था। विविध पुष्परज की पुष्कल सुगन्ध से मिश्रित मन्द-मन्द सुखद वायु रावण की काम-तृष्णा का वर्धन करने लगी थी। शैल की निशाकालीन नीरवता, शीतल समीर का मधुर स्पर्श, मधुर संगीत कल्लोल, कुसुम शोभा, शीतल शशि का उदय, रजनी की मधुवेला में रावण होने लगा काम-पीड़ित। मदन मुस्कुराता मुहुर्मुहु. रावण की मानस-लहरियों में थिरकने लगा।

दिव्याभरण-भूषिता, अप्सरा-श्रेष्ठ, सुन्दरी, पूर्णचन्द्रमुखी, रम्भा वन-पथ मे दृष्टिगोचर हुई। उसके कोमल अंगों मे दिव्य चन्दन का अनुलेप था। मूर्धा-स्थित केश-कलाप मे मन्दार-पुष्प गुँथे थे। उसने दिव्य पुष्पों द्वारा सुन्दर शृंगार किया था। दिव्य उत्सव-समागम निमित्त निकली थी।

उसके नेत्र मनोहर थे। उसके उत्तुंग पीन पयोधर मेखला से विभूषित थे। कमनीय कामिनी रति के लिए उत्तम स्थूल जघन उपहार-स्वरूप धारण किये हुए थी। गण्डस्थल पर हरिचन्दन की चित्र-रचना थी। षट् ऋतुओं के कुसुम-हार वक्ष.स्थल पर लोट रहे थे। अपनी अलौकिक कान्ति,-

शोभा, द्युति तथा कीर्त्ति के कारण वह श्री-तुल्य प्रतीत हो रही थी। नीलाम्बर-आवृत सजल जलधर-तुल्य नील वस्त्र में रम्भा के अंग छिपे थे। उसके भ्रू द्वय चाप-तुल्य थे। उसका मुख-मण्डल शशि-सदृश सुन्दर था। उरु-प्रदेश हस्ती के शुण्ड-सदृश थे। कर पल्लव-तुल्य कोमल थे। दिव्योत्सव-आरम्भ निमित्त रूप-सज्जा में लिपटी रावण की सेना के मध्य से वह चली जा रही थी। रावण ने उसे लक्ष्य किया।

देखते ही रावण मुग्ध हो गया। काम-बाण द्वारा आहत था। मन की ऊर्जस्वित संगीत-लहरियों ने उमंग से उसे उठा दिया। काम-वासना में अस्थिर हो गया वह। आँखों में लाली दौड़ गई। किंचित् प्रकम्पित उत्साह से आगे बढ़ा। गमनशील रम्भा का कर ग्रहण कर लिया। लज्जावरण में रम्भा छिप गई।

"वरारोहे!" कामार्त्त रावण ने मुस्कराकर कहा : "कहाँ जा रही हो? किस सिद्धि के उपक्रम में लगी हो? किसका अभ्युदय-काल उपस्थित हुआ है? कौन तुम्हारा उपभोग करना चाहता है?"

रम्भा का मेरुदण्ड कटिप्रदेश पर झुक गया।

रावण ने उसके सरस अधरों की ओर देखते हुए कहा : "पद्मोत्पल-सुगन्धित अधर-रस अमृत का भी अमृत है। तुम्हारे अधरामृत-रस का पान कर कौन तृप्त होगा? भीरु! स्वर्ण-कुम्भ तुल्य परस्पर मिले वक्षोज किसके वक्षःस्थल का स्पर्श करेंगे? स्वर्ण-मेखला द्वारा विभूषित स्वर्ण-चक्र-तुल्य जघनस्थल पर कौन भाग्यशाली आरोहण करेगा?"

रम्भा के पादप्रदेश में कम्प ने प्रवेश किया।

"भीरु!" रावण ने रम्भा के लज्जित नेत्रों को देखने का प्रयास करते हुए कहा : "इन्द्र, विष्णु, अश्विनीकुमार आदि क्या मुझसे बढ़कर हैं? क्यों तुम मुझे त्याग कर अन्यत्र जा रही हो? तुम्हारे लिए क्या मैं शोभन नहीं हूँ। पृथुश्रोणि!! देखो, मैं त्रैलोक्य का स्वामी हूँ। आओ, इस सुन्दर शिला-तल पर विश्राम करो। त्रैलोक्य-स्वामी दशानन अंजलि-बद्ध तुमसे याचना करता है। मुझे स्वीकार करो।"

"महात्मन्," कदली-स्तम्भ-तुल्य कम्पित रम्भा करबद्ध विनम्रतापूर्वक बोली : "आप मेरे गुरु हैं। पिता-तुल्य हैं। मुझ पर कृपा कीजिए।"

"गुरु !" रावण हिचका ।

"हाँ ! यदि अन्य पुरुष मुझे अपमानित करना चाहें तो आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए ।"

नत-मस्तक रम्भा की नतदृष्टि भूमि पर लगी थी । रावण के दृष्टि-पात की आशंका मात्र से वह कम्पित हो जाती थी ।

"क्यों ?" रावण ने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

"मै आपकी पुत्रवधू हूँ ।"

"मेरे पुत्र की भार्या !"

"राक्षस-पुंगव ! मै धर्मत. आपकी पुत्रवधू हूँ । आपके ज्येष्ठ भ्राता कुबेर के पुत्र मुझे प्राणो से अधिक प्रिय हैं ।"

"कैसे ?" रावण ने साश्चर्य पूछा ।

"आपके भाई वैश्रवण के पुत्र नलकूवर त्रैलोक्य-विख्यात है । वे धर्म से विप्र है, वीर्य से क्षत्रिय है, क्रोध से अग्नि है और क्षमा से वसुधा-समान है । उन्ही लोकपाल नलकूवर के यहाँ जाने का मेरा संकेत है । उन्ही के निमित्त मैने श्रृगार किया है, रूप बनाया है । उनका मुझ पर और मेरा उन पर अनुराग है ।"

रावण गम्भीर होने लगा ।

"राजन् !" रम्भा ने दीनता से कहा : "धर्मात्मा नलकूवर मेरी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे होंगे । आप कृपाकर मुझे छोड दीजिए !"

रावण ने रम्भा का हाथ नहीं छोडा ।

"राक्षस-पुगव !" रम्भा की वाणी मे करुणा थी : "नलकूवर की सेवा मे आपको विघ्न नही डालना चाहिए । आप सज्जनोचित मार्ग का अनुसरण कीजिए । आप मेरे माननीय गुरु है । आपको यह शोभा नहीं देता ।"

"रम्भे !" रावण ने सस्मित कहा : "तुमने कहा है, तुम मेरी पुत्रवधू हो । यह सिद्धान्त यहाँ नही लगता । यह धर्म किसी एक पुरुष की धर्मपत्नी के लिए विहित है । तुम अप्सरा हो । देवलोक की परम्परा भिन्न है । अप्सरा का कोई पति नहीं होता । वहाँ कोई पुरुष केवल एक स्त्री ग्रहण नही करता ।"

रम्भा वेत-तुल्य काँपने लगी ।

"आओ ! बैठो !!" कामार्त्त रावण ने रम्भा को जबर्दस्ती शिलातल पर बिठा लिया ।

:o: :o: :o:

गजेन्द्र-मथित नदी-तुल्य रम्भा उदास चली आ रही थी । नलकूवर ने उसे रोका ।

रम्भा व्याकुल थी । बिखरे केश वायु में उड़ रहे थे । शृंगार बिगड़ा था । कर-पल्लव कम्पित थे । वायु द्वारा झकझोरी कुसुमशालिनी लता-तुल्य लग रही थी वह । आँखें उठती न थीं । वस्त्रों पर सिकुड़न थी । वे भीग गए थे । अलंकार अपने स्थानों से हट गए थे । भयभीत कम्पित नारी नलकूवर के पैरों पर करबद्ध गिर पड़ी ।

"भद्रे ! यह क्या ? पैरों पर क्यों गिरती हो ?" विस्मयापन्न नवकूवर ने उसकी विचित्र मुद्रा देखकर कहा ।

रम्भा अश्रुपूर्ण लोचनों से कह गई अपनी कहानी ।

नलकूवर की मुद्रा में रह-रहकर परिवर्तन होने लगा ।

रम्भा ने प्रांजलिभूत होते हुए कहा : "सौम्य ! नारी पुरुष-तुल्य सबल नहीं होती । सुव्रत !! निस्सहायावस्था में हुए अपराध निमित्त क्षमा-प्रार्थिनी हूँ ।"

महात्मा नलकूवर में क्रोध ने प्रवेश किया । वे ध्यानस्थ हो गए । सत्य घटनाएँ उनके नेत्रों के सम्मुख सजीव खड़ी हो गईं । आँखें लाल हुईं । भृकुटी संकुचित हुई । कमण्डलु का जल अंजलि में आ गया । जल-स्पर्श करते हुए नलकूवर ने शाप दिया :

"भद्रे ! इच्छा-विरुद्ध रावण ने बलात्कार किया है । आज से इच्छा-विरुद्ध किसी दूसरी स्त्री के साथ यदि वह बलात्कार करेगा, तो तत्काल उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जाएँगे ।"

रम्भा के आँसू सूखने लगे ।

---

वाल्मीकीय रामायण : उत्तरकाण्ड : २६

महाभारत : वनपर्व : २८० : ५९-६०

सभापर्व : १०-१९

पुराण : हरिवंश २ : ७

भागवत : १० : ९-१०

नोट : रावण सीता के साथ बलात्कार नहीं कर सका । उसका यही कारण था ।

"अमात्यो ! नृपति अर्जुन है ?"

रावण अमरावती-तुल्य सुशोभित अग्निदेव की नगरी माहिष्मती में पहुँचा।

"राजा नगर में नही है।" अमात्यो ने कहा।

रावण ने किंचित् बल देकर पूछा : "अमात्य ! मै रावण हूँ।"

अमात्यों ने सादर अभिवादन किया।

"मै युद्धार्थी हूँ," रावण ने अपनी भुजाओं की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा।

"राक्षसेन्द्र ! हम सत्य कहते है।"

:o: :o: :o:

"पौरगण ! राजा अर्जुन कहाँ है ? मै रावण हूँ। युद्धार्थी हूँ।" रावण ने माहिष्मती के नागरिकों से पूछा। नगर में कुशास्तर-युक्त अग्नि-कुण्ड में हुताशन सर्वदा विद्यमान रहते थे। नागरिकों का उत्तर मिला :

"राजा नगर से बाहर गए है, राक्षसेन्द्र !"

"कहाँ ?"

"नर्मदा नदी में सपत्नीक विहार निमित्त।"

"धन्यवाद !" रावण शीघ्रतापूर्वक घूमा।

रावण नगर के बाहर आया। विन्ध्यपर्वत पर गया। अनन्तर पुण्यसलिला नर्मदा नदी की ओर मुडा।

:o: :o: :o:

रावण पहुँचा नर्मदा-तट पर। प्रवाह में उभड़े शिलाखण्डो का चुम्बन करती धारा पश्चिम समुद्र की यात्रा के लिए वेगवती थी। उष्ण ताप से तृषित महिष, मृग, सिंह, शार्दूल, ऋक्ष, गजादि नर्मदा के शीतल उपकूल में शीतलता अर्जन करते हुए जलाशय को क्षुभित कर रहे थे। चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जल-कुक्कुट,सारसादि जलधारा पर उमंगपूर्वक कूज रहे थे।

नर्मदा युवती नारी-तुल्य प्रतीत हो रही थी। प्रफुल्लित तटीय पादपावली उस नारी के आभूषण थे। युगल चक्रवाक उसके युगल स्तन थे। विस्तीर्ण पुलिन स्थूल नितम्ब-प्रदेश था। हंसावली उस नारी की सुन्दर मेखला थी। ऊर्जस्वित पुष्प-रेणु चारु अंगों में लिप्त अंगराग था। जल का उज्ज्वल फेन महीन पारदर्शी वस्त्र परिधान था। उत्फुल्ल कमल कमलाक्ष थे। शीतल उत्साहवर्धक जल में स्नान करना नारी का स्पर्श-सुख था। तरंगों मे क्रीडारत नक्र, मीन, विहंगमों के कारण नर्मदा भीरु कामिनी-तुल्य लग रही थी।

शुक, शारण, महोदर, धूम्राक्ष, प्रहस्त आदि के साथ रावण रमणीय नर्मदा-तट पर पुष्पक विमान से उतरा। स्नान किया। मुनिगण-सेवित तट पर अपने मन्त्रियों सहित बैठ गया। बोला :

"नर्मदा साक्षात् गंगा है।"

विधिवत् रावण ने जप किया। स्वच्छ वस्त्र धारण किया। रावण के मन्त्री तथा साथियों ने शीतल आनन्दवर्धक नर्मदा के प्रवाह में स्नान किया।

रावण सर्वदा सुवर्ण शिवलिंग साथ रखता था। उसने शिवलिंग बालुका की वेदिका पर स्थापित कर दिया। मुहूर्त्त मात्र मे राक्षसों ने श्वेत तोयद-तुल्य पुष्पों का पहाड़ पूजा निमित्त वना दिया।

रावण ने शिवलिंग की पूजा अमृत समान सुगन्धित पुष्पों द्वारा की। शंकर-भक्त रावण भक्ति-आवेग में गाने लगा। गाते-गाते वह हाथ पसार कर लिंग के सम्मुख नृत्य-रत हो गया।

:o: :o: :o:

रावण की पूजा समाप्त नहीं हुई थी। अकस्मात् नर्मदा की धारा रुक गई। उलटी बहने लगी। जल की धारा में पूजा के पुष्प बहने लगे। रावण की पूजा आधी हुई थी। रावण ने नर्मदा का प्रतिकूल प्रियकान्ता-तुल्य व्यवहार देखा। समुद्रोद्‌गार-तुल्य पश्चिम में आता पूर्व को उठता जल बढ़ गया था। इस वाढ़ मे वर्षा-कालीन मलिनता नहीं थी। रावण ने उसे विकार-रहित अंगना-तुल्य देखा। उसने मौन व्रत तोड़ा नहीं।

शुक, शारण मन्त्रियों को दाहिने हाथ की उँगली से जल-वृद्धि का हेतु जानने का संकेत किया ।

शुक और शारण पश्चिम की ओर चले ।

:०: :०:

"राक्षसेन्द्र ! शाल वृक्ष-तुल्य एक महान् पुरुष स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा-रत है । उसकी विशालता के कारण जल-प्रवाह स्तम्भित हो गया है । जलक्रीड़ा के कारण नदी के वेग ने प्रतिकूल स्थिति प्राप्त की है । महार्णव की उत्ताल तरंगों-तुल्य जल उठ रहा है ।"

"वह पुरुष यहाँ से आध योजन नदी के अर्ध भाग में सहस्रों बालाओं से घिरा हुआ है । उसके केश जल द्वारा ओतप्रोत हैं । नयनों में मद की लाली है । चित्त मद-व्याकुल है । अपनी सहस्र भुजाओं द्वारा उसने नदी-वेग को अवरुद्ध कर दिया है । उसके सहस्रों चरण पृथ्वी का अवरोध कर पर्वत-सदृश शोभित हैं ।"

"यही अर्जुन है ।"

रावण हर्षातिरेक में युद्ध-उत्साह से पूर्ण हो गया । वह अर्जुन की ओर चला । उसके साथ चल रहे थे महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक तथा शारण ।

"अमात्य ! हैहयपति को सूचित करो, मैं रावण हूँ । युद्ध के लिए आया हूँ," रावण ने उद्दण्डतापूर्वक कहा ।

सहस्रार्जुन के मन्त्रियों ने साश्चर्य रावण की बात सुनी । उन्होंने तुरन्त आयुध धारण कर लिया । वे व्यंगपूर्वक बोले ।

"रावण ! साधु ! साधु ! युद्ध-निमित्त अच्छा समय चुना है । राजा स्त्रियों सहित स्नान कर रहे हैं । इस दशा में युद्ध करेंगे ? एक रात ठहरिए । यदि आप युद्धार्थ इतने उत्सुक हैं तो कल राजा से मिलिएगा ।"

रावण ने कुछ उत्तर न दिया । अपने अस्त्र-शस्त्र देखने लगा ।

"दशग्रीव ! यदि आप युद्धार्थ कटिबद्ध हैं तो पहले हम लोगों से युद्ध कीजिए । तत्पश्चात् राजा को समरांगण-निमित्त निमन्त्रित कीजिएगा ।"

:०: :०: :०:

रावण तथा अर्जुन के मन्त्रियों में घोर युद्ध आरम्भ हो गया। हैहयराज के मन्त्रियों तथा लंकापति के अमात्यों का युद्ध लोमहर्षण था। अर्जुन के सामन्त आहत हुए। भयविह्वल वे राजा के पास गए। घटना का वर्णन किया।

क्रूरकर्मा रावण के क्रूर कर्म का वृत्तान्त अर्जुन ने धैर्यपूर्वक सुना। क्रीड़ारत स्त्रियों से कहा : "भयभीत मत हो।"

अर्जुन जल से निकला। नेत्र क्रोध से रक्तपूर्ण थे। वह प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित हो गया। गदा उठा ली। सूर्य जिस प्रकार अन्धकार पर आक्रमण करता है, उसी प्रकार अर्जुन ने रावण तथा उसकी सेना पर आक्रमण किया। सूर्य का मार्गावरोध विन्ध्य पर्वत ने पूर्व काल में किया था। प्रहस्त भी अर्जुन के मार्ग में उसी प्रकार पर्वत-तुल्य खड़ा हो गया। प्रहस्त ने मूसल चलाया। मूसल के अग्र भाग से लाल अग्नि-ज्वाला उद्भूत हो रही थी। अर्जुन ने गदा द्वारा प्रहार निरर्थक कर दिया। अर्जुन के गदा-प्रहार से प्रहस्त लोट गया। प्रहस्त के परास्त होते ही मारीच, शुक, शारण, महोदर, धूम्राक्ष रणभूमि से पलायन कर गए।

अमात्यों का पलायन देख, रावण कुपित हो गया। उसने अर्जुन पर प्रहार किया।

उन दोनों महान् वीरों का भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। वे दो विक्षुब्ध सागरों, मूल-प्रकम्पित दो पर्वतों, तेजयुक्त दो आदित्यों, प्रवहमान् दो अनिलों, बलोद्धत दो गजराजों, काम-पीड़ित गाय निमित्त लड़ने वाले दो वृषभों, घोर गर्जनशील दो मेघों, बलोत्कट दो सिंहों, क्रोधित काल तथा रुद्र की तरह परस्पर संघर्षरत हो गए थे।

गदाओं के आघातों से बिजली की कड़क-तुल्य ध्वनि उत्पन्न होकर दिशाओं को प्रकम्पित करने लगी। सक्रोध अर्जुन ने रावण के वक्ष-स्थल के मध्यदेश पर क्रूर प्रहार किया। अर्जुन की गदा वक्ष-स्थल से टकरा कर भग्न हो गई। किन्तु धनुष-प्रमाण रावण पीछे हट गया? वह आर्त्तनाद करता बैठ गया। गरुड़ जैसे पन्नग पर वेगपूर्वक झपटता है, उसी प्रकार अर्जुन ने तुरन्त रावण को झपटकर पकड़ लिया। भगवान् ने बलि को जिस प्रकार बाँध लिया था, उसी प्रकार अर्जुन ने रावण को बाँध लिया।

रावण को वन्दी देखा संज्ञा-प्राप्त करते हुए प्रहस्त ने। वह मूसल तथा शूल द्वारा अर्जुन पर प्रहार करते हुए कहने लगा :

"राजा को मुक्त करो! राजा को मुक्त करो!"

अर्जुन ने शेष राक्षसों को पराजित कर दिया।

अर्जुन के गदा-प्रहार से रावण विह्वल होकर एक किनारे बैठ गया था। उसकी आँखें भर आई थी।

वन्दी रावण के साथ अर्जुन ने नगर की ओर प्रस्थान किया। रावण के सामन्त और साथी पलायन कर गए।

:o: :o: :o:

माहिष्मती नगरी में सूर्य-प्रभा-तुल्य पुलस्त्य मुनि का आगमन हुआ। वे नभ-पथ से पृथ्वी पर उतरे। पैदल राजभवन की ओर अग्रसर हुए। अर्जुन के सेवको ने उन्हें पहचाना। राजा को सूचित किया।

समाचार राजा ने सुना। पुरोहितों को आगे कर ऋषि के स्वागत निमित्त चले।

उन्होंने भास्कर-समान तेजस्वी पुलस्त्य के चरणो में सादर नमन किया। पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क एवं गोदान द्वारा पूजा की।

राजा अर्जुन गद्गद स्वर में बोले : "द्विजेन्द्र! माहिष्मती नगरी आपके आगमन द्वारा अमरावती-तुल्य गौरवान्वित हुई है। आपका दर्शन दुर्लभ है। इस दुर्लभ वस्तु को पाकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं है।

"देव! आज मेरा कुशल है। आज मेरे व्रत सफल है। आज मेरा जन्म सफल है। आज मेरा तप सफल है। आज मैं देवताओं द्वारा पूजित आपके चरण-कमलों की वन्दना कर रहा हूँ।

"ब्रह्मन्! राज्य, पुत्र, दारा, सब कुछ आपका है। आज्ञा दीजिए। हम क्या कार्य सम्पादन करे?"

"राजन्! धर्म, अग्नि, पुत्र कुशल से है?"

"आपका आशीर्वाद।" हैहयराज ने विनयपूर्वक कहा।

"नरेन्द्र!" कमल-नयन पूर्ण चन्द्रनिभानन पुलस्त्य ने हैहयराज अर्जुन से कहा. "आपका बल अतुलनीय है। आपने दशग्रीव को जीता है। चंचल

सागर और अग्नि स्वाभाविक चंचलता परित्याग कर जिसके भय से स्थिर हो जाते हैं, उसी रण-दुर्जय मेरे पौत्र रावण को आपने बन्दी किया है। पौत्र के यश का पान किया है। स्वयं ख्याति प्राप्त की है।

"वत्स !" पुलस्त्य ने याचना-स्वर में कहा : "मैं याचना करता हूँ, आप मेरे पौत्र को बन्धन-मुक्त कर दीजिए।"

पुलस्त्य ऋषि की आज्ञा राजा ने शिरोधार्य की। राजा अर्जुन ने राक्षसेन्द्र रावण को प्रसन्नतापूर्वक मुक्त कर दिया।

:o: :o: :o:

रावण लज्जित था। राजा अर्जुन ने स्नेह से कहा :

"आओ मित्र, तुम अतिथि हो !"

सस्मित राजा ने दिव्य आभूषण, माला तथा वस्त्र द्वारा रावण का सत्कार किया।

---

वाल्मीकीय रामायण : उत्तरकाण्ड : ३१
बालकाण्ड : ७५
आनन्द रामायण : सारकाण्ड : १३
महाभारत : आदि पर्व : ६६, १०४
वन पर्व : ११५ : १३-१४
शान्ति पर्व . ४६ : ३८, ४३, ४८, ५३
अनुशासन पर्व : ११५ : ६०, १५२ : ७-१०, १५-२२, १५७ : २४-२६
आश्वमेधिक पर्व : २६ : ? ११
सभा पर्व : ८
द्रोण पर्व : ७०

अग्नि प्रज्वलित की गई ।

राजा अर्जुन एवं रावण मित्रों-सदृश मिल गए । अग्नि को साक्षी माना । अहिंसक सखा बने रहने की परस्पर प्रतिज्ञा की ।

---

पुराण : नारद १ . ७६; मत्स्य ४३, ४४, ६८; गणेश १ ७२-७३, मार्कण्डेय १६, १७, वायु २ ३२-३३, हरिवंश १ : ३३, विष्णु ४ · ११; पद्म : सृष्टि खण्ड १२; पद्म · उत्तरखण्ड २४१, २४२-२४७; अग्नि ४, २७५; ब्रह्म १३, २१३; विष्णु धर्मोत्तर १, २, २३, भागवत ९६, १५, २३; ब्रह्माण्ड ३ · ४६, ६६, ३, २१, ५, ४७, ६१ लिंग १ · ६८; ब्रह्म वैवर्त्त ३ : ३३-४० ।

# सीता-निर्वासन

"भद्र !" मध्यकक्षान्तर आसीन राजा राम ने पूछा : "नगर में आजकल किस विषय की कथा प्रचलित है ? सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा माता कैकेयी के विषय में पौर तथा जनपदीयगणों का क्या विचार है ? आचारहीन राजा वन तथा राज्य दोनों स्थानों में निन्दा का पात्र हो जाता है।"

"पुरुषर्षभ ! प्रांजलिभूत भद्र ने कहा : "आपके प्रति पुरवासियों के विचार शुभ हैं। आपकी दशग्रीव-विजय-गाथा नगर तथा पौरजनों में सर्वप्रिय है।"

विजय, मधुमत्त, काश्यप, मंगल, कुल, सुराजिकालिय, भद्र, दन्त-वक्र, सुमागध आदि सखाओं से राम घिरे बैठे थे। सबने मस्तक हिलाकर भद्र की बातों का समर्थन किया।

"भद्र !" राम ने गम्भीरतापूर्वक कहा : "पुरवासी शुभ-अशुभ जो कुछ मेरे विषय में चर्चा करते हैं, यथातथ्य उनका वर्णन करो। अशुभ बातों का परित्याग करूँगा। शुभ का आचरण करूँगा।"

भद्र ! तुष्णीभूत हो गया। राम ने भद्र को सम्बोधित किया :

"भद्र ! अशुभ चर्चा विशेषतः सुनना चाहता हूँ।"

भद्र मौन था।

"भद्र !" राम ने पुनः कहा : "निर्भय नि.संकोच कहो। विश्वास रखो, मैं अप्रसन्न न हूँगा।"

"राजन् !" भद्र ने नत दृष्टि से कहा : "पौर गण, चौराहों पर, वन-उपवन में, राजपथों पर, बाजार में कहते हैं—"श्रीराम ने समुद्र पर सेतु बाँध कर दुष्कर कार्य सम्पादन किया है। दुर्धर्ष रावण का वध किया। वानर तथा ऋक्ष वशवर्ती किए हैं किन्तु..."

भद्र रुक गया। राम ने उसे उत्साहित करते हुए कहा :

"और ?"

"क्षमा हो राजन् ।" भद्र ने अत्यन्त नत-दृष्टि से भूमि की ओर देखते हुए कहा : "शुभ चर्चा के पश्चात् पौर तथा जनपदीय गण अमर्ष-चर्चा करते है ।"

"अमर्ष !" राम ने साश्चर्य पूछा ।

"राजन् ! वे कहते हैं : 'रावण सीता को वलपूर्वक अंक मे उठा ले गया । रावण का वध कर सीता को आप वापस ले आए । वह आपके सुख की केन्द्र हो गईं । मन में रोष नहीं हुआ । अमर्ष नही हुआ । सीता का सुख उन्हे कैसा लगता होगा, सीता लका मे थी । क्रीडा-कानन अशोक-वाटिका में रहीं । वर्षों राक्षसों के यहाँ निवास किया । उन्हे आपने कुत्सित भाव से नहीं देखा । हम लोगों को अव स्त्रियो के इस प्रकार का आचरण सहना पड़ेगा ।' वे कहते है—'राजा जैसा करता है, प्रजा उसी का अनुकरण करती है ।'

भद्र की वात सुनकर राम आर्त्त हो गए । सवके मस्तक झुक गए । भद्र नीरव हो गया । भद्र की स्थिर, मधुर, किन्तु स्पष्ट वाणी राम के कानो में गूँजती रही ।

राम शान्त होने लगे । मुख-मण्डल पर विषाद का चिह्न प्रकट होने लगा । राम ने नीरवता तोड़ी ।

'सुहृद् !" राम ने परमार्त्तवत् पूछा . "क्या वह सव सत्य है ?"

"निस्सन्देह !" कहते ही सवके मस्तक भूमि से लग गए । उनकी वाणी में दीनता थी । वे आगे कुछ कह न सके ।

राम अत्यन्त गम्भीर हो गए । अनेक प्रकार की विचारधाराएँ टक्कर खाने लगीं । किसी का साहस नही हुआ कि कुछ बोल सके ।

सखाओ ने भूमि-स्पर्श कर प्रणाम किया । चुपचाप मध्यान्तर-कक्षा से वाहर निकल गए । राम स्थिर, शान्त, समाधिस्थ-तुल्य बैठे रहे ।

:o: :o: :o:

"द्वा.स्थ !" राम ने द्वारपाल को बुलाया । नतमस्तक, कृतांजलिभूत ारपाल राम के सम्मुख आया ।

"शीघ्र शुभ लक्षण लक्ष्मण, महाभाग भरत, अपराजित शत्रुघ्न से आगमनार्थ निवेदन करो।"

मूर्ध्नि कृतांजलि द्वारा द्वाःस्थ ने आज्ञा शिरोधार्य की।

:o: :o: :o:

"वृद्धि हो!" कृतांजलिपूर्वक द्वाःस्थ ने अभिवादन किया। बिना रोक-टोक द्वारों का अतिक्रमण करता लक्ष्मण के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। लक्ष्मण की आँखे उसकी ओर उठ गई।

"राजा आपको शीघ्र देखना चाहते हैं। कृपया पधारिए।"

"अच्छा!"

लक्ष्मण शीघ्रतापूर्वक उठे। रथारूढ़ हुए। राम के निवेशन की ओर प्रस्थान किया।

लक्ष्मण को प्रस्थान करता देख द्वारपाल भरत के आवास की ओर चला।

:o: :o: :o:

"वृद्धि हो!" हाथ जोड़कर द्वाःस्थ ने अभिवादन किया।

भरत ने द्वारपाल की ओर देखा।

"राजा आपको देखना चाहते हैं।" विनयी द्वाःस्थ ने विनयपूर्वक कहा।

भरत आसन त्याग कर खड़े हो गए। महाबल भरत पैदल राम-निकेतन की ओर चल पड़े। भरत को जाते देखकर द्वाःस्थ शीघ्रतापूर्वक चला शत्रुघ्न के भवन की ओर।

:o: :o: :o:

"रघुश्रेष्ठ!" द्वाःस्थ ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

शत्रुघ्न ने द्वाःस्थ की ओर देखा।

"राजा आपको देखना चाहते हैं। लक्ष्मण और महायशस्वी भरत पधार चुके हैं।"

शत्रुघ्न आसन से उठे। राम का स्मरण किया। शिरसा भूमि-स्पर्श कर वन्दना की। राम के निवास-स्थान की ओर चल पड़े।

"भ्रातागण उपस्थित है।" द्वाःस्थ ने कृतांजलिपूर्वक निवेदन किया।

चिन्ताशील, व्याकुल-इन्द्रिय, नत-मस्तक, दीनमन, राम ने द्वारपाल की बात सुनी।

"कुमारों को शीघ्र बुलाओ।"

कुमारगण शुक्ल वस्त्रधारी थे, प्राजलिभूत थे। अत्यन्त सावधानी से राम के समीप शनैः-शनैः अग्रसर हुए।

कुमारों ने देखा, राहुग्रस्त शशि-तुल्य राम का उदास मुख। मुखमण्डल सन्ध्याकालीन सूर्य-तुल्य प्रभाहीन हो रहा था। कमल-मुख शोभाहीन हो गया था। धीमान् राम के नेत्र वाष्पपूर्ण थे।

कुमारों ने राम के चरणों मे मस्तक रखकर अभिवादन किया।

रामचन्द्र बोल न सके। उनकी आँखो से अजस्र अश्रु-वर्षा हो रही थी।

राम उठे। भरे हृदय से भ्राताओं का आलिंगन किया। उन्हें हाथ से आसन की ओर संकेत करते हुए कहा :

"आसन ग्रहण करो।"

कुमारगण आसीन हुए।

रामचन्द्र अपने आसन पर बैठ गए।

"नरेश्वर!" राम बोले. "आप मेरे सर्वस्व हैं। जीवन हैं। आप लोगों के द्वारा सम्पादित राज्य का पालन करता हूं।"

कुमार नतमस्तक हो गए।

"काकुत्स्थ!" राम ने कहा : "आपने शास्त्रो का अनुशीलन किया है। आप लोग बुद्धि-परिनिष्ठित हैं। अतएव सुनिश्चित बताए हुए विहित कार्यों को निस्संकोच सम्पादन करना चाहिए।"

कुमार अवधान-परायण हो गए। मन उद्विग्न हो गया। राजा, ज्ञात नही, क्या आज्ञा दें!

"काकुत्स्थ!" परिशुष्क मुख से राम बोले : "तुम्हारा कल्याण हो। मेरी बातें स्थिर-चित्त सुनिए। पौरों तथा जानपदों मे मेरे तथा सीता के विषय में पौरापवाद व्याप्त है। उस वीभत्स वार्ता से मेरा मर्मस्थल विदीर्ण

हो रहा है। हम महात्मा इक्ष्वाकु के वंशीय हैं। सीता ने भी महात्मा जनक के सत्कुल में जन्म ग्रहण किया है।"

"सौम्य लक्ष्मण!" राम ने कहा: "निर्जन दण्डक वन में रावण ने सीता का अपहरण किया था। मैंने रावण का विध्वंस किया। उस समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ था, लंका में बहुत दिन रहने के पश्चात् किस प्रकार सीता को अयोध्या ले चलूँगा ?

"सौमित्र!" राम ने लक्ष्मण की ओर देखकर कहा: "उस समय प्रत्ययार्थ सीता ने अग्नि-ज्वाला मे प्रवेश किया था। हव्यवाहन अग्नि ने तुम्हारे सम्मुख मैथिली को "अपाप" कहा था। आकाशगामी वायु ने, चन्द्र ने, आदित्य ने देवताओं तथा ऋषियों के सम्मुख जनकनन्दिनी को निष्पाप कहा था। महेन्द्र ने लंका मे सीता को शुद्धाचारिणी घोषित किया था। देवों और गन्धर्वो के सम्मुख मुझे दिया था। मेरी अन्तरात्मा कहती है, यशस्विनी सीता शुद्ध है। अतएव वैदेही को मै अयोध्या ले आया।

"किन्तु महान् जनापवाद फैल रहा है। निन्दा हो रही है। मेरा हृदय शोकाकुल है। लोक में अपकीर्ति-चर्चा के कारण मनुष्य अधम लोक में पतित हो जाता है। अकीर्ति की निन्दा तथा कीर्ति की प्रशंसा होती है। कीर्ति द्वारा लोक में पूजा होती है। सुमहात्मागण कीर्ति के निमित्त शुभ आयोजन करते है।

"पुरुषर्षभ!" राम ने कहा: "अपवाद भय से अपना जीवन तथा प्राणप्रिय आप लोगों का त्याग कर सकता हूँ। जनकात्मजा को त्यागना कौन बड़ी बात है ? यही मेरे शोक का कारण है।"

कुमारगण मौन थे।

"सौमित्र!" राम ने कहा: "मेरे जीवन का यह सबसे बड़ा दु:ख है। तुम प्रात:काल सारथी सुन्मत से रथ मँगवा लो। सीता को रथारूढ़ कर, राज्य सीमा के वाहर गंगा के उस पार छोड़ आओ।"

विस्मयापन्न लक्ष्मण के नत नेत्र राम की ओर उठे।

"गंगा पार महात्मा वाल्मीकि का तमसा-तट पर दिव्य आश्रम है। उसी विजन देश में सीता को त्यागना!"

लक्ष्मण कुछ कहना ही चाहते थे, राम ने उन्हें रोकते हुए कहा:

"सौमित्र ! मेरी आज्ञा का पालन करो । सीता के सम्बन्ध में कुछ मत कहो । प्रस्थान करो । संशयाभिभूत मत हो । तुम्हारी किसी प्रकार की प्रतिवारता मुझे अप्रीतिकर होगी ।"

भरत और शत्रुघ्न की ओर देखकर राम ने कहा :

"मै तुम्हें अपने चरण की शपथ देता हूँ, जीवन की शपथ देता हूँ, मेरे इस निर्णय के विरुद्ध कुछ मत कहना । मेरे वाक्यांतर में जो भी कुछ कहने की चेष्टा करेगा, वह मेरे अभीष्ट कार्य मे बाधक होगा, मेरा शत्रु होगा । यदि मै आपका मान्य हूँ, यदि आप मेरा अनुशासन मानते है, तो सीता को निर्वासित कर मेरी आज्ञा का पालन कीजिए ।

"सीता ने मुझसे कहा था । वह गगातटीय आश्रमों को देखना चाहती है । सीता का मनोरथ पूरा कीजिए ।"

राम की आँखे भर आई । वे भ्राताओं सहित राज-प्रासाद में चले गए ।

:o: :o: :o:

रजनी बीती । आकाश अरुण हुआ ।

"सारथे ! परिशुष्क-मुख दीन लक्ष्मण ने सुमन्त से कहा :

"शीघ्रगामी तुरंगो को जोतकर उत्तम रथ लाओ । सीता के लिए उस पर, सुखशय्यायुक्त सुन्दर आसन बिछा दो । राजा की आज्ञा से सीता को पुण्यकर्मा ऋषियों के आश्रम मे ले जाऊँगा ।

"भगवन् !" सुमन्त ने आज्ञा शिरोधार्य की ।

"मै देवी सीता को लाता हूँ ।"

लक्ष्मण ने सीता के सद्म की ओर प्रस्थान किया ।

:o: :o o.

"देवि !" लक्ष्मण ने संतप्त स्वर मे कहा : "आपने आश्रम देखने की इच्छा प्रकट की थी । प्रभु ने आपको भेजने की प्रतिज्ञा की थी । नृप ने प्रतिज्ञा-पूर्ति निमित्त मुझे भेजा है । मै आपको आश्रम में ले जाने के लिए आया हूँ । गंगा-तटवर्ती मुनिजन-सेवित आश्रम में ले चलूँगा ।

सीता के मुख पर अनुपम प्रसन्नता थी। प्रस्थान-हेतु तुरन्त उद्यत हो गईं। वस्त्र, आभूषण, विविध रत्नादि मुनि-पत्नियों को देने के लिए साथ ले लिए।

"देवि! पधारिए।" सौमित्र की वाणी अत्यन्त संयत एवं गंभीर थी।

"चलो।"—सीता का मुख खिल गया।

:o: :o: :o:

सुमन्त रथ के समीप नत-मस्तक खड़े थे। शीघ्रगामी अश्वों से जुते रथ में सुन्दर सुख-शय्या बिछी थी। सीता रथारूढ़ होने चलीं। लक्ष्मण का हृदय काँप उठा। सुमन्त ने दूसरी ओर मुख फेर लिया। सीता का हृदय अचानक भारी हो गया। पद गतिहीन से मालूम होने लगे; किन्तु वह रथारूढ हुईं। रथ वेग से दौड़ पड़ा।

अनेक योजन मार्ग का अतिक्रमण हो चुका था। सीता का मन उद्विग्न था। सीता बोलीं:

"रघुनन्दन! अशुभ लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हे। दक्षिण नेत्र में स्फुरण हो रहा है। गात्रों में कम्पन है।"

लक्ष्मण ने संयम से मानसिक भाव दबाया। मुख-मुद्रा में परिवर्तन नहीं होने दिया, किन्तु कुछ उत्तर नहीं दे सके।

"सौमित्र! मेरा हृदय अस्वस्थ मालूम होता है। उत्सुकता बढ रही है। परम अधीरता अनुभव कर रही हूँ।"

लक्ष्मण सम्मुख का मार्ग लक्ष्य कर रहे थे।

"पृथुलोचन! पृथ्वी मुझे शून्य दिखाई पड़ रही है। भ्रातृवत्सल! तुम्हारे भाई का मंगल हो। वीर! मेरी सासों का कल्याण हो! पुर तथा जनपद के प्राणी सकुशल रहें।"

सीता ने करबद्ध श्रद्धाभक्तिपूर्वक देवताओं को नमस्कार किया।

लक्ष्मण ने सीता की अधीर वाणी सुनी। मैथिली की शिरसा वन्दना की। कुछ बोले नही। सुमन्त को संकेत किया। रथ वायु के साथ स्पर्धा करने लगा।

:o: :o: :o:

वैदेही की रात्रि गोमती-तट पर आश्रम में व्यतीत हुई। प्रातःकाल लक्ष्मण ने सारथी को तुरन्त रथ लाने के लिए आदेश दिया :

"शीघ्रता करो। देवी जाह्नवी का जल मस्तक पर धारण करेंगी।"

सारथी ने मन-तुल्य वेगशाली चार अश्वो को रथ मे जोता। रथ तैयार हो गया। विदेहनन्दिनी से लक्ष्मण ने करबद्ध निवेदन किया :

"देवि ! रथारूढ होइए।"

रथ पापविनाशिनी गगा-पट पर पहुँचा। मध्याह्न काल था। लक्ष्मण गंगा-जल देखते ही रोने लगे।

"लक्ष्मण !" सीता ने चिंतित स्वर मे पूछा :

"तुम रोने क्यो लगे ? गगा का मैं बहुत दिनों से दर्शन करना चाहती थी। अभिलाषा पूर्ण हुई। हर्ष के समय विषाद कैसा ?"

लक्ष्मण व्याकुल थे। आतुर थे। सीता संयत-चित्त थी। सावधान थी। किन्तु लक्ष्मण की अविरल अश्रुधारा रुकती न थी।

"पुरुषर्षभ !" सीता ने कहा "तुम नित्य राम के समीप रहते हो। उनके वियोग से इतने दु:खी हो गए ? मुझे वे जीवन से अधिक प्रिय हैं। मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नही हो रही है। तुम वालबुद्धि मत वनो। गंगा चलो। तापसों का दर्शन करना चाहती हूँ। मुनियो को वस्त्र तथा आभूषण दूँगी।

"महर्षियो का अभिवादन करूँगी। वहाँ एक रात्रि व्यतीत करूँगी। दूसरे दिन अयोध्यापुरी लौट आऊँगी।"

लक्ष्मण की अश्रुधारा और वेगवती हो गई।

:o: :o: :o:

"नाविक !" लक्ष्मण ने आदेश दिया. "नौका लाओ। देवी पार उतरेंगी।"

"प्रस्तुत है," नाविक ने करबद्ध कहा।

नाव विस्तीर्ण थी। सुसज्ज थी। लक्ष्मण ने सर्वप्रथम मैथिली को विठाया।

"सुमन्त !" नाव पर आरूढ होकर लक्ष्मण ने कहा. "रथ यही लेकर ठहरो।"

सुमन्त की अश्रुपूर्ण आँखें नत हो गईं। सुमन्त ने देवी मैथिली को शिरसा नमन किया।

"नाविक!" शोक-संतप्त लक्ष्मण विह्वलता-पूर्वक बोले : "उस पार ले चलो।"

नाव एक तट को छोड़कर दूसरे तट की ओर चली।

:o: :o: :o:

तट पर नाव लगी। सीता उतरीं। सीता आगे चलीं। लक्ष्मण रुकने लगे। सीता ने घूमकर लक्ष्य किया। लक्ष्मण की आँखें भरी थीं। मुख मलिन था। वे प्रभाहीन थे। सीता ठिठक गईं। जिज्ञासु कमल-लोचन लक्ष्मण पर स्थिर हो गए।

'वैदेहि!" करबद्ध लक्ष्मण ने दीन वचन कहे—"जिस कार्य के कारण लोक में मेरी निन्दा होगी, मैं अकीर्ति का पात्र बनूँगा, जानकर बुद्धिमान् राम ने वही कार्य मुझे सौंपा है। मृत्यु अथवा मृत्यु से भी बढ़कर वस्तु मेरे लिए श्रेयस्कर है। जिस लोक-निन्दित कार्य-निमित्त मे नियोजित किया गया हूँ, वह अच्छा नहीं है।

"शोभने! कोई पाप नहीं कर रहा हूँ। मुझसे दु:खी मत होइए।" कहते-कहते लक्ष्मण प्रांजलिभूत भूमि पर गिर पड़े।

लक्ष्मण का भूमि पर गिरना, मृत्यु की आकांक्षा करना, सुनकर सीता उद्विग्न हो गईं। शंकाएँ उठने लगीं।

"लक्ष्मण! तुम स्वस्थ-मना नहीं हो। मैं कुछ समझ नही पा रही हूँ। महीपति कुशलपूर्वक तो है? मैं तुम्हें राजा की शपथ देती हूँ, तुम संतप्त-हृदय क्यों हो? कारण मुझसे ठीक-ठीक कहो। कारण क्यों नहीं कहते? मैं तुम्हें कहने का आदेश देती हूँ।"

लक्ष्मण उदास थे। अवाङ्मुख थे। कण्ठ भारी था। दीनचेतन थे। नतमस्तक थे।

"देवि! परिषद् में आपके विषय में व्याप्त दारुण अपवाद राम ने सुना। राम का हृदय अपवाद से संतप्त हो गया। मुझे आज्ञा देकर राज-प्रासाद में चले गए। दु:ख-मिश्रित क्रोध के कारण जिन बातों को राजा ने हृदयस्थ कर रखा है, वे कलंकपूर्ण बातें कहने योग्य नहीं है। आप निर्दोष

हैं। आप की निर्दोषिता मेरे सम्मुख प्रमाणित हो चुकी है। पौरापवाद से भयभीत राम ने आपका त्याग किया है।"

सीता शून्यता का बोध करने लगी।

"देवि ! आप दूसरा विचार मत कीजिएगा। मैं अपराधी नहीं हूँ। मैं राजा की आज्ञा और आपके इच्छानुसार ही सब कुछ कर रहा हूँ।"

देवी सीता स्तब्ध हो गईं।

"शुभे ! जाह्नवी-तट पर रमणीय ब्रह्मर्षियों का पवित्र तपोवन है। विषाद मत कीजिए। मुनि-पुंगव महर्षि वाल्मीकि पिता दशरथ के मित्र हैं।

"मैं आपका साथ वहीं छोड़ दूँगा। आप उनके आश्रम में सुखपूर्वक निवास कीजिए। जनकात्मजे ! उपवास-परायण तथा एकाग्र चित्त होकर पातिव्रत्य धारण कीजिए। आपका परम कल्याण होगा।"

सुनते ही सीता मूर्च्छित हो गईं। भूमि पर गिर पड़ी। वह मुहूर्त्त काल के लिए संज्ञा-विहीन हो गईं। लोचनों द्वारा अजस्र अश्रुधारा बह चली। किंचित् संयत होने पर उनके लोचन सौमित्र की ओर उठे :

"लक्ष्मण !" देवी की दीन वाणी मुखरित हुई : "ब्रह्मा ने क्या दु:ख-निमित्त ही मेरी रचना की थी ? समस्त दु:ख मूर्तिमान् सम्मुख आकर खड़े हो गए हैं। मैंने क्या पाप किया है ? किसका पत्नी-वियोग कराया है ? शुद्ध आचरण होने पर भी राजा ने मेरा त्याग क्यों किया है ? मैं राम पादानुवर्तिनी थी। उनके साथ आश्रम में दु:खमय काल व्यतीत किया है। प्रियजन-शून्य आश्रम में कैसे निवास करूँगी ? अपना दु:ख किससे कहूँगी ?

"सौम्य ! मुनिजन पूछेंगे, किस अपराध के कारण महात्मा राघव ने त्याग किया है ? मैंने क्या दोष किया है ? मैं उनको क्या उत्तर दूँगी ?"

देवी के विलाप से पाषाण भी पिघल उठे। अविरल अश्रुधारा में जैसे गलता हृदय बाहर निकलने लगा। निमेष कार्य भूल गए। उज्ज्वल पुतलियाँ जलपूर्ण छलछला आईं। वे करुणा बटोरे अनजाने कुछ देखने का प्रयास कर रही थीं।

लक्ष्मण ने शोकोद्वेग में हाथों से दोनों नेत्र मूँद लिए। उनकी हिचकी बँध गई। वे शिशु-तुल्य रोने लगे।

सौमित्र ! गंगा-जल में जीवन प्रवाहित नहीं कर सकती। पति का वंश लुप्त हो जायगा। मैं गर्भवती हूँ। उसका नाश नहीं कर सकूँगी। मुझ दु:खिनी का त्याग करो लक्ष्मण ! राजा की आज्ञा का पालन करो। उनके आदेशानुसार काम करो; किन्तु मेरी एक बात सुनते जाओ।"

लक्ष्मण का साहस छूट चुका था। जानकी की ओर पलकें नहीं उठती थीं। सीता आँसू पोंछकर बोलीं :

"बिना भेद मेरी सासों के चरणो में मेरी ओर से अंजलिबद्ध प्रणाम करना। राजा की शिरसा चरणवन्दना करना। उनका कुशल पूछना। शिरसाभिनत होकर सम भाव से सबसे मेरा प्रणाम कहना। मेरा शुभ समाचार उनको देना।

"धर्म-निरत नृपति से, सौमित्र ! कहना : 'राघव ! आप तत्त्वपूर्वक जानते हैं, सीता शुद्ध है। आपकी भक्त है। आपके हित में रत रहती है। वीर ! आपने अपवाद के भय से उसका त्याग किया है। आपकी निन्दा, आपका अपवाद मैं दूर करूँगी। आप मेरी परम गति हैं।'

"धर्मचारी नृपति से कहना, लक्ष्मण ! 'आप पौरगणों के साथ अपने भाइयों जैसा नित्य व्यवहार करें। यही परम श्रेष्ठ धर्म है। यही उत्तम कीर्ति का कारण है। पौरजनों के प्रति धर्माचरण धर्म है'।"

सीता का मन स्थिर हो रहा था। लक्ष्मण के कान सीता की ओर लगे थे। वे साहसपूर्वक शान्त स्थिर खड़े हो गए थे। सीता का एक-एक शब्द स्मरण करने लगे।

"नरर्षभ ! मुझे अपने शरीर की चिन्ता नहीं है। पौरजनों में मेरा अपवाद बना रहेगा, इसकी भी चिन्ता नहीं है। रघुनन्दन ! ! पति नारी का देवता है, बन्धु है, गुरु है, प्राणों का मोह त्यागकर पति का कार्य करना चाहिए।"

सीता ने शान्त स्वर में कहा।

लक्ष्मण चले नहीं।

"लक्ष्मण ! मुझे देखकर जाओ। मेरा ऋतुकाल टल गया है।"

लक्ष्मण का मस्तक नत था। सीता ने तरुओं की ओर देखते हुए कहा :

"मैं गर्भवती हूँ। मेरी सब बातें राम से जाकर कहना।"

दीनचेतन लक्ष्मण कुछ बोल न सके। पृथ्वी से मस्तक लगाकर सीता की वन्दना की। उच्च स्वर से रोते हुए सीता की प्रदक्षिणा की। अनन्तर मुहूर्त्त मात्र विचार किया।

"शोभने !" लक्ष्मण ने मृदुल स्वर में कहा : "आप क्या कहती है ? मैंने पूर्व समय भी आपके पूर्ण रूप को नही देखा था। केवल चरणो का दर्शन किया था। इस एकान्त में, राम की अनुपस्थिति में, किस प्रकार आपको देख सकूँगा ?"

कहते हुए लक्ष्मण ने सीता को पुन. प्रणाम किया।

वे नाव पर चढ़ गए। मल्लाहों ने पतवार सम्हाला।

:o: :o: :o:

नाव चली, शोक-भार-समन्वित लक्ष्मण ने दूसरे तट पर पद रखा। दु:ख-संमूढ लक्ष्मण रथ पर बैठे। वे मुहुर्मुहु: परावृत होकर अनाथ सीता को ओर देखते थे। दूसरे तट पर अनाथ बिलखती सीता को देखते हुए, लक्ष्मण का रथ धीरे-धीरे बढ़ा।

रथ को दूर जाते देखा सीता ने। उद्विग्न हो गई। सौमित्र के अदृश्य होते ही वे दु खभार से झुक गईं।

उनका कोई रक्षक नहीं था। उनका उस विजन में कोई नहीं था। वे अकेली थी, अकेली जैसे जगत् मे आई थी। मयूरों के मधुर नाद से गुंजित, उस एकान्त वन मे, एकाकी उच्च स्वर से रोने लगी। दोनों नाद स्वर एकाकार होने लगे।

वाल्मीकीय रामायण . उत्तरकाण्ड ' ४३-४६

शवले ! शवले !! शवले !!!

गाय के कान खड़े हो गए। उसने क्षुधार्त्त ब्राह्मण का स्वर सुना। "शवले ! शवले !! शवले !!!

गाय चली परिचित ध्वनि की ओर। पहुँच गई पावक-तुल्य तेजस्वी ब्राह्मण के पास।

"ओह ! शवले, मैं तुझे कितना खोजता रहा !"

दरिद्र ब्राह्मण का मुख प्रसन्नता से खिल गया। वह गाय की लुरकी सहलाने लगा। गाय अपना मस्तक ब्राह्मण के हृदयस्थल पर रगड़ती स्नेह प्रदर्शित करने लगी।

शवले ! तू यहाँ कनखल में कैसे आ गई ?" ब्राह्मण ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा।

गाय की आँखों में आँसू थे।

"बच्चा दुर्बल था। कितना हृष्ट-पुष्ट हो गया।"

ब्राह्मण ने प्रेम प्रदर्शित करते हुए बछड़े का मुंह चूम लिया। शवला के कण्ठ में हाथ डालते हुए कहा :

"शवला ! चलो अपने घर पुस्कर क्षेत्र, चलें।"

ब्राह्मण चला। उसके पीछे चल पड़ी प्रसन्न शवला और उसका बच्चा।

:o: :o: :o:

"हे ! हे !! हमारी गाय है, कहाँ लेकर चले ?"

दौड़ता एक कनखल-वासी ब्राह्मण के पास आया। शवला ने एक वार मुड़कर पीछे देखा। कुछ ठिठकी। उपेक्षा से मुँह फेर लिया और पुष्करवासी ब्राह्मण की अनुगामी हुई।

"यह गाय मेरी है।" गाय के पास पहुँचकर कनखलवासी ने कहा।

"वाह ! मेरी गाय है।"

"जी नहीं। मेरे घर थी। कहाँ से आप के साथ चली है ?"

"गाय मेरी है। इसका नाम शवला है। यह इसका वछड़ा है। पुष्कर-क्षेत्र में मेरा निवास-स्थान है। वही से लुप्त हो गई थी। मै चारों ओर व्याकुल इसे ढूँढ़ रहा था। आपके यहाँ देखा। अपनी गाय लेकर मै जा रहा हूँ। गाय मेरी है। मेरे साथ चल रही है। मुझे पहचानती है।"

प्रेम-से पुष्करवासी गाय को सहलाने लगा। ब्राह्मण के प्रदर्शित स्नेह से गाय झूमने लगी।

"यह गाय राजा नृग ने मुझे दान दी थी।"

"मिथ्या वात है। राजा नृग! हमारी गाय वे क्यों दान करने लगे?"

पुष्करवासी ने साश्चर्य पुन. कहा :

"उनका गाय पर क्या अधिकार था?"

"राजा ने एक करोड़ स्वर्ण-विभूषित गाएँ वछडो सहित पुष्कर क्षेत्र मे दान दी थी। मुझे वही यह गाय दान-स्वरूप मिली थी। मै मिथ्या भाषण नहीं करता।"

"मै भी मिथ्या भाषण नही करता।"

कनखलवासी ने शान्तिपूर्वक पुन कहा : "ब्राह्मण! उस समय गाय दुर्बल थी। इसका वछडा छोटा था। मेरी सेवा से देखने योग्य हुई है। वछड़ा वड़ा हो गया है।"

"समय की गति से वढ गया है।"

"गाय मेरी है। आप इसे नहीं ले जा सकते।"

"राजा ने मुझसे गाय खरीदी नही थी। मैंने उन्हे किसी प्रकार दी नहीं थी। राजा के दान के कारण गाय आपकी नही हो सकती।"

"आप नही देंगे?" कनखलवासी ने किंचित् क्रोध-मुद्रा मे कहा।

"नही।" पुष्करवासी ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"हमारे विवाद का निर्णय कैसे होगा?"

"आप वताइए।"

"चलिए राजा नृग के यहाँ।"

"चलिए।"

:o: :o: :o:

"राजा से मिलना चाहते हैं।" राजभवन के द्वार पर स्थित विवाद-ग्रस्त ब्राह्मणों ने कहा।

"क्या प्रयोजन है?"

"न्याय चाहते हैं।"

"राजा को अवकाश नहीं है।"

"कहाँ है?"

"राजभवन में।"

"तो—?"

"हमें खेद है, ब्राह्मण!"

"प्रतिहारी, हम अर्थी हैं। हम वादी-प्रतिवादी है। विवादग्रस्त हैं। न्याय करना राजा का धर्म है। राजा का कर्त्तव्य विवाद का निर्णय करना है। हम बहुत दूर से आए हैं।"

"ठीक है, ब्राह्मण! किन्तु मैं क्या कर सकता हूँ?"

"तो हम क्या करें?"

"पुनः पधारिएगा।"

:o: :o: :o:

"प्रतिहारी! राजा को सूचना दे दीजिए।"

"आप लोग पुनः आ गए?"

"हाँ, प्रतिहारी! बिना विवाद-निर्णय कैसे जा सकते हैं? हम तपस्वी है। हमें यहाँ ठहरे वहुत दिन हो गए।

"दिन बहुत हो गए, सत्य है। राजभवन का द्वार आप लोग अतिक्रमण नहीं कर सकते। राजा राजभवन में है। समय पर वाहर आएँगे।"

"प्रतिहारी! आप कैसी वातें करते है? क्या राजा अपना धर्म भूल गए! उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है? हम प्रजा हैं। इतने दिनों से पड़े हैं। जिस राज्य में न्याय नहीं होगा, प्रजा की वात सुनी नहीं जाएगी, राजा के दर्शन नहीं होंगे, वह राजा भला स्वर्गगामी कैसे होगा? धर्म उसकी रक्षा कैसे कर सकेगा?"

"ब्रह्मन् ! आपका कहना सत्य है। हम केवल वेतनभोगी भृत्य मात्र हैं।"

"प्रतिहारी ! दैनिक कर्त्तव्य-रहित राजा घोर नरकगामी होता है।"

"हम धर्म की बात क्या जाने, महात्मन् !"

"राजा अपने कर्त्तव्य का पालन नही करेंगे ?"

प्रतिहारी मूक था।

दोनों ब्राह्मण राजद्वार पर बहुत दिनों से पड़े रहने के कारण शिथिल हो गए थे। उन्हें क्रोध आ गया।

"राजन् !" क्रोधित ब्राह्मण राजद्वार के सम्मुख खड़े हो गए। शाप देते हुए घोर वाक्य बोले :

"विवाद-निर्णयार्थ आगत याचको से तुम अदृश्य रहते हो, अतएव तुम भूत मात्र से अदृश्य रहनेवाले कृकल होगे !"

प्रतिहारी स्तब्ध हो गया। वह दौड़ पड़ा राजभवन की ओर।

"अब ?" कनखलवासी ने कहा।

"विवाद निर्णय नही हो सका।"

"क्या किया जाय ?"

"आओ ! मित्र !! यह यह गाय किसी ब्राह्मण को दे दें। विवाद स्वतः समाप्त हो जाएगा। गाय न मेरे पास रहेगी, न आपके पास, और दान भी हो जायगा।"

"ठीक।" दोनों ने सहर्ष स्वीकार किया।

गाय तीसरे ब्राह्मण के खूंटे पर बँध गई।

:o: :o: :o:

"मंत्रिगण ! नैगमगण ! पौरगण ! प्रकृतिगण ! आज मुझे कुछ निवेदन करना है। ध्यानपूर्वक सुनिए !"

सब लोग गम्भीर हो गए।

"भगवान् नारद तथा पर्वत आदि ऋषिगण मेरे पास आए थे। उन्होंने ब्राह्मणो के शाप की चर्चा की है।"

"शाप !" आश्चर्यित ध्वनि लोगों के कण्ठों से निकली।

"हाँ ! शाप मुझे मिला है । मैंने राजधर्म का पालन नहीं किया है। कार्यार्थियों से मिल नहीं सका हूँ । मुझे वह कर्त्तव्य करना चाहिए था, जिसके लिए राजा का सर्जन किया गया है।"

"अपने कृत-दोष का फल मुझे भोगना पड़ेगा । मुझ जैसे राजाओं को यदि दण्ड मिले तो क्या आश्चर्य है !"

सबकी मुद्रा गम्भीर हो गई ।

"नारद तथा पर्वत ऋषि मुझे भयान्वित कर चले गए ।"

विस्मयापन्न जनता राजा की ओर देखने लगी ।

"आप लोग वसु कुमार को अभिषिक्त कीजिए । मैं चला, भूमि में विश्राम निमित्त। ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत ऋतु हेतु तीन गड्ढे खुदवाइए । मैं ऋतुओं के अनुसार उनमें निवास करूँगा । मैंने अपराध किया है । मुझे कृकल होने का शाप मिला है। उस शाप को भोगकर प्रायश्चित्त करूँगा। मैं पुनः पवित्र कर्त्तव्य-रत होने का प्रयत्न करूँगा ।"

"वसु ! पुत्र !! तुम धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो । ध्यान रखना एक छोटे से अपराध के कारण मेरी यह गति हुई है। धर्म रक्षा करता है । धर्म सुख देता है और धर्म ही नाश का कारण होता है।"

वसु ने पूछा : "पितः ! आपकी शाप-मुक्ति कैसे होगी ?"

"भगवान् विष्णु यदुकुल कीर्त्तिवर्धन वासुदेव नाम से अवतार लेंगे। कलियुग उपस्थित होने के कुछ काल पूर्व ही नर-नारायण पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण होंगे । उस समय भगवान् की कृपा से मैं शाप-मुक्त हूँगा ।"

—:०:—

---

वाल्मीकीय रामायण : उत्तर काण्ड : ५३, ५४

महाभारत · सभापर्व ८ : ८

वनपर्व ८८ : ५-६

वनपर्व १२१ : १-२

विराटपर्व ५३

पुराण : भागवत : १० : ६४

# निमि

गौतम के पवित्र आश्रम के समीप निमिराज ने एक नगर वसाया। निमिराज इक्ष्वाकुवशीय थे। इक्ष्वाकु के बारहवे पुत्र थे। पराक्रम-सम्पन्न निमिराज ने नगर का नाम वैजयन्त रखा। महापुर वैजयन्त इन्द्र के प्रासाद वैजयन्त-तुल्य था। नगर बस जाने के पश्चात् निमिराज की इच्छा हुई, पिता के मनोह्लाद निमित्त दीर्घसूत्रीय यज्ञ किया जाय।

राजा निमि ने मनु-पुत्र अपने पिता के परामर्श पर सर्वप्रथम ब्रह्मर्षियों में उत्तम वशिष्ठ को यज्ञ-निमित्त वरण किया। अनन्तर राजा निमि ने अत्रि, अगिरा तथा तपोनिधि भृगु को आमंत्रित किया।

"राजर्षे!" वशिष्ठ ने निमि से कहा : "इन्द्र ने मुझे पूर्व ही यज्ञ-निमित्त वरण कर लिया है। आपको इन्द्र की यज्ञ-समाप्ति तक ठहरना चाहिए।"

राजा का मुँह उतर गया।

उपस्थित आमंत्रित ऋषियों की ओर राजा ने देखा। किसी ने कुछ नही कहा। ऋषि वशिष्ठ ने इन्द्र के यज्ञ-सम्पादन निमित्त प्रस्थान किया।

महर्षि गौतम ने राजा को चिन्तित देख कर कहा :

"राजन्!" मै आपका यज्ञ पूर्ण करूँगा। आयोजन कीजिए।"

:o: :o: :o:

हिमालय के समीप तथा वैजयन्त नगर के निकट यज्ञ उत्साहपूर्वक आयोजित किया गया। राजा निमि ने पाँच सहस्र वर्ष दीर्घकालीन यज्ञ की दीक्षा ली।

लोगों ने देखा, आगमनशील महर्षि वशिष्ठ को। इन्द्र-यज्ञ की पूर्णाहुति हो चुकी थी। निमिराज के यहाँ होतृ-कर्म निमित्त वशिष्ठ पधार रहे थे। वशिष्ठ ने अपने स्थान पर देखा महर्षि गौतम को। गौतम होता का कार्य कर रहे थे।

"राजा कहाँ है?" क्रोधित वशिष्ठ ने पूछा।

"सो रहे है," उत्तर मिला।

वशिष्ठ ठहर गए।

दो घड़ियाँ बीतीं।

दिन बीत गया।

राजा निद्रा-वशीभूत सो गया था।

राजा से भेंट न हो सकी।

वशिष्ठ की भृकुटी तनी।

क्रोध से सरल नेत्र लाल हो गए।

"राजन्! तुमने मेरी अवज्ञा की। मेरे स्थान पर गौतम का वरण किया। अतएव तुम्हारा शरीर चेतना से हीन होकर गिर जाएगा।" वशिष्ठ ने भयंकर कठोर शाप दिया।

:o: :o: :o:

राजा की निद्रा खुली।

राजा ने सुना वशिष्ठ का शाप। वे आए यज्ञ-स्थल में। वशिष्ठ को देखा। क्रोध से मूर्च्छित हो गए। महर्षि को सम्बोधित किया :

"महर्षे! मै निद्राग्रस्त था। मुझे आपके आगमन का पता नहीं था। मुझसे आपने कुछ बात नहीं की। आप क्रोध से कलुषित हो गए। काल-दण्ड-तुल्य शापाग्नि का प्रहार किया है। अतः ब्रह्मर्षे! आपका यह सुचिर प्रख्यात देह अचेतन होकर गिर जाएगा।"

शापोच्चारण होते ही रोषाग्नि में राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि दोनों विदेह वायुरूप हो गए

:o: :o: :o:

वशिष्ठ पुनः शरीर-प्राप्ति निमित्त ब्रह्मा के पास गए। पितामह का चरण-वन्दन कर निवेदन किया :

"पितामह! मै निमि के शाप से देहहीन हो गया हूँ। महान् दुःख पा रहा हूँ। देह-हीनता के कारण वायु रूप हो गया हूँ। मेरे सभी कार्य लुप्त हो गए है। मै केवल वायु-रूप, वायु मात्र रह गया हूँ। प्रभो!! सद्भावपूर्वक मुझे दूसरी देह देने की कृपा कीजिए।"

"महायशस्वी!" स्वयंभू अमितप्रभ ब्रह्मा बोले : "तुम मित्र तथा वरुण के तेज मे प्रवेश करो। द्विजोत्तम!! उस तेज में प्रवेश करने पर

तुम अयोनिज रूप से उत्पन्न होगे। अनन्तर धर्मयुक्त होकर मेरे पुत्र होगे।"

वशिष्ठ ने ब्रह्मा का अभिवादन किया, प्रदक्षिणा की और शीघ्रतापूर्वक वरुणालय की ओर प्रस्थित हुए।

:o: :o: :o:

सुरेश्वरों द्वारा पूज्य मित्र कार्य कर रहे थे वरुण का। वरुण के साथ देवगणों द्वारा पूजा प्राप्त करते थे। परमाप्सरा उर्वशी सखियो के साथ अकस्मात् वहाँ आ गई। रूपसम्पन्ना उर्वशी सखियों सहित क्षीर सागर में क्रीड़ा करने लगी। उर्वशी की जलक्रीड़ा देखकर वरुण परम हर्षित हुए।

पूर्णचन्द्रानिभानना पद्मपलाशाक्षी उर्वशी के सौन्दर्य-पान से काम-मद उन पर चढने लगा।

"उर्वशी!" वरुण बोले—मैं मैथुन निमित्त तुम्हारा वरण करता हूँ।"

"सुरेश्वर!" उर्वशी प्रांजलिभूता बोली "मेरा वरण मित्र ने कर लिया है।"

"अप्सरे!" कदर्प-शर-ताड़ित वरुण बोले : "मैं इस देव-निर्मित घड़े मे अपना तेज रखता हूँ। सुश्रोणि!! यदि तुम मुझसे संगम नही करना चाहती, तो मैं अपना तेज, तुम्हारे सम्मुख त्याग कर, देव-निर्मित सुन्दर कुम्भ में रख देता हूँ।"

"लोकनाथ!! वरुण की काम-पीड़ित याचना सुनकर, परम प्रीतिपूर्वक उर्वशी बोली : मेरा हृदय आप में स्थित है। आपका मुझ पर अनुराग है, किन्तु इस समय देह मित्र की है। हृदय से हमारा सम्बन्ध हुआ है। अतएव आप अपना रेतस् कुम्भ में रख दीजिए।"

उर्वशी की स्नेहपूर्ण बात सुनकर वरुण प्रसन्न हुए। अपना अद्‌भुत् अग्नि के अंगार-तुल्य तेजस्वी रेतस् घड़े में रख दिया।

:o: :o: :o:

"दुष्टचारिणी!" क्रोधित मित्र बोले : "प्रथम मैंने तुम्हें समागम निमित्त आमन्त्रित किया था। तुमने मेरा त्याग क्यों किया? इस अवस्था में तुमने दूसरा पति कैसे वरण किया?"

उर्वशी काँप उठी ।

"दुर्बुद्धे ! तू देव-लोक में नहीं रह सकेगी । मनुष्य-लोक में जाओ । बुध के पुत्र काशिराज राजर्षि पुरूरवा हैं । दुर्बुद्धे ! ! तू उन्हीं की भार्या होगी ।"

:o: :o: :o:

बुद्ध के औरस पुत्र काशिराज पुरूरवा के पास प्रतिष्ठानपुर में उर्वशी आई । पुरूरवा द्वारा आयु नामक पुत्री उर्वशी को प्राप्त हुई । आयु के पुत्र तेजस्वी महाराज नहुष हुए ।"

:o: :o: :o:

कुम्भ में तेज रखा था । समय पर दो विप्र उससे उत्पन्न हुए, कुम्भ से सर्वप्रथम अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए । कुम्भ से वह उत्पन्न हुए थे, अतएव उनका नाम कुम्भज हुआ । उत्पन्न होते ही मित्र से बोले : "मै आपका पुत्र नही हूँ ।"

अगस्त्य वहाँ से चल दिए ।

कुम्भ में वरुण के तेज के पूर्व मित्र का तेज रखा गया था । मित्रा-वरुण के सम्मिलित तेज से वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई । इक्ष्वाकु ने वशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाया ।

:o: :o: :o:

यज्ञमण्डप में निमिराज का शरीर जब चेतनाहीन होकर गिर पड़ा, तब ऋषियों ने उस शरीर को नष्ट नहीं होने दिया । उन्होंने यज्ञ भी नहीं रोका । निमि के शरीर की रक्षा पौर-भृत्य-समन्वित ब्राह्मण लोग करने लगे । गन्ध, माल्य, वस्त्र से वह शरीर सुशोभित किया गया । तैल-द्रोणीं में रख दिया गया ।

यज्ञ उत्साह तथा उमंगपूर्वक समाप्त हुआ । यज्ञ-समाप्ति पर लोग प्रसन्न थे । समस्या उत्पन्न हुई निमिराज के शरीर की ।

"राजन् !" भृगु ऋषि प्रसन्नतापूर्वक बोले : "आप पर प्रसन्न है । आपके पार्थिव शरीर को सचेतन कर सकते हैं ।"

देवताओं ने भृगु के पश्चात् निमि की जीवात्मा से कहा : "राजर्षे ! आप क्या वर माँगते हैं ? आपकी चेतना को कहाँ रखा जाय ?"

"सुरसत्तम !" निमि की चेतना बोली : "मै सब भूतों के नेत्रों पर निवास करना चाहता हूँ।"

"एवमस्तु राजन् !" देवता बोले : "तुम भूतो के नेत्रों पर वायु रूप विचरण करोगे। तुम्हारे विश्रामार्थ प्राणियों के निमेष खुलते और वन्द होते रहेंगे।"

:o: :o: .o:

देवतागण चले गए। ऋषि-गण महात्मा निमि की देह को यज्ञभूमि में उठा लाए। निमि को कोई पुत्र न था। ऋषि-गण ने पुत्र-निमित्त यज्ञीय मंत्रों से हवन किया। वे अरणी द्वारा निमि की देह का मन्यन करने लगे। अरणी से मन्थन द्वारा पुत्र उत्पन्न हुआ। मथने से वह उत्पन्न हुआ था, अतएव उसका नाम मिथु रखा गया। विचित्र ढंग से जन्म होने के कारण उनका नाम जनक पडा। विदेह से प्रकट होने के कारण उन्हे वैदेह कहा गया। पूर्वकाल मे विदेह जनक राज का नाम मिथु था। अतएव जनक-वंश का नाम मैथिल हुआ। देश की सज्ञा मिथिला हुई।

—:o:—

वाल्मीकीय रामायण · अयोध्या काण्ड : ६, १२
" उत्तर काण्ड . ५५, ५७
महाभारत आदिपर्व १ . २३४
सभापर्व ८ : ६
वनपर्व २३४; २६
अनुशासन पर्व ६१ . ५, १४, १५, १८, ११५ . ५, १३७ ११, १३८
पुराण : भागवत ६, १३
मत्स्य २००
विष्णु ४, ५
विष्णु धर्मोत्तर . १, ११७
वायु २, ३, २७, २८

# ययाति

"माँ !" आओ हम दोनों अग्नि-प्रवेश करें।"

"क्यों, यदु ?"

देवयानी दुखी एवं उदास पुत्र की ओर देखती हुई विस्मित स्वर से बोली।

"माँ ! असह्य हो गया है।" यदु की आँखें भर आईं।

"वत्स, क्या बात है ?" देवयानी यदु के मस्तक पर स्नेह से हाथ फेरती हुई बोली।

"पिता पुरु से स्नेह करते हैं। प्रेम करते हैं। उसका सत्कार करते हैं। और मुझे....!"

यदु हिचकियाँ लेने लगा। देवयानी की आँखें तरल हो गईं।

यदु ने पुनः कहा : देवताओं के निमित्त क्लिष्ट-कर्मा भार्गव शुक्राचार्य के कुल में तुम उत्पन्न हुई हो। तुम कैसे चुपचाप दाहक दुःख और दुःसह अपमान सह रही हो ?"

देवयानी उदास हो गई। गम्भीर नील गगन की ओर देखने लगी।

"माँ ! यदि तुम अग्नि-प्रवेश का कष्ट नहीं सहन कर सकतीं, तो मुझे आज्ञा दो। राजा दैत्य-पुत्री विमाता शर्मिष्ठा के साथ रमते रहें।"

"नहीं, पुत्र ! नहीं।" देवयानी ने बालक को संतोष देने का प्रयास किया।

"ना माँ ! तुम क्षमा कर सकती हो। मैं क्षमा नहीं कर सकता। मैं निःसंशय प्राण-त्याग करूँगा। ययाति सुख से रहें।" परम आर्त्त यदु ने रोते हुए कहा।

"ओह ! यदु !!" देवयानी ने पुत्र को हृदय से लगा लिया। यदु माता के वक्षःस्थल से लगा सिसकियाँ लेने लगा।

पुत्र के दु:ख मे देवयानी के आँसू रुक न सके। अश्रु-कणों के साथ ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना उठने लगी।

:o: :o: :o:

"देवयानी !" शुक्राचार्य अपनी कन्या देवयानी से बोले : "तुम क्षुब्ध क्यों हो ? तुम उदास क्यों हो ? शरीर रुग्ण क्यों है ? तुमने मुझे क्यों स्मरण किया है ?"

देवयानी ने कुछ उत्तर नही दिया।

"तुम्हे क्या कष्ट है ?" शुक्राचार्य ने जिज्ञासापूर्वक पूछा।

देवयानी क्रुद्ध थी।

शुक्राचार्य ने कन्या को सस्नेह देखते हुए पुनः कहा : "तुम्हारा कष्ट विना कहे मैं कैसे जान सकूँगा ?"

"पित. ! मैं अग्नि-प्रवेश करूँगी।" देवयानी ने सक्रोध कहा।

"तुम क्या कहती हो ?" विस्मयापन्न शुक्राचार्य ने कहा।

"मैं जीना नही चाहती। तीक्ष्ण विष-पान करूँगी।" देवयानी की आँखे भर आईं।

"क्यो ?" शुक्राचार्य ने कन्या के मुखमण्डल पर दृष्टि स्थिर कर आकुल स्वर में पूछा।

मैं अगाध जल में डूब मरूँगी।" देवयानी ने अंचल से आँसू पोंछते हुए कहा।

"देवयानी ! वात क्या है ?" शुक्राचार्य ने गम्भीर स्वर से पूछा।

"पित. ! अपमानमय जीवन निरर्थक है। दु:खमय जीवन व्यर्थ है। वृक्ष के प्रति अवहेलना उसके पुष्प, फल तथा कोमल पल्लव की अवहेलना का कारण होता है। आपकी अवहेलना होती है : अतएव मेरा और पुत्र का पद-पद पर अपमान किया जाता है।"

शुक्राचार्य की भृकुटी में वल पड़ने लगे : "कौन अपमान करता है ?"

"राजर्षि ययाति।"

"तुम्हारा पति ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"हमारी अवज्ञा इसलिए करते हैं कि उनकी दृष्टि में आपके प्रति आदर-भाव नहीं है। पिता की अवज्ञा होने पर कन्या का कौन आदर करेगा ?"

"कारण ?" शुक्राचार्य ने चिंतनशील मुद्रा में पूछा।

"दैत्य वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा उनकी प्रिया है। उसके प्रिय पुत्र पुरु ने प्राप्त किया है पिता का स्नेह। हमारे भाग्य में लिख गई है अवज्ञा, दुःख, कष्ट और तिरस्कार।

"ययाति की अपने पुत्रों में दो दृष्टि ! अपनी पत्नियों का भेदभाव !" शुक्राचार्य विचार करने लगे।

देवयानी ने सक्रोध कहा—"पितः ! जीवन श्रेयस्कर नहीं है।"

"दुरात्मन् ! नहुषपुत्र !! ययाति !!! तुमने अपनी पत्नी की अवज्ञा की है। तुम जरा-जीर्ण एवं शिथिलेन्द्रिय होगे।" शुक्राचार्य ने शाप दिया।

देवयानी और यदु प्रसन्न हो गए।

:o: :o: :o:

"यदु, तुम मेरे पुत्र हो। पिता का उपकार करना पुत्र का कर्त्तव्य है। सनातन नीति का तुम्हें ज्ञान है।" विलक्षण जरावस्था-प्राप्त राजा ययाति ने यदु से कहा।

"जानता हूँ।" यदु ने उदासीन-भाव से उत्तर दिया।

"तुम्हारे नाना शुक्राचार्य के शाप के कारण मेरी यह अवस्था हुई है।"

"मैं क्या करूँ ?" यदु ने निर्भय भाव से कहा।

---

वालमीकीय रामायण : उत्तर काण्ड सर्ग ५८, ५९

महाभारत : आदि पर्व .अध्याय १ : २२९

७५ : ३०-३२, ३३-५८

७८ :-१४-२३

८१ : १-७, ८-३८

८२ : ४-५, ११-२७

८३ : ९-१० ११-२७, २८-३८, ३९-४२

"यदु ! तुम धर्मात्मा और यशस्वी पुत्र हो, मेरी एक बात मानोगे ?"

"कहिए ?" यदु ने उपेक्षापूर्वक कहा।

"तुम मेरी वृद्धावस्था ले लो।"

"मैं ?"

"हाँ, भोग-रस से मेरी तृप्ति अभी नही हुई है।"

यदु मुस्कराया।

"प्रिय पुत्र ! विषय-भोग से तृप्त हो जाने पर मैं वृद्धावस्था चाहता हूँ।"

"पिताजी ! पुरु आपका प्रिय है। यह कार्य उसी के योग्य है।"

ययाति चकित हुए . "वत्स !"

"पृथ्वीपति ! मेरे भाग्य में क्या वृद्धावस्था और पुरु के यौवन लिखा है।"

"यदु ! मै तुम्हारा पिता हूँ।"

"किन्तु मुझ पुत्र को आप पिता का स्नेह प्राप्त नही है। आपने मेरा वहिष्कार किया है। निकट आने नही देते। पुरु के साथ भोजन करते है। राज्य-सुख, पितृ-स्नेह-सुख, वाल्य-सुख सभी पुरु को प्राप्त है। मुझे प्राप्त है आपकी अवज्ञा, तिरस्कार, और क्या कहूँ ?"

"यदु ?"

"पिताजी ! आप पुरु को ही अपनी वृद्धावस्था दीजिए।"

:o: :o: :o:

---

८४ : १-९, १०-१५, १६-२२, २३-२८, २७-३४

८५ : १-३३, ३४-३५

८६ · १-६, १२-१७

८७

८८ १-५, ६-१३

८९ :

९०

९२ :

९३ ·

९५ · ७-९

"पुरु !"

"पिताजी !"

पुरु ने अपने पिता राजा ययाति के चरणों में मस्तक रख दिया। ययाति की स्नेह-दृष्टि पुरु पर फैल गई।

"महाबाहो ! तुम्हे कुछ देना है।"

"मेरा सौभाग्य !"

"किन्तु उसे स्वीकार करोगे ?"

"पिता की प्रदत्त वस्तु पाकर कौन धन्य नही होगा ? आपका मुझ पर महान् अनुग्रह होगा। आपका शासन स्वीकार कर कृतकृत्य हूँगा।"

"हमारी स्थिति तुम देखते हो ?"

"हाँ पिताजी ! आपकी वृद्धावस्था", पुरु दुःखी हो गया।

"पुरु ! क्या तुम मेरी वृद्धावस्था लोगे ?"

"ओह ! पिताजी ! मुझ पर इतनी कृपा ! मै धन्य हुआ। अनुगृहीत हुआ।"

करबद्ध पुरु ने शिरसा नमन किया। उसके मुख पर पवित्र प्रसन्नता थी।

:o: :o: :o:

"पुरु ! पुत्र !! मेरी थाती मुझे वापस दे दो ?"

"थाती कैसी, पिताजी ?"

"वृद्धावस्था,"—ययाति ने कहा।

पुरु उदास हो गया।

---

सभा-पर्व ८ ८
वन-पर्व १९५
विराट-पर्व ५६ · ९-१०
उद्योग-पर्व ११४
११५ : २, ५-१४
१२० : १५-१६
१२१ : ११
१२२ : १५
१२३ . १२-१३
द्रोण-पर्व ६३

"पुत्र ! दु:खी मत हो। मैंने तुम्हारी युवावस्था लेकर अपनी वृद्धावस्था तुम्हारे शरीर में संचारित की थी। सहस्रों वर्ष राज्य-सुख भोगा। सहस्रो यज्ञों का अनुष्टान किया : न्यास-स्वरूप वृद्धावस्था तुम्हें दी थी। मेरा न्यास मुझे लौटा दो।"

"नहीं पिताजी ! आप और सुख भोगिए।"

"पुरु ! तुमने पिता की आज्ञा का पालन किया है। पिता के निमित्त कष्ट उठाया है। पिता के लिए इससे बढ़कर और सुखप्रद बात क्या हो सकती है?"

पुरु का मस्तक नत हो गया।

"पुत्र मै काशिराज के सिंहासन पर तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। राज्य तुम्हें देता हूँ। प्रतिष्ठानपुर में रहकर इस राज्य का पालन करो।"

:o: :o: :o:

"पिताजी ! पुरु का राज्याभिषेक आप कर रहे है?"

"हाँ, यदु!"

"क्यों?"

"उसने कर्त्तव्य का पालन किया है। उसने धर्म का पालन किया है।"

"वाह!"

"यदु ! अपने पूज्य पिता के सुख की कामना तुम नही कर सके। प्रजा-सुख की कामना कैसे तुममे उत्पन्न होगी?"

"मै राज के अयोग्य हूँ?"

"निश्चय ! प्रजा का तुमसे कुछ उपकार नहीं हो सकता।"

---

| | |
|---|---|
| शल्य-पर्व | ४१ . ३३-३९ |
| शान्ति-पर्व | २६ : |
| | २९ . ९४-९९ |
| | १६६ . ७४ |
| | १७८ : ५ |
| अनुशासन-पर्व | ९४ . २७ |
| | ११५ . ६१, ८१ |
| पुराण : विष्णु | ४-१०, ३० |
| भागवत | ९, १८, १९ |
| गरुड | १, १३९, १९ |

"यह भ्रान्ति आप में कैसे उत्पन्न हो गई ?"

"जिस पिता ने तुम्हें जन्म दिया, जिस पिता ने तुम्हारा लालन-पालन किया, उस पिता के लिए, उसके सुख के लिए, तुम अपनी निजी वस्तु नहीं दे सके। प्रजा के लिए कैसे त्याग कर सकोगे ? प्रजा की रक्षा तुमसे कैसे होगी ?"

"पिताजी ! मै कहता हूँ।"

"सुनो ! यदु !! तुम क्षत्रिय-रूप में राक्षस उत्पन्न हुए हो। तुम किसी के नहीं हो। तुमसे किसी का उपकार नहीं हो सकता। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मै तुम्हारा गुरु हूँ। तुमने मेरा अपमान किया है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। तुम्हारा वंश क्रूर राक्षस का होगा। तुम्हारी शोभकुलीय वंश में गणना नहीं होगी। तुम्हारे वंश के तुम्हारे समान दुर्विनीत होंगे। यातुधान होंगे। तुम्हारा वंश राज्यकुल में प्रतिष्ठित नहीं होगा। तुम्हारी सन्तानें तुम्हारी तरह उद्दंड होंगी।"

:o: :o: :o:

---

| | |
|---|---|
| पद्म : सृष्टि खण्ड | १२ |
| भूमि खण्ड | १०६, ६४, ८३ |
| अग्निपुराण | २७४ |
| मत्स्य पुराण | १५, २३, ३४ |
| वायु | २, ३१ |
| हरिवंश | १, १०, ३० |
| ब्रह्म | १२, १४६ |
| कर्म | १, २२ |
| लिंग | १, ६६ |
| विष्णु धर्मोत्तर | १, ३२ |
| ऋग्वेद | १ : ३१ : १७ |
| | १० : ६२ : १ |
| | ९ : १०१ : ४-६ |

नोट : देवयानी का स्थान मैंने सन् १९६१ मे देखा था। यह स्थान राजस्थ में साँभर झील के समीप है। नमक का बड़ा कारबार होता है। देवयानी स्थान

प्रतिष्ठानपुर प्रफुल्ल था। चारों ओर सुख था, समृद्धि थी। प्रजा प्रसन्न थी। राजा ययाति ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया। फिर वाणप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश किया।

प्रतिष्ठान का राजा पुरु था। उस पिता का पुत्र था, जिसने शुक्राचार्य की क्रोधाग्नि का सात्विक शीतल मार्ग अवलम्बन कर धैर्य का परिचय दिया था।

दूसरी ओर था क्रौंच वन। जनस्थान से दूर था। राजवंश से बहिष्कृत था। प्रजा-पालन-भर से रहित था। दुर्गम क्रौंच वन में यदु अपनी दुनियाँ से अलग बना रहा था।

एक सरोवर है। उसके चारों तरफ मदिर है। धर्मशाला भी यहाँ बनी है। कुछ वैष्णव साधु यहाँ आश्रम बनाकर रहते हैं। उनमें एक आश्रम के साधु से काशी के कारण परिचय निकल आया।

इस स्थान की महत्ता इस अद्‌भुत वस्तु के कारण है कि साँभर के लवणमय जल, जिसमें साँभर नमक बनता है, उसी के पार्श्व मे यह स्थान है। किन्तु सरोवर का पानी मीठा है। कुएँ का जल भी मीठा है। साँभर नगर मे जलाभाव था। देश-विदेश के जल-विशेषज्ञो से राय ली गई। अन्वेषण हुआ, परन्तु मीठा पानी नही मिल सका। यहाँ के उक्त साधु बाबा से नगरपालिका के अध्यक्ष ने यह प्रसग उठाया। उन्होने कहा, यही पास मे जल है। चाहे जितना ले लो। कूप खोदा गया। सुस्वादु निर्मल जल निकल आया। नगरपालिका का जलाभाव दूर हो गया। यह घटना सत्य है। बाबा तथा नगरपालिका के अध्यक्ष दोनो जीवित हैं।

# कल्माषपाद

वाल्मीकि आश्रम के समीप घोर अरण्य था। उसमे मृगया निमित्त विचर रहे थे। इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुदास के पुत्र वीरसह। वह पूर्ण युवा नहीं थे।

उस अरण्य में उन्होंने देखा, सहस्रों मृगों के भक्षक शार्दूल रूप घोर दो राक्षसों को। वन मृगहीन हो गया था, तथापि उनकी संतुष्टि नहीं हुई थी। राजा ने वन को मृगहीन देखा। मग-भक्षक राक्षसो को देखकर वे क्रोधित हो गए।

सौदास की प्रत्यंचा की टंकार से वन गूँज उठा। एक राक्षस ने चीत्कार किया और भूमि पर गिर पड़ा। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

राजा मृत राक्षस के पास आ गए। उसे देखने लगे। मृग-भक्षक राक्षस की प्राणान्त-वेदना देखी। राजा की मुद्रा करुण हो गई। क्रोध लोप होने लगा।

मृत राक्षस का दूसरा मित्र घोर संताप करने लगा। उसने राजा को मृतक के समीप क्रोधहीन खड़ा देखा। राजा के पास आकर बोला—

"पापिष्ठ! निरपराध मेरे मित्र की हत्या की है। स्मरण रखना मैं इसका वदला लूँगा!"

सौदास उत्तर देना चाहते थे। राक्षस वहीं अन्तर्धान हो गया।

कालान्तर में सुदास-कुमार मित्रसह किंवा वीरसह नाम से अयोध्या के राजा हो गए।

:o: :o: :o:

राजा मित्रसह ने आश्रम के समीप अश्वमेघ महायज्ञ का अनुष्ठान किया। महर्षि वशिष्ठ तपोवल से यज्ञ की रक्षा करते थे। वहुत वर्षो तक यज्ञ चलता रहा। समृद्धि एवं लक्ष्मी में वह यज्ञदेव-यज्ञ की समता करता था। यज्ञ समाप्ति पर वशिष्ठ का रूप धारण कर राक्षस आया।

"राजन् !" वशिष्ठ-रूप राक्षस ने कहा : "यज्ञ समाप्त हो गया है, मुझे सामिष भोजन दो।"

"जैसी आज्ञा !" राजा चकित हुए।

"राजन् ! शीघ्रता करो। इसमें विचार की क्या बात है ?"

"सूद", राजा ने पुकारा।

सूद करबद्ध उपस्थित हुआ। राजा ने कहा : "स्वादयुक्त सामिष हविष्य तैयार करो। गुरु असंतुष्ट न हों। उन्हें परितुष्ट करना है "

"भगवन्!" सूद स्तम्भित था। वह विस्मयापन्न जड़वत् हो गया। राक्षस ने स्वयं सूद का रूप धारण कर लिया।

:o: :o: :o:

"भगवन् ! भोजन कर लीजिए ।"

राजा मित्रसह ने रानी मदयन्ती के साथ राक्षस द्वारा लाया भोजन वशिष्ठ के सम्मुख रखा।

वशिष्ठ भोज्य पदार्थ की ओर देखते ही चकित हो गए। भृकुटियाँ तन गईं। नर मांस !"

"नरमांस ?" राजा-रानी घबरा गए।

"नरमांस ! यह क्या किया राजन् !"

समीपस्थ खड़ा सूद मुस्कराता भागा।

"गुरुदेव ! आप कह क्या रहे हैं ?"

"राजन् ! तुमने मुझे जैसा भोजन दिया है, वही तुम्हारा भोजन होगा।"

गुरुदेव ! आपने यह क्या किया ! मेरा क्या अपराध है ? आपने अनायास मुझे शाप दिया है। मेरे साथ अन्याय किया है। आपने कुछ जानने की चेष्टा नही की। लेकिन मैं भी आपको——

कहते-कहते सौदास ने वशिष्ठ को शाप देने के लिए अंजलि में जल लिया।

सौदास की भार्या ने पति का क्रोध देखा। सम्मुख आ गई। राजा को रोकती हुई बोली :

"राजन् ! आप क्या कर रहे है ? विवेक का त्याग नहीं करना चाहिए । भगवान् वशिष्ठ हमारे गुरु हैं, पुरोहित हैं, देव-तुल्य हैं । देवतुल्य पुरोहित के प्रति प्रतिहिंसा शोभा नहीं देती ।"

अपनी भार्या की ओर राजा ने देखा और तेजबल-समन्वित जल को अपने पदों पर विसर्जित कर दिया । जल पड़ते ही राजा के पद काले हो गए । महायशस्वी राजा सौदास का नाम कल्माषपाद हो गया ।

राजा ने पत्नी सहित श्रद्धा-भक्ति के साथ वशिष्ठ की चरण-वन्दना कर कहा : "गुरो ! क्षमा कीजिए । क्रोध के वशीभूत होकर मै शाप देने जा रहा था ।"

महर्षि वशिष्ठ राजा का व्यवहार देखकर चकित हो गए । आश्चर्य की सीमा न रही । राजा के नेत्रों में पवित्रता थी । मुख पर विराजती सरलता से वशिष्ठ लज्जित हो गए । महर्षि के मन ने कहा—"यह मुख अपराधी नहीं हो सकता ।" उन्हें कुछ रहस्य मालूम होने लगा ।

"राजन् ! भोजन बनाने के लिए किसने कहा था ?"

"गुरो ! आप आए थे । आप ने आज्ञा दी थी कि मै सामिष भोजन करूँगा । मैंने सूद को भोजन बनाने की आज्ञा दी थी ।"

"मै तो आया ही नहीं था, राजन् !"

"ओह ! राजा व्याकुल हो गए ।"

"किसी राक्षस का काम है ।" वशिष्ठ ने कहा ।

"सूद—सूद !" रसोइए को बुलाया ।

रसोइया हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

"सूद ! तुमने नरमांस बनाया है ?"

भोजनालय में मैंने अभी तक प्रवेश किया ही नहीं ।"

"तुम्हें मैंने आज्ञा दी थी ।"

"महाराज ! आपने आज्ञा दी थी । इस प्रकार की आज्ञा सुनकर मैं घबरा गया था । मैंने भोजन नहीं बनवाया ।"

"समझ गया गुरुदेव !"

"क्या राजन् ?"

"मैंने एक राक्षस की वन में हत्या की थी। उसके मित्र ने बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। उसी की सब माया है।"

वशिष्ठ ने संयत वाणी से कहा:

"मैंने क्रोधवश वृथा शाप दिया। शाप मिथ्या [नहीं होगा, किन्तु अवधि बारह वर्ष होगी। तुम्हें इन बातों का स्मरण नहीं रहेगा। तत्पश्चात् पुनः प्रजा का पालन करोगे।

राजा ने सपत्नीक वशिष्ठ के चरणों का स्पर्श किया।

---

| | |
|---|---|
| वाल्मीकीय रामायण | उत्तरकाण्ड : सर्ग ६५ |
| महाभारत अनुशासन पर्व : | १६५ : ५७ |
| ऋग्वेद : | १ · ११२ १६, ३ . ५३ : ६, ३ : ३३ |
| | ७ . १८ · २३ |
| | ६ : ११ |
| | १० · १३३ |
| | ७ . १८ · २२ |
| | ७ · १८ : २५ |
| निरुक्त | २ : २४ |
| एतरेय ब्राह्मण | ८ : २१ |
| बहद्देवता | ४ . ९९-११० (राजेन्द्र लाल मित्र) |

# लवण

न शीत था, न गर्मी। वसन्त की शीतोष्ण रात्रि थी। रात्रि समाप्त हुई। विमल प्रभात आया। राम ने पूर्वाह्निक क्रिया समाप्त की। पौर-कार्य निमित्त श्रीराम का बाहर आगमन हुआ। सुमन्त ने राम का सविनय अभिवादन किया।

"महाराज!" सुमन्त ने नम्रतापूर्वक कहा: "राजद्वार पर तपस्वी-जन पधारे हैं।"

राम की प्रश्नपूर्ण दृष्टि सुमन्त की ओर उठी।

"नरव्याघ्र!" सुमन्त ने निवेदन किया: "यमुना-तटवासी च्यवन मुनि का आगमन हुआ है। उनके साथ अनेक महर्षिगण हैं। दर्शनाकांक्षी हैं।"

"द्वा:स्थ!" राम ने आदेश किया: "महाभाग भार्गवादि को सादर लाओ।"

कृतांजलिभूत द्वा:स्थ ने आज्ञा शिरोधार्य की।

:o: :o: :o:

एक सौ से अधिक महर्षि, ब्राह्मणादि थे। राजभवन में द्वा:स्थ के साथ उन्होंने प्रवेश किया। वे दीप्तिमान् थे। उनके हाथों में तीर्थों के पवित्र जल से पूर्ण कलश थे। राजा को उनकी यही भेंट थी।

आगन्तुक ऋषियों ने राम को पूर्ण कलश दिए। फल-मूल सम्मुख रखे। उत्फुल्ल कमल-लोचन राम ने सहर्ष भेंट ग्रहण की।

"महामुने!" राम ने कहा: "आसनों को सुशोभित कीजिए।

आगन्तुक महर्षियों ने स्वर्णासन किया।

"महर्षिगण!" प्रांजलिभूत राम ने कहा: "क्या आगमन का प्रयोजन जात सकता हूँ? मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? आदेश दीजिए। प्रसन्नतापूर्वक कार्य करूँगा। मेरा जीवन, मेरी स्थिति आप लोगों के निमित्त है। सत्य कह रहा हूँ।"

"साधु! साधु!! साधु!!!" यमुना तीरवर्ती ऋषिगण प्रसन्नता-पूर्वक साधुवाद करने लगे।

"नरश्रेष्ठ!" ऋषि बोले: "अनेक राजा महावली, महा-पराक्रमी हुं। कार्य-गौरव सुनने पर किसी ने भी कार्य-प्रतिपादन की प्रतिज्ञा नही की। विना प्रयोजन जाने आपने प्रतिज्ञा की है। यह आपके गौरवानुकूल है। निस्सदेह कार्य सिद्ध होगा।"

"मुनिगण!" राम ने कहा: "आप निर्भय कहिए।"

"नरेश्वर!" च्यवन मुनि बोले: "देश तथा अपने संकट के मूल कारणों पर प्रकाश डालता हूँ। कृपया सुनिए। कृतयुग में बुद्धिमान् मधु दैत्य था। उसकी माता का नाम लीला था। दैत्य बुद्धिमान् था। लोक तथा शरणागत का रक्षक था। उदार स्वभाव देवताओ से स्नेह करता था।

"वल-विक्रम-समन्वित मधु अनुष्ठान में लगा रहता था। उसने रुद्र की पूजा की। रुद्र से एक शूल पाया। रुद्र ने वर दिया: 'युद्धार्थी का नाश कर शूल पुनः तुम्हारे पास लौट आएगा।'

भार्गव ने पुनः कहा: "प्रसन्न देख मधु ने निवेदन किया कि शूल मेरे वंश में रहे। रुद्र ने उदारतावश इतना और कहा—शूल तुम्हारे वश में तुम्हारे पुत्र के समय तक रहेगा। वह शूलधारी अवश्य होगा।

"असुरश्रेष्ठ मधु ने अत्यन्त सुन्दर भवन निर्माण कराया। उसने विश्वावसु-वंशी अनला-पुत्री कुम्भनसी से विवाह किया। उसे एक पुत्र हुआ। पुत्र का नाम लवण है।

"लवण वाल्यकाल से दुष्ट तथा पापाचारी है। मधु पुत्र के आचरण से दुखी रहता था। किन्तु उसने पुत्र का विरोध नही किया।

"शूल का रहस्य उसने लवण को वताया। उसे राज्य और शूल दे दिया। स्वयं समुद्र में निवास निमित्त प्रस्थित हुआ।

"राजन्!" भृगु बोले: "शूल के प्रभाव के कारण लवण लोगो और तपस्वियो को विशेष दु.ख होता है। अनेक राजाओं से हमने अभय दान की भिक्षा माँगी। हमें कोई अभयदान नही दे सका। आपके वल, पौरुष तथा रावण-वध की कथा सुनकर उपस्थित हुए है। लवण द्वारा अपनी रक्षा चाहते है। आप हमें भयरहित कीजिए।"

"महर्षे ?" राम ने करबद्ध पूछा :"लवण का आहार क्या है ? उसका आचरण कैसा है ? निवास-स्थान कहाँ है ?"

"नरश्रेष्ठ !" ऋषि ने निवेदन किया :"विशेषकर प्राणी उसके आहार हैं। रौद्र आचरण है। मधु-वन में निवास करता है। सहस्रों सिंहों, व्याघ्रों, मृगों और पक्षियों का संहार करता रहता है। प्रलयकालीन काल-तुल्य मुख खोले वह प्राणियों का आहार करता रहता है।"

"मुनिगण !" राम ने कहा : "राक्षस का वध करवा दूँगा। आप लोग निर्भय रहिए।"

सभास्थित अपने प्रिय भ्राताओं की ओर राम ने देखा। आदेश के पालन निमित्त भाइयों में उत्सुकता ने प्रवेश किया।

"बन्धुगण ! लवण को कौन मारेगा ? महाबाहु भरत या धीमान् शत्रुघ्न ? कौन भार ग्रहण करेगा ?"

"मै उसका वध करूँगा। इस काम का भार मुझे दिया जाय।" भरत ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

धैर्य-शौर्य-समन्वित भरत की बातें लोगों ने सुनी। शत्रुघ्न सुवर्ण आसन से उठे। राम को प्रणाम किया।

"रघुनन्दन !" शत्रुघ्न बोले : "आपकी अनुपस्थिति मे अयोध्या का प्रतिपालन भरत ने किया है। पार्थिव ! इन्हें अनेक दुःख उठाने पड़े हैं। महायशः !! नन्दिग्राम की दुःखद शय्या पर इन्होंने बहुत समय व्यतीत किया है। इनका फल-मूल आहार रहा है। ये जटा और चीरधारी थे। राघवनन्दन !! अनेक कष्ट उठाने वाले भरत की अपेक्षा मुझ पर यह कार्य-भार सौंपा जाय। राजन् ! भरत को क्लेश देना उचित नही है।"

"काकुत्स्थ !" राम ने शत्रुघ्न से कहा : "ठीक है। मेरे शासनानुसार कार्य करो। मधु के राज्य पर, उसके शुभ नगर पर, मै तुम्हारा राज-स्वरूप अभिषेक करता हूँ।

"तुम शूर हो। नगर-निर्माण में पटु हो। भरत को विश्राम करने दो। यमुना-पुलिन में तुम अनेक नगर तथा जनपद बसा सकते हो। यदि कोई राजा किसी राजवंश को किसी राज्य से हटाकर दूसरे राजा का वहाँ अभिषेक नहीं करता, तो वह राजा नरकगामी होता है। मधु-पुत्र लवण

का वध कर वहाँ धर्मपूर्वक राज्य करो। यदि तुम मेरी बात मानना चाहते हो तो प्रत्युत्तर मत देना। बालको को बड़ो की आज्ञा नि.संशय माननी चाहिए। काकुत्स्थ! तुम अपने अभिषेक की प्रतीक्षा करो।"

"नरेश्वर!" शत्रुघ्न ने लज्जित स्वर से कहा: "ज्येष्ठ भ्राता की उपस्थिति में कनिष्ठ भ्राता का कैसे अभिषेक होगा? यह अधर्म है। पुरुषर्षभ! आपका शासन मेरे लिए दुर्लंघ्य है। महाभाग!! आपका आज्ञा-पालन करना है। वीरवर!!! श्रुतियों का मत है कि मध्यम भाई की बातों का उत्तर कनिष्ठ भ्राता को नही देना चाहिए। भ्राता भरत के लवण-वध निमित्त तत्पर रहने पर मैंने धृष्टतावश कह दिया है कि लवण को मै मारूँगा। वह मेरा दुर्वचन था। पुरुषर्षभ! क्या उसी दुरुक्ति के कारण मेरी दुर्गति की जा रही है? ज्येष्ठ भ्राता की बातों का उत्तर कनिष्ठ भ्राता को नही देना चाहिए। यह अधर्म एवं लोक-विर्वजित है।

"काकुत्स्थ! मै आपकी बातों का उत्तर कैसे दूँ? यदि दूँ तो मेरा दूसरा अपराध समझा जायगा। मानद!! पुरुषर्षभ!! मै आप के इच्छानुसार कार्य करता हूँ। काकुत्स्थ! यदि कोई अधर्म है तो रघुनन्दन! वह मेरा अधर्म है। आप उसका नाश कीजिएगा।"

महात्मा शत्रुघ्न के विनयपूर्ण सम्भाषण से राम प्रसन्न हुए। भरत तथा लक्ष्मण को सम्बोधित कर बोले:

"अभिषेक की सामग्री इसी समय एकत्र की जाय। मै शत्रुघ्न का अभिषेक करूँगा। मेरी आज्ञा से पुरोहित, नैगम, ऋत्विज तथा मन्त्री आदि उपस्थित हो।

उत्साह तथा प्रसन्नता से वायुमण्डल भर गया।

:o: :o: :o:

पुरोहितगण आगे चल रहे थे। राजा तथा अनेक प्रतिष्ठित साथ थे।

भरत और लक्ष्मण ने अभिषेक की सामग्री के सहित राजभवन में प्रवेश किया।

शास्त्रविधि से शत्रुघ्न का अभिषेक किया गया। अभिषिक्त शत्रुघ्न सूर्य्य सदृश सुशोभित हो गए।

राजभवन में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी ने मंगल-कृत्य किए।

यमुना-तीरवासी महात्मा ऋषियों को लवण-वध का निश्चय हो गया।

:o: :o: :o:

"सौम्य!" राम ने शत्रुघ्न को समझाते हुए कहा: "यह दिव्य शर अमोघ है। इसी से तुम लवण का वध करना। इस बाण से विष्णु ने मधु और कैटभ राक्षसों का वध किया था। विष्णु अदृश्य रूप से महारात्रि में शयन कर रहे थे। उसी समय क्रोध द्वारा इस शर की सृष्टि मधु-कैटभ के वध-निमित्त हुई थी। शत्रुघ्न! मैंने इस शर का प्रयोग रावण-वध निमित्त नहीं किया। इसके प्रयोग द्वारा प्राणियों का नाश होता है। लवण के पास भी एक उत्तम शिवप्रदत्त शूल है। जब कोई युद्धार्थी युद्ध निमित्त उसे आमन्त्रित करता है, तो वह शूल लेकर निकलता है; किन्तु आहार निमित्त बाहर बिना शूल निकलता है। वह नगर के बाहर आहार निमित्त जायगा। तुम सायुध नगर-द्वार पर उसकी प्रतीक्षा करना। शूलरहित निवास-स्थान पर पहुँचने के पूर्व युद्धार्थ आमन्त्रित करना। इस प्रकार तुम लवण पर विजय प्राप्त कर सकोगे। अन्यथा वह अवध्य रहेगा।"

शत्रुघ्न ने राम का अनुशासन शिरोधार्य किया।

"पुरुषर्षभ!" राम ने स्नेह से कहा: "चार सहस्र उत्तम अश्व, दो सहस्र रथ एवं एक शत हाथी तुम्हारे साथ जाएँगे। मार्ग में निवास-स्थानों पर नाना प्रकार की वस्तुओं द्वारा शोभित बाजार लगाने वाले तथा नट और नर्तक भी जायेंगे। दस लाख सुवर्ण मुद्रा तथा पर्याप्त धन एवं वाहन साथ रखो। सेना हर्ष एवं उत्साह से पूर्ण है, सन्तुष्ट है, उद्दण्ड नहीं है। वह उत्तम वेतनभोगी है। नरोत्तम! सेना का रंजन उत्तम सम्भाषण तथा दान द्वारा करना। वहाँ तुम्हारे साथ दारा, बान्धवादि नही रहेंगे। भृत्यवर्ग से प्रीति रखना। वे तुम्हारे साथी होंगे। इस प्रसन्न महान् चमू को पहले भेज दो। तत्पश्चात् तुम एकाकी धनुष-बाण लेकर मधुवन में जाना। इस प्रकार गमन करना कि मधु तुम्हारे युद्धार्थ आने की किंचित् मात्र शंका न करे। पुरुषश्रेष्ठ! लवण को मारने का और कोई दूसरा मार्ग नही है।"

"सौम्य !" राम ने पुनः कहा : "ग्रीष्मकाल की समाप्ति तथा वर्षाकाल के आरम्भ में लवण की हत्या करना। उसकी हत्या का यह उपयुक्त काल है।

"तुम्हारे सैनिक महर्षियों के साथ प्रस्थान करेंगे। ग्रीष्मकाल के अन्त होते सेना को गंगा पार कर जाना चाहिए। गंगा-तट पर शिविर लगाकर अकेले धनुष-बाण लेकर सावधानी से अग्रसर होना।"

शत्रुघ्न ने राजा को श्रद्धाभक्ति-पूर्वक प्रणाम किया।

:o: :o: :o:

"सेनापते !" शत्रुघ्न ने सेनापति को आदेश दिया : "शिविर-स्थान की योजना पूर्व ही बना लेनी आवश्यक है। आप लोगों को शिविर में सेना के साथ निवास करना होगा। मन से विरोध-भाव तिरोहित कर दो। किसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचने पाए।"

सेनापतियों ने आज्ञा शिरोधार्य की। शत्रुघ्न ने माता कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी का अभिवादन किया। राम को प्रदक्षिणा कर चरण पर मस्तक रखकर नमन किया। भरत तथा लक्ष्मण की कृतांजलिपूर्वक वन्दना की। पुरोहित वशिष्ठ को प्रणाम किया। शत्रुघ्न ने राम की परिक्रमा कर सेना को प्रस्थान का आदेश दिया।

.o: :o: :o:

सेना ने प्रस्थान किया। तत्पश्चात् शत्रुघ्न ने एक मास अयोध्या में निवास किया। पुनः मधुवन के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उनका कोई साथी न था।

मार्ग में दो रात्रियाँ व्यतीत की। तीसरे दिन वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में प्रवेश किया।

"भगवन् !" शत्रुघ्न ने वाल्मीकि ऋषि से कृतांजलिपूर्वक कहा : "आज मैं यहाँ निवास करना चाहता हूँ। प्रभात काल में वरुण की प्रतीची दिशा की ओर प्रस्थान करूँगा।"

"सौम्य !" वाल्मीकि ने कहा : "तुम्हारा स्वागत है। आश्रम रघुकुल का आवास है। आसन, पाद्य एवं अर्घ्य ग्रहण कर निःशंक विश्राम करो।"

आश्रम की पर्णशाला में शत्रुघ्न ने विश्राम किया। फल-मूल का आहार ग्रहण कर तृप्त हुए।

:o: :o: :o:

"भगवन्!" मुनि-कुमारों ने अर्ध-रात्रि में वाल्मीकि मुनि के समीप पहुँचकर सहर्ष निवेदन किया : "रामपत्नी सीता ने दो यमज पुत्र उत्पन्न किये हैं। महातेज! उनकी रक्षा निमित्त भूत-विनाशक कार्य कीजिए।"

प्रसन्न वाल्मीकि ऋषि तुरन्त प्रसूती की पर्णशाला के समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने बालचन्द्र समान सुन्दर तथा देवतुल्य तेजस्वी दो शिशु देखे। ऋषि आनन्दित हो उठे। कुश लेकर भूतविघ्न-बाधादि को दूर करने के लिए विधिवत् विधानों का आयोजन किया। ऋषि ने कुश के दो भाग किए। आश्रम की वृद्धा स्त्रियों को आदेश दिया। कुश के मूल भाग से एक बालक का और कुश के अग्रभाग से, जिसे लव कहते हैं, दूसरे बालक का मार्जन करें। कुश द्वारा मार्जन किए बालक का नाम कुश और लव द्वारा मार्जन किए पुत्र का नाम लव हुआ।

वृद्धा स्त्रियों ने सावधानीपूर्वक ऋषि के हाथों से अर्घ्यमन्त्रित कुश ग्रहण किया। ऋषि की बतलाई विधि द्वारा उन स्त्रियों ने राम के गोत्र, नाम आदि का उच्चारण कर मार्जन तथा संरक्षण किया।

शत्रुघ्न ने मंगल संकीर्तन सुना। राम-सीता का वर्णन सुना। गोत्रोच्चारण सुना। चकित हुए। उठ बैठे। दो बालकों के प्रसव की बात सुनी। सीता की पर्णशाला की ओर प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े।

"मा! सौभाग्य है!" शत्रुघ्न पर्णशाला में पहुँचकर गद्‌गद् बोले : "वर्षाकालीन श्रावण की छोटी रात्रि प्रसन्नता में बीत गई।"

प्रभातकाल में महावीर्य शत्रुघ्न ने पौर्वाह्णिक क्रिया समाप्त की। ऋषि वाल्मीकि से प्रांजलिभूत आज्ञा माँगी। पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग में सात रात्रि निवास किया। तत्पश्चात् यमुना तीर पुण्यात्मा ऋषियों के पास पहुँचे। उनके पवित्र आश्रम में निवास किया। च्यवनादि ऋषियों के साथ कथा-वार्ता करते हुए कालक्षेप करने लगे।

:o: :o: :o:

यमुना-तट पर मथुरा नगरी अर्धचन्द्राकार बसी थी। शत्रुघ्न ने विमल प्रभात काल मे यमुना को पार किया। मथुरापुरी के द्वार पर धनुष-वाण लेकर स्थित हो गए।

निर्मल प्रभात काल में क्रूरकर्मा राक्षस लवण नगर से बाहर निकला। उसने आयुधधारी शत्रुघ्न को द्वार-देश पर देखा।

"नराधम!" लवण बोला: "तुम इन आयुधो से मेरा क्या बिगाड़ सकोगे! सहस्रों आयुधधारियों का मै भक्षण कर चुका हूँ। काल की कुदृष्टि तुम पर पडी है। पुरुषाधम!! मरा आहार अपूर्ण था। स्वयं तुम आ गए। बचकर नहीं जा सकते।"

लवण बात करता मुहुर्मुहुः हँस रहा था। शत्रुघ्न की आँखो से क्रोधाश्रु निकलने लगे। शत्रुघ्न के गात्रों से तेजोमयी ज्योति प्रस्फुटित होने लगी।

"दुर्बुद्धे!" शत्रुघ्न ने क्रोधपूर्वक कहा: "मै द्वन्द्व युद्ध चाहता हूँ। मै दशरथ का पुत्र हूँ। मै धीमान् श्रीराम का भाई हूँ। शत्रु-नाशक मेरा नाम शत्रुघ्न है। तुम्हारे वध निमित्त आया हूँ। मैं युद्धाकाक्षी हूँ। मुझसे द्वन्द्व-युद्ध करो। तुम प्राणियों के शत्रु हो। जीवन सहित नही लौट सकते।"

"दुर्मते! लवण ने हँसकर प्रत्युत्तर दिया: "भाग्य से तुम मिल गए। दुर्बुद्धे!! मेरी मौसी शूर्पणखा का रावण भाई था। राम ने एक स्त्री हेतु उसका वध किया है। रावण के कुलक्षय की बात जानकर भी मैंने राम को क्षमा कर दिया है। अवज्ञा करने पर भी मैंने क्षमा का परिचय दिया है। भूत काल मे जो मेरा सामना करने आए थे, उन्हे तृणवत् समाप्त कर दिया है। भविष्य मे आने वाले भी समाप्त होगे। वर्तमान काल मे तुम्हारे जैसे लोग मृतक-तुल्य है'।

"दुर्मते! युद्ध की कामना करता है। मै युद्ध करूँगा। मुहूर्त मात्र ठहर जा। मै आयुध लेकर आता हूँ।"

"ठहरो!" शत्रुघ्न सतर्कतापूर्वक तुरन्त बोले: "तुम मेरे सामने से बचकर जा नही सकते। स्वय आए शत्रु को छोड देने वाला कायर की तरह मारा जाता है।"

महात्मा शत्रुघ्न की बातें सुनकर लवण क्रोधित हो गया। गर्जने लगा। ठहर! ठहर!' कहकर दाँत कटकटाता, हाथ-से-हाथ मलता, लवण शत्रुघ्न का आह्वान करने लगा।

"निशाचर!" शत्रुघ्न ने कहा : "उस समय शत्रुघ्न का जन्म नहीं हुआ था जब तुम लोगों को मारा करते थे। वज्र-तुल्य मेरे बाणों से निहत होकर तुम यमसदन जाओगे। पापात्मा!! मै तुम्हे रण मे निहत करूँगा। विप्र, विद्वान् तथा ऋषिगण तुम्हारा वध रावण-वध की तरह देखेगे। मेरे बाणों द्वारा धराशारी होने पर जनपदों का कल्याण होगा। जिस प्रकार अर्क की रश्मियाँ कमल-कोश मे प्रवेश करती है, उसी प्रकार तुम्हारे हृदय में मेरे बाण प्रवेश करेगे।

लवण क्रोध-मूच्छित हो गया। उसने एक महावृक्ष उखाड़ लिया। शत्रुघ्न पर आक्रमण किया। शत्रुघ्न ने बाणों से वृक्ष को छिन्न-भिन्न कर दिया। आक्रमण विफल देखकर लवण ने अनेक वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर शत्रुघ्न पर प्रहार किया। शत्रुघ्न ने वृक्षों को बाणों द्वारा काटकर व्यर्थ कर दिया।

शत्रुघ्न ने बाणों की वर्षा की। लवण पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। लवण ने एक वृक्ष से शत्रुघ्न के शिर पर प्रहार किया।

शत्रुघ्न का शरीर आघात से शिथिल हो गया। शत्रुघ्न भूमि पर गिर पड़े। मूच्छित हो गए। इस अवसर से लाभ उठाकर लवण शूल लेने नहीं गया। शत्रुघ्न को मरा हुआ समझा। आहार एकत्र करने चला गया। गया।

मुहूर्त मात्र पश्चात् शत्रुघ्न सचेत हुए। आयुधों को सम्हालते हुए पुनः द्वार-देश पर खड़े हो गए।

शत्रुघ्न ने दिव्य अमोघ उत्तम शर, जिसके ज्वलन्त तेज से दशो दिशाएँ दीप्तिमती हो उठी थीं, उठाया। वह शर वज्रमुख, वज्रवेग, मेरु तथा मन्दराचल के समान था। उसमें गाँठे थी। उस पर रक्त-स्वरूप चन्दन चर्चित था। उसके पंख सुन्दर थे। दानवेन्द्रों तथा राक्षसेन्द्रों के लिए वह दारुण था। प्रलयकालीन प्रज्वलित कालाग्नि-तुल्य दीप्तिमान् था। देवता, असुर, गन्धर्व सभी उस शर के तेज से व्याकुल हो गए।

उस अमोघ अस्त्रधारी शत्रुघ्न का अद्भुत रूप देखने के लिए आए देवताओं से आकाश भर गया। शत्रुघ्न ने लवण को देखकर सिंहनाद किया।

महात्मा शत्रुघ्न के आह्वान पर क्रोधित लवण पुनः युद्धार्थ आया। शत्रुघ्न ने वाण धनुष पर चढाया। प्रत्यंचा से टंकार करता वाण छूटा। लवण का हृदय वेधता वाण रसातल चला गया और पुनः शत्रुघ्न के पास आ गया। लवण वज्राहत पर्वत-तुल्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी काया का प्राण-पखेरू ने त्याग किया। उसके भवन से महान् दिव्य शूल रुद्र के पास सवेग चल पड़ा।

:o: :o: :o:

"वत्स!" इन्द्रादि देवताओं ने शत्रुघ्न से कहा: "हम लोगो ने लवण का वध और तुम्हारी विजय देखी है। पुरुष-शार्दूल बोलो, हम तुम्हें क्या वर दें?"

महावाहु निर्लोभ शत्रुघ्न ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा: "रमणीय देव-निर्मित मथुरा निवेशयुक्त हो जाय, यही मेरी इच्छा है।"

"राघव!" देवताओं ने प्रीतमनसा कहा. "वाढमित्येव—यह नगरी शूर-वीरों से सम्पन्न होगी।"

देवता आकाशगामी हुए। शत्रुघ्न ने गंगा-तट से सेना बुलाई। उन्होंने श्रावण मास में उस पुरी को वसाना आरम्भ किया। वारह वर्षो मे शूरसेन जनपद पूर्णतया बस गया।

:o: :o: :o:

शत्रुघ्न ने शूरसेन मे वारह वर्ष निवास किया। शूरसेन देश निर्भय हो गया। खेत लहलहा उठे। समय पर वर्षा होने लगी। शत्रुघ्न द्वारा पालित वहाँ के लोग शूर-वीर तथा नीरोग होने लगे।

मथुरा नगरी यमुना-तट पर अर्द्ध चन्द्राकार वस गई। विविध भवन, चौराहे, वीथियाँ, नाना प्रकार के वाणिज्य, उद्योग से सुसम्पन्न हो गई। लवण द्वारा निर्मित भवनों की मरम्मत की गई। उन्हें शत्रुघ्न ने नाना वर्णो से सुशोभित कर दिया। भीते चित्रों द्वारा चित्रित की गईं।

स्थान-स्थान पर आराम एवं विहार नगर की शोभा बढ़ाने लगे। वह सुशोभित पुरी देवता एवं मनुष्यों के योग्य वस्तुओं से सुशोभित हो गई। नाना देशो के वणिकों का आयात-निर्यात नगर में होने लगा। नगर की समृद्धि देखकर भरतानुज शत्रुघ्न प्रसन्न हो गए।

:o: :o: :o:

बारह वर्ष के पश्चात् शत्रुघ्न को श्री रामपालित अयोध्या चलने की इच्छा हुई। नगर को मन्त्री तथा सेनापतियों के ऊपर छोड़ दिया। एक सौ रथों तथा भृत्यों के साथ अयोध्या-निमित्त प्रस्थान किया।

सात-आठ दिन मार्ग मे व्यतीत हुए। वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचे। वाल्मीकि ऋषि को प्रणाम कर उनका पाद्य, अर्घ्यादि स्वीकार किया। रात्रि में वहीं विश्राम किया।

"शत्रुघ्न!" वाल्मीकि ने प्रसन्नतापूर्वक कहा: "इन्द्र की सभा में बैठकर तुम्हारा और लवणका युद्ध मैंने देखा था। मै तुम्हारा मस्तक सूँघूँगा। यही श्रेष्ठ स्नेह का चिह्न है, राघव!!"

वाल्मीकि ने शत्रुघ्न का शिर सूँघा। ऋषि शत्रुघ्न के साथ बाहर आए। आश्रम में सब लोगों का यथावत् आतिथ्य-सत्कार किया गया। भोजनोपरान्त मधुर गीत हुआ। अनन्तर उन्होंने स्वर-लय-ताल-युक्त रामायण का गान सुना।

लोग मुग्ध हो गए। विस्मित हो गए। घटनाएँ जैसे आँखों के सामने साकार आने लगीं। अनेक घटनाओं, अनेक स्मृतियों का उदय तथा लय होने लगा। शत्रुघ्न भर हृदय से सोने चले गए।

शत्रुघ्न को शीघ्र निद्रा नहीं आई। रामायण की स्वरलहरियाँ हृदय में हिलोरें लेती रही। प्रात:काल शत्रुघ्न ने वाल्मीकि ऋषि से आज्ञा माँगी। ऋषि ने शत्रुघ्न का आलिंगन कर उन्हें विदा किया।

:o: :o: :o:

श्रीराम राज-भवन में मन्त्रियो के मध्य पूर्ण शशि-समान विराजमान थे। शत्रुघ्न ने अभिवादन किया। प्रांजलिभूत शत्रुघ्न ने कहा:

"महाराज !, आपके कार्य तथा आदेशों का पालन किया है। लवण का वध हुआ। मथुरा नगरी वसाई गई। वारह वर्ष वहाँ व्यतीत किए। विदेश में मै वहुत दिनों तक नहीं रह सकूँगा।"

"राघव!" राम ने शत्रुघ्न का आलिंगन करते हुए स्नेह से कहा·

"शूर! विषाद मत करो। विषाद क्षत्रियो के लिए अशोभन है। प्रवास द्वारा राजाओ को दु:ख नही होता। प्रजा का प्रतिपालन करना क्षात्र-धर्म है। समय-समय पर तुम अयोध्या मे आ जाया करो।

"नरश्रेष्ठ! तुम मुझे प्राणो से प्रिय हो। तथापि राज्य-पालन आवश्यक है। सात रात्रि यहाँ निवास करो। काकुत्स्थ! तत्पश्चात् सभृत्य वल, वाहन युक्त मथुरा लौट जाओ।"

सात रात्रि अयोध्या में शत्रुघ्न ने निवास किया। पुन मथुरा के लिए प्रस्थान किया। सत्य-पराक्रम राम, भरत एवं लक्ष्मण से मिलकर रथारूढ हुए। भरत तथा लक्ष्मण ने सजल नयन रथ तक आकर उन्हे विदा किया।

---

वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड ६७-७०

महाभारत सभापर्व ३८ ३९

अनुशासन पर्व १४ २६७-२६८

पुराण · ब्रह्माण्ड ३ ६३ १८६

वायु २ २६ १८४

# शम्बूक

"पूर्वजन्म में मैंने क्या दुष्कर्म किया था। एकमात्र पुत्र का निधन आँखों से देख रहा हूँ। मेरा बालक अप्राप्त-यौवन था, तथापि अकाल में काल ने इस पर किस प्रकार हाथ उठाया ? पुत्र के शोक में जननी प्राण-विसर्जन करेगी। मै भी अपने प्राणो की रक्षा निस्सन्देह नहीं कर सकूँगा।"

स्नेह-दुःख-समन्वित स्वर में रुदन कर रहा था एक वृद्ध ब्राह्मण, अयोध्या-पति राम के राज-द्वार पर अपने पुत्र का शव रख कर। वह शव के पास बैठकर विलाप करने लगा। करुण विलाप राम ने सुना। पार्षदों सहित द्वारप्रदेश पर पधारे। बाल-शव देखकर राम उदास हो गए।

"ओह! मुझे स्मरण नहीं आता। कभी मैंने असत्य भाषण किया है? कभी मैंने हिंसा की है ? कभी पाप किया है ? किस दुष्कृत के कारण पुत्र की अकालमृत्यु हुई है। बाल्यावस्था मे पितृ-कार्य किए बिना क्यों पुत्र काल-मुख हुआ है। इसकी आयु कुल पाँच सहस्र दिनों की है। मैंने कभी नही सुना कि राम-राज्य में अकाल मृत्यु होती है। तेरह वर्ष के बालक की अकाल मृत्यु कभी देखी नही गई। अकाल मृत्यु का दोषी राजा है। राज्य के स्वामी राम की कोई दुष्कृति होगी।

"राजा के पाप के कारण प्रजा घोर संकट में पड़ती है। अकाल मृत्यु के कारण, राम! आप हैं।"

वृद्ध ब्राह्मण ने राम को सम्बोधित किया।

"मैं ठीक कहता हूँ। राम! अपराधी आप हे। आपके राज्य में अकाल मृत्यु हुई है। अकाल मृत्यु के उत्तरदायित्व से आप बच नहीं सकते।

"अन्य राज्यों में बालकों की इस प्रकार अकाल मृत्यु नही हाती। राजन्! मृत बालक को जीवित कीजिए। यह हमारा अधिकार है। यह प्रजा का अधिकार है।"

राम नतमस्तक हो गए। ब्राह्मण ने मृत बालक का शव देखते हुए कहा:

"राजन् ! बालक जीवित होगा, अन्यथा मैं अपनी भार्या के सहित अनाथ-तुल्य बिना अन्न-जल यहाँ प्राण-विसर्जन करूँगा । आप ब्रह्म-हत्या का उपहार लेकर सुखी होइएगा ।"

राम गम्भीर थे, चिन्तित थे । बालक के मुख पर उनकी दृष्टि स्थिर थी । लोग नीरव थे । केवल वृद्ध ब्राह्मण की करुण ध्वनि स्थान की श्मशान-शान्ति भग करती थी ।

"राम ! तुम भाइयों सहित दीर्घ आयु प्राप्त करो ।"

शोकार्त ब्राह्मण ने राम की ओर देखकर पुन कहा :

"महाबल ! हम लोगो ने तुम्हारे राज्य मे सुखपूर्वक जीवनयापन किया है । सहसा दु ख आ पडा है । हे ! राम ! हम स्वयं कालाधीन हो गए हैं । तुम्हारे राज्य में हमें स्वल्प सुख प्राप्त नही होगा । महात्मा इक्ष्वाकु के वशियो का राज्य अनाथ हो गया । इक्ष्वाकु-वश के राजा आप हैं । आपके राज्य मे निरीह पापरहित बालको की अकाल मृत्यु होती है !"

"अकाल मृत्यु ?" जनसमूह में दबी ध्वनि उठी ।

"हाँ । अकाल मृत्यु !" ब्राह्मण ने रोते हुए कहा "राजा के दोष, प्रजा के अविधिवत् पालन, राजा की असद् वृत्ति के कारण प्रजा की अकाल मृत्यु होती है । जब जनपद किंवा जन-समुदाय मे पापाचार फैलता है, अनुचित कार्यों से प्रजा को विमुख नही किया जाता, रक्षा-व्यवस्था शिथिल हो जाती है, तो प्रजा का अकाल मृत्यु से भयग्रस्त होना स्वाभाविक है । यह ध्रुव सत्य है । जनपद मे, नगर में, कही राज-दोष हुआ है । निस्सदेह उसी राज-दोष के कारण मेरे बालक की अकाल मृत्यु हुई है ।"

शोकाकुल ब्राह्मण शोकावेग में पुत्र पर गिरकर उसका आलिगन करने लगा ।

दु.ख-संतप्त राम ने आदेश दिया "मन्त्री, वशिष्ठ, वामदेव, भाई लोग तथा नैगम उपस्थित हो ।"

.o: .o: o:

वशिष्ठ, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम आदि राजसभा में अपने आसनो पर आसीन थे । नारद ने प्रवेश कर आशीर्वाद दिया :

"वृद्धि हो।" नारद ने उत्तम आसन ग्रहण किया।

राम ने कृतांजलिपूर्वक उनका अभिवादन किया। पुनः अपना स्थान ग्रहण किया। मंत्री तथा नैगमगण आए। उन्हें राम ने यथानुकूल आदर-पूर्वक बैठाया। सब लोग स्थिर थे। शान्तिपूर्वक आसन पर आसीन थे। सबकी गम्भीर दृष्टि राम की ओर उठी।

"ब्राह्मण ने विरोध किया है। आप लोगों ने बालक के शव सहित उसे देखा है। उसका विलाप सुना है। कहिए! इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है?"

"राजन्!" नारद ने गम्भीरतापूर्वक कहा: "राजा के राज्य में दुर्मति व्यक्ति द्वारा किये गए अधर्म कर्मो के कारण राज्य का अकल्याण होता है। निस्संदेह राजा नरकगामी होता है। धार्मिक प्रजा-पालक राजा तपस्या, सुकर्म तथा सुकृत के छठे भाग का भागी होता है। राजा प्रजा के छठे भाग का भोक्ता है! प्रजा की रक्षा राजा का कर्त्तव्य है। पुरुष-शार्दूल!! राज्य में अधर्म को ढूँढो, अन्यथा पाप होगा। पाप तथा अधर्म के तिरोहित होने पर धर्म की वृद्धि होगी। आयु की वृद्धि होगी। मृत बालक जीवन ग्रहण कर लेगा।"

"राज्य में अधर्म कहाँ हो रहा है?" राम ने जिज्ञासा की।

"शूद्र तपस्या कर रहा है।"

"तो?" राम गम्भीर होने लगे।

"यह अधर्म बालक की अकाल मृत्यु का कारण है।"

"किस प्रकार?" राम ने विस्मित होकर पूछा।

"राम!" नारद बोले: "प्रश्न का सम्बन्ध राज्य तथा समाज से है। मानव-कर्त्तव्य की एक व्यवस्था है। कृतयुग मे ब्राह्मण तपस्वी होते थे। अब्राह्मण तपस्या नहीं कर सकता था। अज्ञान का अभाव था। सतयुग तपस्वियों से प्रतिभा-सम्पन्न था। सभी दीर्घदर्शी होते थे। कृतयुग में अकाल-मृत्यु नहीं होती थी।

"रघुनन्दन! कृतयुग के पश्चात् आया त्रेतायुग। इस युग मे क्षत्रियों की प्रधानता हुई। वे तपस्या करने लगे। कृतयुग के तपस्वी त्रेतायुग के तपस्वियों से अधिक पराक्रमी तथा तपस्वी थे। त्रेतायुग में ब्राह्मण तथा

क्षत्रिय दोनों समान हो गए। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों मे तपस्या तथा वीर्य था। दोनों वर्णों मे भेद नही देखा गया। अतएव धर्म-प्रवर्तक मनु आदि ने लोक-सम्मत चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था की। उस समय वण-व्यवस्था की प्रधानता थी। वर्ण-व्यवस्था धर्म-सम्मत थी।

"काकुत्स्थ ! उस युग में धर्म प्रधान था। अज्ञान का अभाव था। किन्तु पृथ्वो तल पर अधर्म ने अपना एक चरण रखा। अधर्म के प्रादुर्भाव क कारण तेज मन्द हो गया। कृतयुग को रजोगुण मल के समान त्याज्य था।

"त्रेतायुग मे अनृत ने प्रवेश किया। अधर्म ने अनृत-स्वरूप चरण भूतल पर रखा। अतएव मानव की आयु सीमित हो गई। कृतयुग की आधी आयु प्राणी पाने लगे। अनृत आविर्भूत हुआ है। सत्यपरायण लोग अनृत से वचने के लिए शुभ आचरण करने लगे। त्रेता में ब्राह्मण और क्षत्रिय तपस्या करते थे। अन्य वर्ण शुश्रूषा में रत थे। वैश्य एवं विशेषतया शूद्र का स्वधर्म अन्य वर्णों की पूजा करना हो गया था।

"नृपसत्तम ! अनृत वृत्ति के कारण प्राणियो का ह्रास होने लगा। अधर्म ने दूसरा चरण पृथ्वी पर रखा। वह युग द्वापर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अधर्म एवं अनृत द्वापर युग मे आश्रय पाकर वढ़ने लगे। वैश्य तपस्या करने लगे। तीनों युगों में क्रम से तीनों वर्णो के लोग तपस्या मे प्रवृत्त हुए। तीनों युगों में क्रम से तीनों वर्ण धर्म में परिनिष्ठित हुए। किन्तु शूद्र को किसी भी युग मे धर्माधिकार प्राप्त नहीं हुआ। उन्हे तपस्या का अधिकार नही मिल सका।

"नृपश्रेष्ठ ! कलियुग आएगा। उस समय हीन वर्ण के लोग तपस्या करने लगेंगे। द्वापर युग में शूद्र के लिए तपस्या अविहित है। आज शूद्र आपके राज्य मे कठिन तपस्या कर रहा है। इसी अनीति के कारण वालक की अकाल मृत्यु हुई है। उसे रोकना चाहिए। रुकने पर धर्म की वृद्धि होगी। मानव की वृद्धि होगी। वालक जीवित होगा।"

नारद के अमृतमय वाक्यों को सुनकर रामचन्द्र का मुख प्रसन्न हो गया।

:o: :o: :o:

"सौम्य !" राम ने लक्ष्मण से कहा : "शोकार्त्त द्विज-श्रेष्ठ को द्वार पर जाकर आश्वासन दो । तैल-द्रोणी में बालक का शरीर रख दो । सुगन्धि तथा अच्छी तरह सुगन्धित तैल में बालक का शरीर डुबाकर द्रोणी में रखना । विधिवत् बालक का शरीर रखा जाय । वह किसी प्रकार क्षीण न हो सके । बालक का शरीर हर प्रकार की विपत्ति की सम्भावना से दूर रहे । उसका अंग विकृत नहीं होना चाहिए ।"

"प्रभु आज्ञा !" लक्ष्मण ने नम्रतापूर्वक आज्ञा शिरोधार्य की ।

राम ने पुष्पक विमान का चिन्तन किया । मुहूर्त्त मात्र में हेम-भूषित पुष्पक उपस्थित हुआ ।

राम ने महर्षियों का अभिवादन किया । पुष्पक पर आरूढ़ हुए । धनुष धारण किया । तूणीर रखा । रुचिरप्रभ खड्ग लिया ।

"सौम्य !" राम ने भरत और लक्ष्मण से कहा : "नगर-रक्षा में रत रहना । । मैं शूद्र तपस्वी के अन्वेषणार्थ प्रस्थान करता हूँ ।"

राम पश्चिम दिशा में गमनशील हुए । वहाँ राम ने तपस्वी शूद्र को ढूँढ़ा । नहीं मिला । वहाँ पर राम ने किंचित् मात्र दुष्कृत नहीं देखा ।

राम उत्तर दिशा गए । वहाँ हिमवान् फैला था । राम ने वहाँ दुष्कृत नहीं देखा ।

पूर्व दिशा में राम ने गमन किया । उस दिशा में विशुद्ध सदाचार का पालन होता था । वह दिशा सदाचार तथा पवित्रता द्वारा दर्पण-तुल्य निर्मल थी ।

अनन्तर राम ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया । शैवलपर्वत के उत्तर पार्श्व में एक महान् सरोवर देखा । उस सरोवर के उपकूल में एक महान् तपस्वी अधोमुख अत्यन्त कठिन तपस्या कर रहा था । रामचन्द्र तपस्वी के समीप गए ।

सुव्रत ! राम तपस्वी से बोले : "आप धन्य हैं । दृढ़-विक्रम हैं । तप वृद्ध हो । आपका वर्ण क्या है ? मैं दाशरथी राम हूँ । केवल कौतूहलवश परिचय निमित्त कष्ट दे रहा हूँ ।"

तपस्वी का पैर ऊपर और मस्तक नीचे लटक रहा था। उसने शस्त्र-धारी राम को देखा।

"तपस्वी!" राम ने कहा : "आपकी तपस्या का प्रयोजन क्या है? स्वर्ग चाहते हैं अथवा और कुछ? दुष्कर तपस्या का आश्रय क्यों लिया है? मै जिज्ञासु हूँ। आप ब्राह्मण दुर्जय, क्षत्री, तृतीय वर्ण वैश्य अथवा शूद्र, किसी भी वर्ण के हों, सत्य-सत्य कहिए।"

"महायशस्वी राम! मै शूद्र हूँ।"

राम की मुद्रा में परिवर्तन होने लगा। "आपकी संज्ञा?"

"मेरा नाम शम्बूक है।"

"तपस्या का कारण?" राम की वाणी मे कठोरता थी।

"काकुत्स्थ! मै उग्र तपस्यारत हूँ। सशरीर स्वर्ग जाना चाहता हूँ। राम! मै मिथ्याभाषी नहीं हूँ। देवलोक विजयाकांक्षी हूँ। मै शूद्र हूँ।"

शम्बूक की वाणी समाप्त नहीं हुई थी। शीघ्रतापूर्वक विमल कोश से सुरुचिरप्रभ खड्ग राम ने निकाला। अविलम्ब शम्बूक का शिरश्छेद कर दिया।

शम्बूक के प्राणपखेरू उड़ गए। देव-ध्वनि हुई. "साधु! साधु!!" मरुत् ने सुरभित पुष्पों की वर्षा की। प्रसन्न देवगण राम से बोले :

"राम! आपके कारण देवताओं की कार्य-सिद्धि हुई है। शूद्र सशरीर स्वर्ग नहीं जा सका। आपने धर्म तथा व्यवस्था की रक्षा की है। हम आपको क्या वर दे सकते है, सौम्य?"

राम ने सहस्राक्ष पुरन्दर से निवेदन किया :

"यदि देव मुझ पर प्रसन्न है तो ब्राह्मण बालक पुनर्जीवित हो जाय।"

"मेरे अपराध के कारण वालक की अकाल मृत्यु हुई थी। वालक को पुन जीवित करने की मैंने प्रतिज्ञा की है। मेरी प्रतिज्ञा असत्य नही होनी चाहिए।"

"राघव! आपने जिस समय शम्बूक का शिरश्छेद किया, उसी समय वालक जीवित हो गया।

"स्वस्ति ! हम चलते हैं ।"

देवताओं ने अगस्त्यमुनि के दर्शनार्थ वहाँ से प्रस्थान किया ।

राम लौट आए अयोध्या ।

---

वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड : ७३-७६

महाभारत : शान्ति पर्व १५३ : ६७

## दण्ड

सत्ययुग था।

'इक्ष्वाकु !" दण्ड-व्यवस्थापक मनु ने अपने ज्येष्ठ तथा दुर्जय पुत्र इक्ष्वाकु से कहा . "पृथ्वी पर राजवंश की स्थापना द्वारा राज्य करो।"

सत्ययुग का काल था। भगवान् मनु पृथ्वी पर राज्य शासन कर रहे थे। उनकी इच्छा इक्ष्वाकु को राज्य देने की हुई।

"पित. ! आदेश पालन करूँगा। प्रतिज्ञा करता हूँ।"

"परमोदार पुत्र !" पुत्र के उत्तर से मनु संतुष्ट हो गए थे। प्रसन्नतापूर्वक बोले . "दण्ड द्वारा दुष्टों का दमन करते हुए प्रजा की रक्षा करना। अकारण दण्ड का प्रयोग राजा को पाप-पथ-गामी करता है। अपराधियो को न्यायपूर्वक दिया गया दण्ड, विधिपूर्वक दिया गया दण्ड, राजा के लिए स्वर्ग का द्वार अनावृत करता है।

"महाबाहो ! दण्ड के समुचित प्रयोग-निमित्त प्रयत्नशील रहो। तुम्हे लोक में धर्म की प्राप्ति होगी।"

मनु समाधिस्थ हो गए। उन्होंने सनातन ब्रह्मलोक गमन किया।

:o: :o: :o:

अमित तेजस्वी इक्ष्वाकु ने विचार किया। पुत्र-कामना का उदय हुआ। अनेक कर्मों द्वारा इक्ष्वाकु ने देव-सुतोपम एक सौ पुत्र उत्पन्न किए। सबमे कनिष्ठ पुत्र मूढ़ था। विद्याविहीन था। ज्येष्ठ भ्राताओ की शुश्रूषा नहीं करता था।

इक्ष्वाकु समझ गए। पुत्र पर कभी-न-कभी दण्डपात होगा। पिता ने उसका नाम दण्ड रख दिया।

इक्ष्वाकु के सम्मुख समस्या उत्पन्न हो गई। दण्ड को कहाँ रखा जाय। उन्हे कोई घोर देश दिखाई नहीं दिया। अन्ततोगत्वा उन्होने विन्ध्य एवं शैवल पर्वत मध्यवर्ती राज्य पुत्र दण्ड को दे दिया।

:o: :o: :o:

पर्वत के तटवर्ती रमणीय भू-भाग पर दण्ड ने अनुपम सुन्दर नगर बसाया। नगर का नाम मधुदन्त रखा। असुर-गुरु शुक्राचार्य को बनाया पुरोहित। जनाकीर्ण नगर में सभी हृष्ट-पुष्ट एवं प्रसन्न थे। किसी को कष्ट नहीं था। इन्द्र देवलोक में देवगुरु बृहस्पति के सहयोग से राज्य करते हैं। दण्ड ने भी शुक्राचार्य की सहायता से भूतल पर इन्द्रिय-निग्रह तथा संयम-पूर्वक राज्य संचालन करना आरम्भ किया।

:o: :o: :o:

मनोरम रमणीय कामोन्मादक चैत्र मास था। वसन्त वन में विहर रहा था। शुक्राचार्य के पवित्र आश्रम में राजा दण्ड का आगमन हुआ।

सुरम्य वन में दण्ड ने देखी अप्रतिम रूपवती विचरती एक कन्या। कन्या की रूप-माधुरी वह पुष्पित पादपावली की ओट से पान करने लगा। अनंग ने पुष्प-शर छोड़ा। आहत भागता वह कन्या के समीप आ गया। कन्या भयभीत हो गई। कन्या की भीरुता ने नारी-जन्य काम-रूप की वृद्धि कर दी। आकर्षित प्रकम्पित यौवन ने दण्ड ो कर दिया उमंगित। लोचनों में जमने लगी लाली।

"सुश्रोणि!" दण्ड कन्या के समीप आकर बोला: "इस वन मे श्री-वृद्धि निमित्त कहाँ से आ गई हो?"

"मैं आश्रम में रहती हूँ।"

"शुभे! तुम्हारे भाग्यशाली पिता का परिचय?"

"क्लिष्ट-कर्मा भार्गव शुक्राचार्य की ज्येष्ठा कन्या हू।"

"शुभानने! तुम्हारा नाम?" कामस्मित दण्ड ने कन्या की ओर झुकते हुए कहा।

"अरजा।"

"प्रिये!" काम-मोहित दण्ड कन्या की ओर और झुका।

"राजन्!" मुख मोड़ती अरजा बोली: "मरा वलात् स्पर्श न कीजिए।"

"क्यां?"

"मैं पिता के अधीन हूँ। कुमारी हूँ।"

"सुनो!" कन्या के नेत्रों में देखते हुए दण्ड बोला।

"राजन्! मेरे पिता आपके गुरु है। आप उनके शिष्य है।"

"भद्रे! किन्तु मै हूँ—"

"नरश्रेष्ठ! आप मेरा वरण करना चाहते है? तो धर्मानुसार सन्मार्ग का अनुकरण करते हुए पिता से कन्यादान-निमित्त निवेदन कीजिए। वे महातपस्वी है। उनके क्रोधित होने पर आप घोर कष्ट मे पड जाएँगे।"

"यदि वे अस्वीकार करें तो?"

"उस स्थिति में मै क्या कर सकती हूँ? राजन्! क्रोधित पिता त्रैलोक्य का नाश कर देंगे। आपके माँगने पर पिताजी अवश्य मुझे आपको दे देंगे।"

"सुश्रोणि!" मदनोन्मत्त राजा ने शिर से दोनों हाथ जोड़ते हुए आतुरतापूर्वक कहा: "प्रसाद दो देवि! समय बीत रहा है।"

अरजा भयभीत हो गई।

"वरानने! तुम्हारे निमित्त मेरे प्राण विदीर्ण हो रहे है।"

"राजन्!" भयभीत अरजा घबराई।

"भीरु! तुम्हे पा लेने पर चाहे मेरा वध हो, भयकर पाप हो, दारुण दु:ख हो, मैं सब सह लूँगा। मैं तुम्हारा भक्त हूँ। मै विह्वल हूँ। मुझे अंगीकार करो। मै तुम्हे चाहता हूँ।"

कहते-कहते उन्मत्त दण्ड ने अरजा को अपने भुजपाश में ले लिया। वन गम्भीर हो उठा।

:o: :o: :o:

आश्रम से कुछ दूर थी अरजा। रो रही थी। प्रतीक्षा कर रही थी। भय-विह्वल थी।

भार्गव ने सुनी बलात्कार की बात। वह शिष्यो सहित भूखे आश्रम में लौट आए।

भार्गव शुक्राचार्य की आँखों ने देखा दु:खिनी अरजा को। वह दीन थी। वह रजोयुक्त थी। प्रात:कालीन राहु-ग्रस्त चन्द्रमा की ज्योत्स्ना-तुल्य वह निष्प्रभ थी। कन्या के कातर, दीन रूप ने प्रज्वलित कर दी शुक्राचार्य की क्रोधाग्नि।

"शिष्यो ! अविदितात्मा धर्म-विरुद्धाचारी दण्ड पर अग्नि-शिखा तुल्य आनेवाली घोर विपत्ति को देखो। वह दुर्मति प्रदीप्त शिखा-आलिंगन-शील मनुष्य के समान सकुटुम्ब अनाथ होगा।

"उसने घोर पाप किया है। उस पापकर्मा को पाप का फल मिलना चाहिए। राजा दण्ड को दण्ड मिलेगा। वह दण्ड से बच नही सकता' सात रात्रि में दुर्मति राजा दण्ड सन्तान, सेना, वाहन सहित मृत्यु का आलिंगन करेगा। इन्द्र इसके सौ योजन विस्तृत राज्य को धूल वर्षा द्वारा नष्ट कर देंगे। स्थावर, जंगम जीव पांसुवर्षण द्वारा विलीन हो जाएँगे। सात रात तक दण्ड का समस्त राज्य-क्षेत्र पांसुवर्षण द्वारा प्रलय काल के समान धूल मे विलीन हो जायगा।

"शिष्यो !" शुक्राचार्य ने अपने शिष्यों को सम्बोधित किया . "आश्रम-वासियो ! ! आश्रम त्याग दो। यह निवास संकटापन्न है। राज्य त्याग देना चाहिए। राज्य सीमा पर आश्रम बनाइए।"

"अरजा !" शुक्राचार्य अपनी कन्या से बोले : "यह एक योजन विस्तृत सरोवर है। आनन्दपूर्वक यहाँ निवास करो। पांसु-वर्षण के समय जो जीव-जन्तु तुम्हारे समीप रहेंगे, उन पर धूल-वर्षा का प्रभाव नही पड़ेगा। मैं यह स्थान, यह राज्य त्याग कर जाता हूँ।"

:o: :o: :o:

विन्ध्य एवं शैवल के मध्य का देश पांसुवर्षण में विलीन हो गया। दण्ड और उसके साथी आदि सभी जलकर भस्म हो गए।

उस मरुदेश का नाम दण्डकारण्य हुआ। तपस्वियों ने जहाँ निवास-आश्रम बनाया, उसका नाम जनस्थान पड़ा।

—:o:—

वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड : ७९-८१
पुराण पद्म सृष्टि खण्ड ३४, ३७

टिप्पणी—इस समय दण्डकारण्य में दण्डकारण्य योजनानुसार पूर्वीय पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी बसाये जा रहे हैं। मालूम होता है मुनि के शाप के कारण अथवा अन्य किसी प्राकृतिक अथवा भौगोलिक स्थितियों के कारण वह पूर्णतया जनस्थान में कभी परिणत नही हो सका। इसको आधुनिक जनस्थान बनाने की योजना अब पूर्ण की जा रही है।—लेखक

# वृत्रासुर

"महावाहो !" इन्द्र ने दीनतापूर्वक भगवान् विष्णु से निवेदन किया। "बलवान्, धर्मात्मा वृत्रासुर ने सभी लोकों को जीत लिया है। मेरी शासन-क्षमता क्षीण हो गई है ?"

"क्यों ?"

"सुरेश्वर ! पूर्वकाल में सुर और असुरों मे मेल था। वृत्रासुर का लोक में आदर था। वह असुरों का राजा था। एक सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा था। वह तीनों लोकों को आत्मीय दृष्टि से देखता था। धर्मज्ञ था, कृतज्ञ था, स्थित-प्रज्ञ था, बुद्धिमान् था और धर्मपूर्वक सावधानी से पृथ्वी का शासन करता था। उसके शासन-काल मे पृथ्वी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली थी। फल तथा फूल रसयुक्त होते थे। महात्मन् ! उसके राज्य मे भूमि बिना जोते अन्न उत्पन्न करती थी, धन-धान्य से सुसम्पन्न थी। इस प्रकार अद्भुत दर्शनीय तथा सुन्दर राज्य का भोग वह करता था।

---

| | | |
|---|---|---|
| वाल्मीकीय रामायण | उत्तरकाण्ड | ८४-८६ |
| महाभारत | आदि पर्व | ६५ ३३ |
| | | ६७ : ४४ |
| | | १६६ : ५० |
| | वन पर्व | १०० ४ |
| | | १०१ . १५ |
| | उद्योग पर्व | ६ ४८ |
| | | ६ ५२ |
| | | १० २७-३१ |
| | शान्तिपर्व | २७६ १३-३१ |
| | | २८० ५७-५६ |
| | | २८१ १३-२१ |
| | | २८२ ६ |

किसी समय उसमें तपस्या करने का विचार उत्पन्न हुआ। तप उत्तम है। तप परम श्रेय है। अन्य सुख क्षणिक हैं। विनाशशील हैं। उसकी समझ में बात आई।

"तत्पश्चात्—?"

"भगवन्!" वृत्रासुर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया। उसे पौरगणों को सौंपा। स्वयं कठोर तपस्या में लग गया। सुरेश्वर! यदि वह और तप करेगा तो सब लोक तथा देवता उसके अधीन हो जायेंगे।

---

| | |
|---|---|
| | २८२ . ६ |
| | २८३ . ५६-६० |
| आश्वमेधिक पर्व . | ११ ७-१६ |
| पुराण पद्म . उत्तरखंड | ६ . ११४ |
| भू-खंड | २५, २४ |
| पाताल-खड | १६, १००, ७३ |
| भगवत | ६ : ६, १६ |
| स्कन्ध | १, १, १६ |
| देवी भागवत | ६ १ ६ |
| | १ ८ ६ |
| ऋग्वेद | १ ३२ ६ |
| | १ ५२ १० ६ |
| | २ १५ ६     २ १६ ३ |
| | ३ ३० ८     ४ ४६ १ |
| | ६ ७६ २     ४ १६ १, |
| | ८ ६ ६ |
| ब्राह्मण . शतपथ | १ १ ३ ४ |
| | ३ १ ३ १२ |
| | ४ १ ३ १ |
| | ५ ५ ५ १ |
| तैत्तिरीय संहिता | २ १ ४ |
| | २ ४ १२ |

महाबल ! आप अपनी सरल उदारता के कारण उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। सुरेश्वर ! आपके क्रोध के सम्मुख वह क्षणमात्र नही ठहर सकता। आपके प्रसाद से मै लोकनाथ बना हूँ। आपके साथ उसकी प्रीति हो गई है। प्रीति प्राप्त कर उसने सम्पूर्ण लोको पर अधिकार कर लिया है। भगवन् ! आप लोको पर कृपा कीजिए। आपकी कृपा द्वारा जगत् शान्त और दुखहीन हो जायगा। विष्णो ! आपकी कृपा की प्रतीक्षा देवतागण कर रहे हैं। वृत्र-वध मे आप सहायक होइए। आपने सर्वदा महात्माओ, देवताओ की सहायता की है। दूसरो के लिए वृत्र अजेय है। आप गतिहीनो की गति है। अतएव भगवन् ! आप कृपा कीजिए।"

"शुक्र !" विष्णु ने कहा "महात्मा वृत्रासुर पूर्वकाल के मेरे सुहृद् है। आप लोगो की प्रसन्नता निमित्त सुहृद्-वध नही कर सकता।"

शुक्र का मुख लटक गया।

"किन्तु", विष्णु ने कहा "आप लोगो के उत्तम सुख की व्यवस्था मुझे करनी है। सहस्राक्ष ! मै वृत्रासुर के वध का उपाय करता हूँ।"

इन्द्र का मुख खिल गया। देवता प्रसन्न हो गए। विष्णु ने योजना बताई .

"सुरोत्तम ! मै अपनी आत्मा के तीन भाग करूँगा। उसके द्वारा, सहस्राक्ष ! निस्संदेह वृत्र का वध होगा। एक अश इन्द्र, तुम में, दूसरा वज्र मे और तीसरा भूतल मे जायगा। वृत्र का वध होगा।"

o. o: .o.

महात्माओ के साथ इन्द्र वन मे पहुँचे। वृत्रासुर तपस्या कर रहा था। उन लोगों ने देखा। वन मे वृत्रासुर का तेज व्याप्त था।

---

**नोट** —वृत्र का वर्णन जिन्दावस्ता मे आया है। जरथस्तु वाह्लीक अर्थात् बलख के समीपवर्ती स्थान में उत्पन्न हुए थे। यही उनकी कर्म-भूमि थी। जरथस्तु असुर थे। उनके भगवान् का नाम अहुरयज्द अर्थात् महा-असुर था। आर्यो की सुर तथा असुर दो शाखाएँ थी। भारतीय आर्य शाखा सुर थी। कैस्पियन सागर तुर्किस्तान, वाह्लीक तथा गिलगिट के पश्चिम-उत्तर तथा उत्तरीय अफगानिस्तान और उत्तरीय फारस असुर देश तथा असुर धर्मानुयायियो के अन्तर्गत था।

असुर-श्रेष्ठ को देखकर देवता भयभीत हो गए। वे विचार करने लगे। अकस्मात् इन्द्र ने वज्र-प्रहार वृत्र के मूर्धा पर किया। वज्र प्रलय-कालीन अग्नि तुल्य भयंकर दीप्तिमान् था। ज्वालाएँ निकल रही थीं। वज्र-प्रहार असुर सहन नहीं कर सका।

निरपराध वृत्र-वध हुआ। किन्तु इन्द्र चिंतित हो गए। वे अविलम्ब लोकालोक पर्वत के परवर्ती तिमिराच्छन्न प्रदेश में चले गए।

पीछे चली ब्रह्महत्या। ब्रह्म-हत्या इन्द्र का पीछा त्याग नहीं सकी। ब्रह्महत्या ने इन्द्र के शरीर में प्रवेश किया। इन्द्र दुखी हो गए।

:o: :o: :o:

"सुरशार्दूल!" देवताओं ने विष्णु से निवेदन किया: "इन्द्र वृत्र की ब्रह्महत्या के पाप से किस प्रकार बच सकेंगे?"

"शक्र मेरी पूजा करें। मैं उनको पापमुक्त करूँगा। पवित्र अश्वमेध यज्ञ द्वारा पुण्य अर्जित करें। तत्पश्चात् पुनः उन्हें इन्द्र-पद प्राप्त होगा।"

देवताओं ने भगवान् की स्तुति की।

:o: :o: :o:

ब्रह्महत्या के कारण इन्द्र का चित्त शान्त नहीं हुआ। स्थिर नही थे। नष्टसंज्ञ हो गए थे। विचेतन थे। इन्द्र ने लोकों के अन्त मे आश्रय लिया। वहाँ सर्प-तुल्य लोटते अचेत रहे। इन्द्र के नष्ट होने के कारण समस्त जगत् उद्विग्न हो गया। भूमि की शोभा नष्ट हो गई। जलाभाव के कारण काननन सूखने लगे। सरिताओं का हृदय नि:स्रोत हो गया। वृष्टि के अभाव में प्राणी विक्षुब्ध हो गए।

---

वृत्र तथा शक्र का सघर्ष विचित्र सैद्धान्तिक कथानक उपस्थित करता है। वृत्र तपस्वी था। उसने कोई अपराध नही किया था। असुर होने के कारण उसकी बढ़ती शक्ति देखकर सुरगण उसका नाश चाहते थे। मालूम होता है, उस समय असुर-सम्प्रदाय वृद्धि पर था। वृत्र को समाज मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था। सुर-सम्प्रदाय भयग्रस्त हो गया था। एतदर्थ वृत्र-वध किया गया। वृत्र अर्थात् असुर-नेता की मृत्यु, राजा अथवा देवता की मृत्यु की प्रतिक्रिया का होना अवश्यम्भावी था। असुरों की शक्ति क्षीण होने की कल्पना की गई।

देवतागण व्याकुल थे। बृहस्पति के साथ देवता इन्द्र के पास गए। उनको आगे कर अश्वमेध यज्ञ करने लगे।

यज्ञ समाप्त हुआ। ब्रह्म-हत्या ने इन्द्र का त्याग किया। देवताओं से बोली : "मै किस स्थान मे रहूँ ?"

"ब्रह्महत्ये! देवता लोग संतुष्ट मन से बोले . "अपने चार विभाग कर दो।"

ब्रह्महत्या चार विभागो मे विभक्त हो गई।

"देव!" ब्रह्महत्या बोली "चार मास तक मै पूर्ण नदियो में निवास करूँगी। मैं उस काल मे इच्छाचारिणी रहूँगी। दर्प-दलन करूँगी। दूसरे अंश द्वारा पृथ्वी पर निवास करूँगी। तृतीय अश यौवनशालिनी स्त्रियो मे उनके गर्व को चूर्ण करती हुई रजस्वला काल मे तीन रात्रि रहूँगी। चौथे अंश द्वारा पवित्र ब्राह्मणो की हत्या करने वालो पर आक्रमण करूँगी।"

"दुर्वसे!" देवता बोले : "तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

---

वज्र क्षेप्यास्त्र था। इसका वर्णन तथा उपमा बिजली तथा बिजली की कडक से दी जाती है। बिजली में मारक शक्ति होती है। वह भस्म कर देती है। वज्र-प्रहार से विजली-तुल्य कड़क तथा अग्नि उत्पन्न होने का वर्णन मिलता है। सम्भवत यह आधुनिक अणु-अस्त्र तुल्य रहा होगा। वज्र-काल की सभ्यता तथा उसके सदृश अस्त्र तैयार करने मे समय लगेगा।

## इल

स्कन्द की पवित्र जन्मभूमि थी। उत्तम चैत्र मास था। महावन शोभनीय रूप धारण कर चुका था। वहाँ की सभी पुल्लिग वस्तुएँ स्त्रीलिग हो गई थी। शिव उमा के साथ मनोरजन करते थे। महादेव की ध्वजा पर वृष का चिह्न बना था। उन्हें वृषध्वज कहा जाता था। शिव ने स्वयं उमा की इच्छा-पूर्ति के निमित्त स्त्री-भाव धारण कर लिया था। वे एक पर्वतीय निर्झर के आश्रय मे उमा के साथ विहार करते थे।

प्रजापति कर्दम के पुत्र इव थे वा ीक देश के राजा। वे धार्मिक थे। ाजा का पुत्रवत् पालन करते थे। सुरगण, दैत्य, नाग, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष आदि जातियाँ इल से भयभीत रहा करती थीं। वह धर्म, पराक्रम तथा बुद्धि मे स्थिर था।

इल अनुचरों सहित वन में मृगया निमित्त गए। अकस्मात् वन में एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ राजा ने पशुपक्षी, वृक्ष, आदि सभी में स्त्री-भाव देखा। देखते-देखते अनुचरों सहित उन्होंने भी स्त्री-भाव प्राप्त किया।

राजा दुःखी हो गए। व्याकुल हो गए। उनकी समझ में बात नहीं आई। अन्ततोगत्वा शिव के पास पहुँचे। भगवान् शंकर के चरणों पर गिर पड़े। शिव पार्वती के साथ विराज रहे थे।

"राजर्षि!" महेश्वर हँसते हुए बोले: "उठो सौम्य! पुरुषत्व के अतिरिक्त, जो चाहो माँग लो।"

राजा का मुख उदास हो गया। वे पुरुषत्व प्राप्त करना चाहते थे। राजा ने पार्वती को प्रसन्न करने का विचार किया। तत्क्षण उमा की स्तुति करने लगे:

"मातः! आप सम्पूर्ण संसार की जननी है। आपका दर्शन निरर्थक नहीं होता। देवि!! सौम्य दृष्टि द्वारा मुझ दीन पर कृपा कीजिए।"

"राजर्षि!" उमा बोली: "तुम पुरुषत्व चाहते हो। सम्पूर्ण वर देने का अधिकार मेरा नहीं है। आधा वर देने का अधिकार रुद्र का है।

आधा मै दे सकती हूँ । आधा वर प्राप्त कर सकते हो । अतएव स्त्रीत्व एव पुरुषत्व मे जिस अर्धांश की इच्छा हो माँग लो ।

"राजन् !" देवी वोली . "जिस समय तुम स्त्रीत्व प्राप्त करोगे, उस समय पुरुषत्व का स्मरण नही होगा । जिस समय पुरुषत्व प्राप्त करोगे, उस समय स्त्रीत्व की भावना तथा स्मरण का लोप हो जाएगा ।"

राजा ने देवी को प्रणाम किया ।

:o: :o: o:

स्त्रीत्व-प्राप्त राजा इल का नाम इला हो गया । वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी हो गई । अनुचरो सहित स्त्रीत्व प्राप्त कर इला पर्वत-कन्दराओ में पैदल विहार करने लगी । वह पर्वतमालाओ की द्रोणियो मे विचरण करने लगी । पर्वत के समीप वन-प्रान्त मे एक सुरुचिर सरोवर था । पक्षिगणो के कलरव से युक्त था । सोम-पुत्र बुध उस पवित्र सरोवर मे तपस्या कर रहे थे । वे पूर्ण यशस्वी, पूर्ण काम तथा पूर्ण तरुण थे ।

प्रसन्नवदन इला अनुचरियों सहित सरोवर-तट पर आई । सरोवर का उत्तम स्वच्छ शीतल जल देखकर जलक्रीडा की भावना सरल हृदय मे उत्पन्न हो गई । अनुचरियों, सखियो सहित किलकारी मारती उमगपूर्वक सरोवर मे उतरी । उनकी जल-क्रीड़ा से सरोवर का जल क्षुभित हो गया । नारी-जन्य कोलाहल और जल की विक्षुब्धता ने स्थान की नीरवता भंग कर दी । बुध का ध्यान टूट गया । उनके कमलाक्ष लोचनो ने देखा कामरूप कमनीय कामिनी को । कामपुत्तली पर कामपूर्ण बुध मोहित हो गए, । तत्पोरत बुध सरोवर की क्रीडा लहरियों मे विचलित हो गए ।

इला को देख कर बुध विचार करने लगे . त्रैलोक्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी यह कौन है ? इतना पूर्ण मनोग्राही सौन्दर्य, देववनिताओ, नाग-बंधुओ एव असुरों की रमणियो तथा अप्सराओं मे कभी पूर्वकाल मे नही देखा गया । सर्वाङ्ग सुन्दरी यदि परस्त्री नहीं होगी, तो मेरी स्त्री होने योग्य है ।

विचारशील बुध सरोवर से बाहर निकले । आश्रम पर पहुँचे । उन सुन्दरियो को आश्रम मे पधारने के लिए आमन्त्रित किया ।

स्त्रियों ने आकर बुध को प्रणाम किया ।

"लोक-सुन्दरी !" बुध की मधुर मधुराक्षर-युक्त वाणी प्रस्फुटित हुई। "तुम किसकी पत्नी हो ? यहाँ आगमन का क्या प्रयोजन है ?"

"देव !" स्त्रियाँ बोलीं : "यह सुश्रोणि हम लोगों की स्वामिनी है। इनका कोई पति नहीं है। मनोरम वन-प्रदेश में स्वेच्छापूर्वक विचरण कर रही है।"

बुध ने लोकसुन्दरी इला की ओर देखा। उन्होंने पुण्यमयी आवर्तनी विद्या का आवर्तन किया। उन्हे पूर्व घटनाएँ विदित हो गईं। यथार्थ बात समझ में आ गई। उसकी ओर देखकर बुध ने कहा :

"आप लोग किंपुरुष शैल मे आश्रम बना लीजिए। केवल फूल तथा पत्र पर निर्वाह करना होगा। कालान्तर में किंपुरुष अर्थात् किन्नर आप लोगों के पूज्य पति होंगे।"

:o: :o: :o:

"सुरुचिरानने !!" सोम-पुत्र बुध ने अन्य स्त्रियों के पर्वत-तट पर लोप हो जाने के पश्चात् एकान्त देखकर हँसते हुए कहा : "मै सोम का पुत्र हूँ। वरारोहे ! क्या मै तुम्हारी अनुराग दृष्टि का पात्र हो सकता हूँ ?"

"सौम्य !" इला बोली : "मै कामचरी हूँ। आपकी वशवर्ती हूँ। सेवा की आज्ञा दीजिए। मै आपकी इच्छानुगामिनी हूँ।"

बुध का मुख खिल गया।

मुहुर्मुहुः वैशाख मास स्नेह-सरिता में वहता निकल गया।

:o: :o: :o:

प्रात.काल हुआ। इल उठे। वे पुरुष थे। कल की घटना विस्मृत थी। सरोवर मध्य ऊर्ध्ववाहु बुध को देखा। निरवलम्व अधर मे खड़े थे। तपस्या-रत थे।

"भगवन् !" इला बोले : "अपने सहयोगियों सहित इस दुर्गम पर्वत पर आया था। अपनी सेना यहाँ नहीं देख रहा हूँ।"

"वीर !" बुध बोले : "आपके साथी तुषारपात के कारण गिरकर मर गए। वायु एवं वर्षा भय से आपने इस आश्रम में आश्रय लिया। निद्रा-

वशीभूत हो गए। आप निर्भय तथा विगत-ज्वर हो गए हैं। फल-मूलादि द्वारा क्षुधा शान्त कीजिए। सुखपूर्वक रहिए।"

"ऋषिवर!" राजा ने दयनीय शब्दों में कहा : "भृत्य नष्ट हो गए, परन्तु मैं राज्य का त्याग नहीं करूँगा। आप मुझे प्रस्थान की आज्ञा दीजिए।"

बुध गम्भीर हो गए।

"सौम्य!" राजा पुनः बोले : "मेरा ज्येष्ठ पुत्र शशिविन्दु है। वह धर्म-परायण है। मेरे द्वारा अभिषेक के पश्चात् ही वह राज्य कर सकता है। स्वजनों, मित्रो, दैत्यो, सेवको तथा पत्नियो से मैं अलग यहाँ नहीं रह सकता।

इल ने पुनः दृढ़तापूर्वक कहा :

"महातेजस्विन्! मेरा दृढ निश्चय है। कृपया विपरीत कुछ मत कहिए।

"राजेन्द्र!" सान्त्वनापूर्ण प्रिय वचन बुध बोले : "प्रसन्नवदन यहाँ का निवास स्वीकार कीजिए। कदर्म-पुत्र!! तुम्हे सताप नही करना चाहिए। महाबली इल!!! एक वर्ष यहाँ रह चुकने के पश्चात् मैं आपका कल्याण कर सकूँगा।"

राजा इल ने बुध के आश्रम मे निवास करने का निश्चय किया। स्त्री-काल में वे बुध की भार्या बन जाते थे। पुरुषकाल मे बुध उन्हे धार्मिक बात सुनाते हुए तप की ओर प्रवृत्त करते थे।

:o: :o: :o:

नव मास बीत गए। गर्भवती इला को बुध द्वारा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसका नाम पुरूरवा रखा गया। वह तेजस्वी था, बलवान् था। पिता के अनुरूप था। इला ने पुत्र उत्पन्न होते ही बुध को दे दिया।

एक वर्ष बीत गया।

:o: :o: :o:

इल के पुरुष होने पर यशस्वी बुद्धिमान् बुध ने उदार महात्मा संवर्त को आमन्त्रित किया। भृगु-पुत्र च्यवन, अरिष्ट नेमि, प्रमोदन, मोदकर तथा दुर्वासा मुनियों को भी आमन्त्रित किया।

ऋषिगण बुध के आश्रम में पधारे। वुध ने राजा इलकी कथा ऋषियों को सुनाई। उसी समय प्रजापति कदर्म कुछ महात्माओं के साथ आश्रम में पहुँचे। साथ-ही-साथ पुलस्त्य, ऋतु, वषट्कार और महातेजस्वी ओंकार आश्रम में आए। वाह्लीक-पति राजा इल के कल्याण निमित्त ऋषियों ने चर्चा आरम्भ की।

ऋषियों की वात प्रजापति कर्दम ने सुनी। पुत्र के कल्याण-निमित्त वोले :

"महात्मन्! इल की व्याधि दूर निमित्त वृषभध्वज ही इस व्याधि का उपचार कर सकते हैं। अश्वमेध यज्ञ के अतिरिक्त वृषभध्वज को दूसरा यज्ञ प्रिय नहीं है। अश्वमेध यज्ञ के अतिरिक्त वृषभध्वज को दूसरा यज्ञ प्रिय नहीं है। अश्वमेध जैसे दुष्कर यज्ञ का अनुष्ठान करना वांछनीय है। रुद्र की आराधना निमित्त यज्ञ-अनुष्ठान एकमात्र उपाय है।"

ऋषियों ने प्रजापति कदर्म की योजना का समर्थन किया।

:o: :o: :o:

★

---

इल वाह्लीक अर्थात् बलख देश के राजा थे। इस कहानी में इस के समीपवर्ती देश तथा उनसे सम्बन्धित जाति, दैत्य, नाग, राक्षस, गन्धर्व तथा यक्ष का उल्लेख आया है। अन्वेषणों से सिद्ध हो चुका है, आर्य जातियाँ काश्मीर, उत्तर अफगानिस्तान, काश्मीर के पश्चिम रहती थी। वलख उत्तरी अफगानिस्तान मे है। वलख के पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम इन जातियों का स्थान आता है। अतएव महर्षि वाल्मीकि का भूगोल वर्णन यहाँ सत्य प्रतीत होता है।

काश्मीर के इतिहास में स्त्री-देश का उल्लेख आया है। इस कहानी मे देश के रहने वाले स्त्रीलिंग हो जाते है। कल्हण ने राजतरगिणी मे स्त्रीदेश का उल्लेख किया है। स्त्रीदेश सम्भवत: काश्मीर के पश्चिम-उत्तर था। तत्कालीन साधनों के अभाव के कारण वाल्मीकि ने स्त्रीदेश की भौगोलिक स्थिति नही वताई है। इलवलख के रहने वाले थे। वलख के समीप आखेट खेलने गये होंगे। अतएव राजतरगिणी-वर्णित स्त्रीदेश काश्मीर तथा वलख के मध्य होगा।

यह कहानी आर्यो के उस काल की प्रतीत होती है जव मध्य-एशिया में भारतीय धर्म फैला था। वहाँ पर शैव धर्म का प्रचार था। पार्वती का महत्त्व कहानी मे दिया गया है। उसका अर्थ यही है कि स्त्रीदेश में शैव सम्प्रदाय प्रचलित था। आधुनिक अन्वेषणो से पता लगता है कि शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय, तत्पश्चात् वौद्ध धर्म वलख में फैला था।

बुध क पवित्र आश्रम के समीप अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया गया। संवर्त के शिष्य विख्यात राजर्षि मरुत् ने यज्ञ का आयोजन किया।

महान् यज्ञ सम्पन्न हुआ। रुद्र प्रसन्न हुए। इल ब्राह्मणो के साथ बैठे थे। रुद्र ने कहा .

"द्विजोत्तम ! मै आप लोगों के यज्ञ एवं भक्ति से प्रसन्न हूँ। कहिए वाह्लीक-नरेश राजा इल के किस प्रिय प्रयोजन की सिद्धि कर सकता हूँ।"

"देवेश ! वाह्लीक-पति का शुभ हो, यही हमारी कामना है।" उपस्थित ब्राह्मणो तथा ऋषियों ने कहा।

"इल ! तुम्हारा स्त्री-रूप समाप्त होता है। अब तुम पुरुष-रूप में विचरण करोगे।" रुद्र अन्तर्धान हो गए।

:o: :o: :o:

राजा इल ने वाह्लीक का राज्य शशिविन्दु को दे दिया। अपने लिए प्रतिष्ठान नगर बसाया। वे प्रतिष्ठान मे राज्य करने लगे। इल ने ब्रह्मलोक गमन किया। पुरूरवा प्रतिष्ठान का राजा हुआ।

❀

---

वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड ८७–९०

पुराण मत्स्य काव्य ११–१२ महाभारत आदि पर्व ७५ १६, १८, १९

पद्म पाताल खड ८ ७५–११५ अनुशासन १४७ . २६–२७

महाभारत वन पर्व १५६ ८ ,८६ २४

पुराण ब्रह्माण्ड ३, ५९, ३ ६० २७

वायु २ . २४, २७

स्कन्ध १ ३ : १–६

ब्रह्म १०८

भागवत · ९ · १

देवी भागवत १ १२

प्रसव होने पर महाभारत में इनका नाम सुद्युम्न दिया गया है।

# राम का शरीर-विसर्जन

'मै अतिवल तेजस्वी महृषि का दूत हूँ।' तपस्वी-रूप काल ने राजद्वार पर उपस्थित धृतिमान् तथा यशस्वी लक्ष्मण से कहा। मै विशेष कार्य-निमित्त आया हूँ।

लक्ष्मण ने गम्भीरतापूर्वक तपस्वी की ओर देखा। लक्ष्मण तपस्वी की गम्भीर मुद्रा देखकर किंचित् स्तम्भित हुए। हृदय की विचित्र गति हो गई। विचारशील लक्ष्मण श्रीराम के समीप सूचना देने के लिए गए।

'महाद्युते ! राजधर्म द्वारा उभय लोकों पर आप की विजय हो।' लक्ष्मण ने कहा : 'एक महर्षि का भास्कर-तुल्य प्रभा-सम्पन्न दूत आपका दर्शनाकांक्षी है।'

'तात ! मुनि को सादर लाओ !' राम ने कहा :

'जो आज्ञा।'

लक्ष्मण ज्वाला के समान जाज्वल्यमान मुनि के पास गए। मुनि के शरीर से प्रस्फुटित किरणें दग्धकर प्रतीत होती थी। दूत के साथ लक्ष्मण ने प्रवेश किया।

स्वतेज से दीप्तिमान् श्रीराम के पास आकर दूत ने मधुर स्वर मे कहा : 'वर्धस्व ! राघव !!'

राम ने महातेजस्वी ऋषि को पाद्य, अर्घ्य आदि पूजनोपचार समर्पित किया। पूजादि-प्राप्ति के पश्चात् राम ने अव्यग्रभाव से कुशल पूछा। मुनि ने कुशल-मंगल कहा। राम ने उन्हें दिव्य कांचन आसन दिया।

'महामते !' राम ने कहा : 'आपका मै स्वागत करता हूँ। आप दूत-स्वरूप आए है। अतएव जो वाक्य लाए हों, कहिए।'

'यदि आप,' ऋषि ने मुनिवाक्य कहा : 'हम लोगों का हित चाहते है तो केवल मैं और आप दो व्यक्ति रहें। एकान्त में मुनि-वाक्य देना चाहता हूँ। यदि आप मुनि का वाक्य सुनना चाहते है, तो आप को

यह प्रतिज्ञा करनी होगी—हम दोनों की वात जो सुनेगा या देखेगा, वह आपके द्वारा वध्य होगा।'

'ऋषिवर!' राम ने कहा : 'मै प्रतिज्ञा करता हूं।'

दूत गम्भीर हो गया।

'महावाहो!' राम ने लक्ष्मण से कहा : 'प्रतिहारी को हटाकर तुम स्वयं द्वार पर रहो। ऋषि और मेरे सम्भाषण को जो सुनेगा या देख लेगा मैं उसका वध करूँगा।'

लक्ष्मण द्वार पर स्थित हो गए।

'ऋषिवर!' राम ने कहा . 'कहिए, जिन वांक्यो को लेकर आप आए हैं, निःशक होकर कहिए : मुझे सुनने की उत्कंठा है।'

'ऋषि ने कहना आरम्भ किया।

o: .o: :o:

'महासत्व!' आगन्तुक मुनि ने कहा : 'पितामह देव ने जिस निमित्त आपके समीप भेजा है, निवेदन करता हूँ।'

राम नीरव हो गए।

'वीर!' आगन्तुक मुनि ने कहा : 'पूर्व काल मे माया द्वारा आपने मुझे उत्पन्न किया था। अतएव मै आपका पुत्र हूं। सर्व-संहारक मे काल हूं।'

राम के नेत्र काल की ओर उठे।

'सौम्य!' मुनिवेषधारी काल ने कहा : 'लोकपति पितामह ब्रह्मा ने कहा है—लोक-रक्षा निमित्त आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। पूर्व काल मे समस्त लोको को माया द्वारा अपने में लेकर महारात्रि में आपने शयन किया था। आपने सर्वप्रथम मुझे उत्पन्न किया।

अनन्तर आपने अनन्त नाग को उत्पन्न किया। मधु तथा कैटभ को उत्पन्न किया। उनके अस्थि-समूह से पूर्ण पर्वतयुक्त पृथ्वी का सृजन हुआ। उसे मेदिनी कहा गया।

प्रभो! आपकी नाभि से दिव्य अर्क-सदृश कमल प्रकट हुआ। उससे आपने मुझे उत्पन्न किया। पुत्रोत्पत्ति तथा रचना का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा।

जगत्पति! उस समय आपकी उपासना कर मैंने निवेदन किया कि आप समस्त भूतों में निवास कर उनकी रक्षा कीजिए।

भगवन्! उस समय मेरी प्रार्थना स्वीकार कर आपने प्राणियों की रक्षा के निमित्त सनातन पुरुष विष्णु-स्वरूप धारण किया। आपने कश्यप-पत्नी अदिति के गर्भ द्वारा वामन अवतार लिया। आप इन्द्रादि देवताओं की शक्ति-वृद्धि तथा रक्षा करते रहे हैं। आपने रावण द्वारा ताड़ित प्रजा की रक्षा के निमित्त-मनुष्य-योनि में रामस्वरूप अवतार ग्रहण किया है। आपने मृत्यु-लोक मे ग्यारह सहस्र वर्षो तक निवास करने का निश्चय किया था।

नरश्रेष्ठ! आप की आयु समाप्त हो गई है। यही मेरे यहाँ आने का एकमात्र प्रयोजन है। आपने अपनी अवधि स्वयं निश्चित की थी।'

वीर! यदि आप यहा और निवास करना चाहे तो कर सकते हैं। राघव! परमधाम पधारने की इच्छा हो तो अवश्य पधारिए। पितामह ने मुझे यही निवेदन करने के लिए भेजा है।'

श्रीराम ने हँसकर कहा :

'काल! देवाधिदेव का परम अद्भुत वाक्य सुन कर आपके आगमन से मुझे प्रसन्नता हुई है। कल्याण हो। मेरा प्रयोजन पूर्ण हो गया। मैं जहाँ से आया हूँ, वहीं जाना चाहिए। काल!! मेरे ही चिन्तन पर तुम्हारा आगमन हुआ है।'

:o: :o: :o: :o:

भगवान् दुर्वासा ऋषि का राजद्वार पर आगमन हुआ। लक्ष्मण को प्रतिहारी के स्थान पर दण्डायमान देखा।

'लक्ष्मण!' ऋषि ने कहा : 'मै राम का दर्शनाकांक्षी हूँ। शीघ्रता करो। मेरा एक अत्यन्त आवश्यक कार्य बिगड़ रहा है।'

'भगवन्!' लक्ष्मण ने नमन करते हुए नम्रतापूर्वक कहा : 'आपका क्या कार्य है? मैं आपके किस अर्थ का सम्पादन कर सकता हूँ। ब्राह्मण!! राघव कार्य में व्यग्र हैं। मुहूर्त्त मात्र ठहर जाइए।'

ऋषि-शार्दूल दुर्वासा क्रोध से कलुषीकृत हो गए। उनकी आँखें जल-सी उठीं। सक्रोध बोले :

'सौमित्र! इसी क्षण राम से मेरे आगमन का निवेदन करो। अन्यथा राज्य, पुर, राम, भरत और तुम्हारी सन्ततियों को शाप दूँगा। क्रोध धारण करने मे असमर्थ हो जाऊँगा।'

लक्ष्मण महात्मा दुर्वासा की बातों पर विचार करने लगे। विवेक और कर्त्तव्य निश्चय करने लगे। निश्चय किया कि एक के विनाश से सर्वनाश बच जाय, तो अच्छा है। आत्मोत्सर्ग के विचार के साथ लक्ष्मण राम के समीप पहुँचे।

'भगवन्! दुर्वासा ऋषि आए है?'

लक्ष्मण की बात सुनते ही राम ने काल को विदा किया। वे शीघ्रता-पूर्वक बाहर निकल पडे।

स्वतेज द्वारा तेजोमय महात्मा दुर्वासा का अभिवादन कर राम कृतांजलि-पूर्वक बोले

'कहिए, क्या का कार्य है?'

'धर्मवत्सल!' दुर्वासा ने कहा: 'आज मेरे सहस्र वर्ष के उपवास व्रत की समाप्ति है। राघव!! आपके यहाँ इस समय जो कुछ भोजन प्रस्तुत हो, वही ग्रहण करना चाहता हूँ।'

मुनि की वात सुनकर राम प्रसन्न हो गए। मुनि के सम्मुख भोजन प्रस्तुत किया। मुनि अमृत-तुल्य भोजन प्राप्त कर प्रसन्न हो गए। सन्तुष्ट मुनि साधुवाद करते हुए आश्रम लौट गए।

:o: :o: :o: :o:

'महाबाहो!' राहुग्रस्त चन्द्रमा-तुल्य दीन नत-मस्तक राम को देखकर प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मण ने मधुर स्वर से कहा: 'मेरे लिए आपको संताप नही करना चाहिए। काल की गति पूर्व निश्चित रहती है।'

राम शान्त थे।

'सौम्य!' लक्ष्मण ने निःसकोच निर्भय होकर कहा: 'मेरा वध कर प्रतिज्ञा-पालन कीजिए। प्रतिज्ञा-भंग करने वाला नरकगामी होता है। महाराज! यदि मुझ पर आपकी प्रीति है, मुझ पर आप का अनुग्रह है, तो राघव! निशक मेरे वध द्वारा धर्म की वृद्धि कीजिए।'

राम की इन्द्रियाँ विचलित हो गईं। उन्होंने मन्त्रियों एवं पुरोहितों को बुलाया।

मन्त्रियों एवं पुरोहितों का आगमन हुआ। सबने स्थान ग्रहण किया। राम ने सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा प्रतिज्ञा की बात बताई। महर्षि दुर्वासा के क्रोध तथा लक्ष्मण के साथ हुई घटना की बातें भी बताईं।

राम की बात सुनकर सभी मन्त्री एवं उपाध्याय नीरव हो गए। सबकी वाणी मूक हो गई।

'महाबाहो!' तेजस्वी वशिष्ठ ने निस्तब्धता भंग की। 'रोमहर्षण काल उपस्थित हो गया है। काल बलवान् है। प्रतिज्ञा वृथा मत करो।'

'महायशस्वी! प्रतिज्ञा नष्ट होने पर धर्म नष्ट हो जाता है। धर्म के विनष्ट होने पर चराचर, देव, ऋषिगण तथा त्रैलोक्य निःसंशय नष्ट हो जाते हैं। पुरुष-शार्दूल! त्रैलोक्य-रक्षा-निमित्त आप लक्ष्मण का त्याग कीजिए। जगत् को बिना लक्ष्मण के स्वस्थ कीजिए।'

परिषद् की बातें राम ने शान्तिपूर्वक सुनीं। परिषद्-मध्य लक्ष्मण से बोले :

'सौमित्र! मै धर्म-रक्षणार्थ तुम्हारा विसर्जन करता हूँ। साधुओं का त्याग तथा वध दोनों एक समान विहित है।'

लक्ष्मण के पवित्र शान्त नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए। लक्ष्मण परिषद् से उठे। बाहर निकले। अपने भवन की ओर नहीं गए।

लक्ष्मण सरयू-तट पर आए। सरयू का पवित्र जल कृतांजलि-पूर्वक स्पर्श किया। शरीर के सर्व-स्रोतों का निग्रह किया। निःश्वास रोक लिया। लक्ष्मण की प्राणवायु प्रसन्नतापूर्वक मिथ्या काया के त्याग निमित्त तत्पर हो गई। लक्ष्मण अदृश्य हो गए।

:o: :o: :o:

लक्ष्मण के विसर्जन पश्चात् शोकाकुल श्रीराम दुःखी हो गए। राम पुरोहित, मन्त्री एवं नैगमों से बोले :

'धर्मवत्सल भरत का राज्याभिषेक करूँगा। सामग्रियाँ एकत्र की जायँ। मैं उसी गति को वरण करूँगा, जिसका अनुसरण लक्ष्मण ने किया है।'

राम की बात सुनकर सबके मस्तक नत हो गए। सब निष्प्राण हो गए।

'राजन् !' मूर्च्छित भरत ने कहा . 'सत्य की सौगन्ध खाता हूँ। मुझे आप से रहित राज्य की किंचित् मात्र कामना नही है। स्वर्ग-प्राप्ति की आकाक्षा नही करता। राजन् ! कुश और लव राज्याभिषेक योग्य हैं। दक्षिण कौशल मे कुश तथा उत्तर कौशल मे लव का राज्याभिषेक कीजिए। शीघ्रगामी दूत द्वारा शत्रुघ्न को महायात्रा का सन्देश भेजिए।'

नागरिक स्तब्ध एव दु खी थे। महाश्मशान की नीरवता छाई थी।

'वत्स !' वशिष्ठ ने नीरवता भग करते हुए कहा : 'राम ! भूमि पर पड़े नागरिको को देखो। उनके अभिप्राय के प्रतिकूल कार्य मत करो।'

राम ने प्रकृति जनो अर्थात् नागरिकों को भूमि से उठाते हुए स्नेहपूर्वक कहा :

'गुरुवर ! मै आपका क्या कार्य कर सकता हूँ ?'

'काकुत्स्थ !' प्रकृतिजनो ने कहा : 'आपके अनुगमन की हमारी इच्छा है। यदि पौरो पर आपका प्रेम है, स्नेह है, तो दारा-पुत्रादि सहित साथ चलने की आज्ञा दीजिए। तपोवन, दुर्ग, मरुस्थान, नदी, समुद्र जहाँ आप जायेंगे हम सब आपके साथ चलेंगे। हम आपके त्याग के पात्र नहीं है। हमारे लिए यही परम वर होगा। यही हमारे प्रति आपकी परम प्रीति होगी। इसी में हमारी प्रसन्नता निहित है।'

पौरो की दृढ भक्ति देखकर राम ने कहा : 'तथास्तु।'

राम ने दक्षिण कौशल में कुश तथा उत्तर कौशल मे लव का राज्याभिषेक किया। प्रत्येक पुत्र को राम ने एक सहस्र रथ, दस सहस्र हाथी, एक लाख अश्व, बहुत-सा धन और रत्न दिए। दोनो पुत्रो को हृष्ट-पुष्ट जनों के साथ उनके नगरों को भेज दिया।

पुत्रों की विदाई के पश्चात् राम ने महात्मा शत्रुघ्न के पास दूत भेजे।

:o: :o: :o:

शीघ्रगामी दूतों ने मार्ग मे विश्राम नहीं किया। तीन दिन पश्चात् मधुपुर पहुँच गए। शत्रुघ्न से बोले :

'राजन् ! विन्ध्य पर्वत के तट पर कुश के निमित्त कुशावती तथा लव के लिए श्रावस्ती नगरी बसाई गई है। राम तथा भरत स्वर्ग-गमन का उद्योग कर रहे हैं। राजन् ! आपके पास सन्देश भेजा है।'

दूत नीरव हो गए। शत्रुघ्न स्तब्ध थे। शीघ्र वाणी मुखरित न हो सकी।

राजन् ! दूत ने कहा : 'शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या प्रस्थान करना आवश्यक है।'

शत्रुघ्न ने अपने कुल-क्षय की बात सुनी। उन्होंने अपना कार्यक्रम अविलम्ब निश्चित कर लिया। प्रकृतिजनों तथा कांचन नामक पुरोहित को बुलाया।

शत्रुघ्न ने प्रकृतिजनों तथा पुरोहित से दूतों द्वारा सुनी वार्ता बताई। उन्होंने स्पष्ट कहा :

'पौरगण ! भाइयों का मैं भी अनुसरण करूँगा। इस काया का वियोग अवश्यम्भावी प्रतीत होता है।'

प्रकृतिगण एवं उपस्थित समुदाय ने नतमस्तक शत्रुघ्न की गम्भीर निश्चयात्मक वाणी सुनी। कोई बोल न सका।

शत्रुघ्न ने अपने पुत्रों सुबाहु तथा शत्रुघाती को बुलाया। मथुरा का राज्य सुवाहु को तथा शत्रुघाती को विदिशा का राज्य दिया। उनका अविलम्ब राज्याभिषेक विधिवत् उन राज्यों पर कर दिया। विभाजन-योग्य सामग्री तथा धन दोनों पुत्रों में विभाजित कर दिया।

केवल एक रथ पर, एकाकी शत्रुघ्न आरूढ़ हुए। अयोध्या की ओर सर्वदा के लिए उस राज्य को निर्विकार मन से त्याग कर चल पड़े।

:o: :o: :o:

शत्रुघ्न ने राम को मुनियों के मध्य सूक्ष्म क्षौमाम्बर धारण किए हुए ज्वलन्त पावक-तुल्य देखा।

प्रांजलिभूत शत्रुघ्न ने राम का अभिवादन किया। धर्म-चिन्तन करते हुए इन्द्रिय-निग्रहपूर्वक राम से कहा :

'रघुनन्दन! पुत्रो का अभिषेक कर आया हूँ। आपका अनुगमन करने का निश्चय किया है। वीर!! आज आप कुछ मत कहिएगा। मेरे इस निश्चय के विरुद्ध कुछ कहना दण्ड होगा। मैं नही चाहता कि आपका अनुशासन भंग करूँ।'

राम ने शत्रुघ्न का दृढ निश्चय देखा। शान्तिपूर्वक बोले : 'वाढमित्येव।'

राम के परलोक-गमन की बातो को सुनकर कामरूप अर्थात् इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर, ऋक्ष एव राक्षस सघो मे आए। वानर-समूह सुग्रीव को अग्रणी कर राम के दर्शनार्थ आया। उनमे अनेक देवपुत्र, ऋषिपुत्र, गन्धर्वो के सुत थे। राम के क्षय की बात जानकर आए थे। उन्होंने राम का अभिवादन कर कहा :

'राजन्! हम आपके अनुगमन निमित्त आए है। पुरुषोत्तम!! यदि हमे आप त्याग कर चले जाएँगे तो वह त्याग हम लोगो के लिए यमदण्ड के प्रहार-स्वरूप होगा।'

तदनन्तर महाबल सुग्रीव ने राम का विधिवत् अभिवादन किया। अभिप्राय निवेदन किया।

'नरेश्वर! मै अगद का राज्याभिषेक करके आया हूँ। आपके अनुगमन का मेरा दृढ़ निश्चय है।'

राम ने सुग्रीव की मित्रता का ध्यान कर कहा :

'सखे सुग्रीव!! सुनो!!! मै तुम्हारे बिना देवलोक, परम अथवा महत् पद तक नही जा सकता।'

यशस्वी राम वानरो तथा राक्षसों की बात सुनकर सम्मित बोले :

'वाढमित्येव।'

विभीषण को सप्रेम सम्बोधन कर राम ने कहा :

'राक्षसेन्द्र! महावीर्य!! विभीषण!!! जब तक प्रजा रहेगी तब तक तुम लंका मे जीवित रहोगे। जब तक चन्द्र तथा सूर्य है, तब तक मेदिनी स्थित है, जब तक लोक में मेरी यह कथा प्रचलित रहेगी, तब तक तुम्हारा राज्य रहेगा। सखा-स्वरूप मै तुम्हे अनुशासित करता हूँ। तुम्हे मेरा

शासन मानना चाहिए। प्रजा की धर्म-पूर्वक रक्षा करो। मेरी बातो का उत्तर मत देना।

'महाबल राक्षसेन्द्र! मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ। इक्ष्वाकुकुल के देवता है जगन्नाथ। इन्द्रादि उनकी आराधना करते हैं। तुम जगन्नाथजी की आराधना सर्वदा करते रहना।'

राम का आदेश विभीषण ने सुना। उनके अनुशासन को शिरोधार्य करते हुए कहा.

'आपका जैसा आदेश।'

'हनुमान्! राम ने कहा: 'तुम्हारी इच्छा जीवित रहने की है। तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग मत करो। हरीश्वर!! जब तक लोक में मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक तुम मेरे वाक्यों का पालन करते हुए विचरण करते रहो।'

'भगवन्!' हनुमान् ने प्रसन्नतापूर्वक कहा: 'जब तक आपकी पावन कथा का प्रचार रहेगा, मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ मेदिनी पर रहूँगा।'

राम ने वृद्ध ब्रह्मापुत्र जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद से कहा:

'आप तीनों जब तक कलिकाल नहीं आ जाता जीवित रहेंगे। विभीषण तथा हनुमान् प्रलय काल तक जीवित रहेंगे।'

उन लोगों के मस्तक नत हो गए।

राम ने अन्य सब ऋक्षों तथा वानरों से कहा: 'बाढम्, आपकी बात मुझे मान्य है। साथ चलिए।'

रामचन्द्र चले। उनके पीछे चला महान् जन-समुदाय।

:o: :o: :o:

रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात हुआ। पृथुवक्ष महायश कमलपत्राक्ष राम ने पुरोहित से कहा:

'दीप्तिमान् मेरा अग्नि-होत्र द्विजो के साथ आगे-आगे चले। शोभायमान वाजपेयातपत्र महापथ की ओर चले।'

तेजस्वी वशिष्ठ ने विधिपूर्वक महा-प्रस्थान के समस्त धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण किए।

श्रीराम ने सूक्ष्म वस्त्राम्बर धारण किया। दोनो हाथो मे कुश लेकर ब्रह्मावर्तयन वेदध्वनि करते हुए सरयू-तीर की ओर प्रस्थान किया।

राम मे चञ्चलता नही थी। वे सयत थे। स्थिर थे। केवल पदो द्वारा चलने की चेष्टा शेष रह गई थी। वे किसी से सम्भाषण नही करते थे। किसी की ओर देखते नही थे। देदीप्यमान सूर्य के समान अपने गृह से बाहर चल रहे थे।

राम के दक्षिण पार्श्व मे कर-पल्लव मे कमल-दल लिए श्री थी। वाम पार्श्व मे महीदेवी थी। आगे उनका व्यवसाय चला। नाना प्रकार के शर, उत्तम धनुष, आयुध सब पुरुष-रूप धारण कर साथ-साथ चले। ब्राह्मण-रूप धर कर चारो वेद चले। सर्वरक्षिणी गायत्री देवी चली। ओंकार, वषट्कार रामानुवर्ती हुए। स्वर्ग-द्वार खुला देखकर समस्त ऋषि, महात्मा तथा महीसुर राम के पीछे-पीछे चले। अन्त पुर की स्त्रियाँ, चर, भृत्य, वृद्ध बालक, दासी, किंकर राम के साथ चले। अन्त पुर की स्त्रियो के साथ भरत तथा शत्रुघ्न अग्नि-होत्र सहित राम के साथ चले। पुत्र-दारा के साथ सभी महात्मा अपने अग्नि-होत्र के साथ राम के साथ चले। मन्त्री, भृत्य-वर्ग अपने पुत्र, पशु, बन्धुओ तथा अनुचरो सहित राम के साथ चले। हृष्ट-पुष्ट जनाकीर्ण प्रकृतिजन राघव के गुणो से आकृष्ट होकर स्त्री, पुरुष, पुत्र, पक्षी, बन्धु-बान्धव सहित प्रसन्न हृदय, विगत-कल्मष राम के साथ चले।

सभी हृष्ट-पुष्ट वानर स्नान कर प्रमुदित किलकारी मारते राम के अनुवर्ती हुए। उस महान् समुदाय मे कोई दीन नही था। कोई पीडित

नही था । कोई दु खी नही था । उनमे महाप्रयाण के दु ख के स्थान पर हर्ष की उमंग थी । वह समुदाय परम अद्भुत प्रतीत होता था । राम-यात्रा के अवलोकनार्थ आगत जनपदीय जन श्रीराम के साथ चलने के लिए उद्यत हो गए । अयोध्या मे अन्तर्धान रूप से रहने वाले ऋक्ष, वानर, राक्षस, पुरवासी, महायात्राभिमुख भक्तिपूर्वक एकाग्र-चित्त श्रीराम के पीछे चलने लगे । स्थावर एवं जगम, जो कोई राम की यात्रा देखता था, उनका अनुगामी हो जाता था । अयोध्या मे उस समय कोई भी श्वासधारी ऐसा प्राणी नहीं था, जो श्रीराम का अनुगामी नही हुआ ।

:o ·o. ·o

अयोध्या से आध योजन की यात्रा श्रीराम ने समाप्त की । पुण्य-सलिला सरयू पुलिन पर पहुँचे । पुण्य-सलिला सरयू का पश्चिमाभिमुख दर्शन किया । राम प्रजाजनों के साथ लहरों से आकुल सरयू नदी के एक उत्तम स्थान पर आए । लोक पितामह ब्रह्मा, समस्त देवता, ऋषि, महात्मा महा-प्रस्थान के स्थान पर दिव्य विमानो के साथ आ गए थे ।

गन्धयुक्त, सुखप्रद, पुण्य वायु वह चली । व्योम दिव्य तेज द्वारा ज्योतिर्मय हो गया । पुण्यकर्मियों के पुण्य द्वारा आकाश प्रभा एवं तेज से ज्योतिर्मय हो गया । विमान-पूरित आकाश से धारावद्ध पुष्पवर्षा होने लगी । गन्धर्व एवं अप्सरा-संकुल स्थान में सैकडों तूर्य वजने लगे । राम के पवित्र पद सरयू जल-स्पर्श निमित्त अग्रसर हुए ।

दिव्य ऋषि, इन्द्र, अग्नि, देवता, सिद्ध, मरुद्गण विष्णुस्वरूप मे स्थित श्रीराम की स्तुति करने लगे ।

राम ने ब्रह्मा से कहा .

"सुव्रत ! मेरे साथ आए जन-समुदाय को आप उत्तम लोक प्रदान कीजिए । इन्होंने स्नेहवश मेरा अनुगमन किया है । मेरे भक्त है । सव ने लौकिक सुखो का त्याग किया है । सभी अनुग्रह के पात्र है ।

यहाँ उपस्थित सभी लोग 'सतानक' नामक लोक मे प्रवेश करेंगे।"

लोगों की आँखे सरयू-तट पर आँसुओ से भरी थी। गो-प्रतार नाम पुलिन-स्थान पर मुहुर्मुहु जल राम का शरीर अपनी गोद मे लेने लगा।

---

वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड १०१-११०